अष्टमङ्गल

ईसा-पूर्व पाँचवीं शताब्दी से लेकर ईसा की दसवीं
शताब्दी तक के प्रतिनिधि नाटककारों के
संस्कृत नाटकों का हिन्दी में एकांकीकरण।

रूपान्तरकार
आचार्य चतुरसेन शास्त्री

भूमिका-लेखक
डा० भगीरथ मिश्र एम. ए., पी-एच. डी
प्राध्यापक तथा अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, पूना यूनिवर्सिटी।

प्रकाशक
भारत भारती प्राइवेट लिमिटेड
१ अनसारी रोड, नया दरियागंज
दिल्ली-६

एकांकी नाटकों का क्रम-निर्देश

१. भास

(ई० पू० पाँचवीं शताब्दी) : स्वप्नवासवदत्ता १

२. शूद्रक

(ईसा की दूसरी शताब्दी) : मृच्छकटिक ३९

३. कालिदास

(ईसा की छठी शताब्दी) : अभिज्ञान-शाकुन्तल ७६

४. श्रीहर्ष

(ईस्वी सन् ६१२) : नागानन्द ११६

५. भट्ट नारायण

(सातवीं शताब्दी) : वेणीसंहार १३७

६. भवभूति

(आठवीं शताब्दी) : उत्तररामचरित १६२

७. विशाखदत्त

(नवीं शताब्दी) : मुद्राराक्षस १९७

८. राजशेखर

(दसवीं शताब्दी) : कर्पूरमञ्जरी २३४

भूमिका

'अष्टमंगल' संस्कृत साहित्य के १५०० वर्षों के समृद्ध भंडार से चुने हुए विभिन्न-युगीन सुप्रसिद्ध आठ नाटकों के एकांकी रूपों का संग्रह है। ई० पू० ५०० वर्ष से १००० ईसवी तक के बीच के इन प्रख्यात नाटकों का एकांकीरूप आचार्य चतुरसेन की समर्थ लेखनी द्वारा प्रस्तुत किया गया है। 'अष्टमंगल' की यह मंगलमय कल्पना भी उन्हीं की थी। संस्कृत नाटकों के इस हिन्दी 'अष्टमंगल' रूप के अवतरण से हिन्दी साहित्य के रसिकों को संस्कृत नाटकों का रसास्वादन सुलभ होगा, यह 'अष्टमंगल' का मंगलकारी महत्त्व है।

संस्कृत के जिन प्रसिद्ध आठ नाटकों का एकांकीरूप 'अष्टमंगल' में प्रस्तुत किया गया है वे हैं :—भासकृत स्वप्नवासवदत्ता, शूद्रककृत मृच्छकटिक, कालिदासकृत अभिज्ञानशाकुन्तल, श्रीहर्षकृत नागानन्द, भट्टनारायणकृत वेणीसंहार, भवभूतिकृत उत्तररामचरित, विशाखदत्तकृत मुद्राराक्षस तथा राजशेखरकृत कर्पूरमंजरी। ये आठों नाटक न केवल संस्कृत के सुप्रतिष्ठित नाटक हैं, वरन् इनके पारायण से हमारे सम्मुख भारतीय संस्कृति का एक विकासशील रूप प्रस्तुत होता है। स्वप्नवासवदत्ता में एक अत्यन्त बुद्धिमान् मंत्री की स्वामि-भक्ति और सूझ-बूझ की कथा है। यह कथा मुद्राराक्षस की कथा से भिन्न है जिसमें मंत्री और चाणक्य बौद्धिक शक्ति तथा दाव-पेच की कूट-नीति और चतुराई में दक्ष हैं। स्वप्नवासवदत्ता का यौगन्धरायण मंत्री त्याग, प्रेम, सुकुमार स्नेह एवं मंगलाभिलाषा का साक्षात् रूप है। इसके साथ अनेक बातें हमारी प्राचीन संस्कृति की विशेषताओं की द्योतक हैं।

शूद्रककृत मृच्छकटिक समकालीन लोक-जीवन तथा नागरिक कार्य-कलाप का बड़ा ही सजीव चित्र उपस्थित करता है। मेरे विचार से ऐसा विशद, व्यापक और विविधतापूर्ण जीवन का जीता-जागता रूप प्रस्तुत करने

वाला शायद ही कोई अन्य नाटक विश्व-साहित्य में हो। इस पर भी इतने स्वाभाविक सहज चित्रण के साथ यह नाटक प्रतीकात्मक है। यह परिवर्तनशील क्षणभंगुर जीवन का संकेत करता है। अतः मृच्छकटिक नाटक का अपना विशिष्ट स्थान है।

तीसरा नाटक कालिदासकृत विश्वविख्यात अभिज्ञानशाकुन्तल है। 'अभिज्ञान शाकुन्तल' में कालिदास का नाट्यशिल्प अपने चरम विकास में प्रकट हुआ है। इसमें आश्रमों के वन्य किन्तु तपस्संयत जीवन के साथ-साथ नागरिक एवं राजदरबार के सजीव चित्रण मिलते हैं। नैसर्गिकता के बीच जीवन की सहज शोभा के साथ-साथ राजनीति, मर्यादा एवं शासन के नियम-पालन की कठोरता दिग्दर्शित है। लौकिक और अलौकिक दोनों ही प्रकार की घटनाएँ यथार्थ एवं कल्पनाशील मानस को आलोडित करने वाली हैं। शृंगार के संयोग-वियोग-पक्षों की धूपछाँह में उल्लास की फुहारें आगे चलकर मूक विषाद की गंभीर धारा में परिणत हो जाती हैं और नाटक मिलन में भी अमिट कारुणिक प्रभाव हृदय पर छोड़ जाता है। इस अभिज्ञान शाकुन्तल के सर्वतोमुखी प्रभाव को आचार्य चतुरसेन जी ने अपने एकांकी में सँजोने का बड़ा सफल प्रयत्न किया है।

श्रीहर्षकृत नागानन्द करुणरस-प्रधान किन्तु दयावीर नायक का चरित्र-चित्रण करने वाला, हिंसा के त्याग और अहिंसा के प्रचार की भावना से ओतप्रोत नाटक है। हिन्दू-विश्वासों के आधार पर बौद्ध अहिंसा की प्रतिष्ठा द्वारा इस नाटक में दोनों ही धर्मों के समन्वय का प्रयत्न है।

भट्टनारायण कृत 'वेणीसंहार' नाटक संस्कृत का प्रसिद्ध वीररस-पूर्ण नाटक है। वीररस की सफल एवं सप्रभाव शैली के लिए भट्टनारायण प्रसिद्ध कवि हैं। वीर रस के साथी रौद्र, वीभत्स, भयानक रसों का भी इसमें चित्रण है। साथ ही शृंगार, करुण और अद्भुत रस भी विभिन्न अंकों में प्रतिफलित हुए हैं। समस्त घटनाओं और रसों को आचार्य जी ने सफलतापूर्वक अवतरित करने का प्रयत्न किया है।

भवभूति का 'उत्तररामचरित' तो करुणरस का अगाध सागर है।

लोक-मर्यादा का पालन और लोक-शंका के लेशमात्र का भी निवारण करने का प्रयत्न करने वाले कोमल-हृदय राम को वज्र से भी अधिक कठोर-हृदय बनकर अपनी गर्भवती प्रिय महारानी सीता का परित्याग करना पड़ा। कर्तव्य की वेदी पर प्रेम के बलिदान का इससे बड़ा उदाहरण नहीं मिलेगा। राजा राम यह कर्तव्य पालन करते हैं, पर सीतापति राम विरह में जलते हुए जीवन-यापन करते हैं। भवभूति ने दोनों ही का स्पष्ट मर्मस्पर्शी रूप प्रस्तुत किया है। भवभूति के इस नाटक को कोई भी व्यक्ति अश्रुपूर्ण हुए बिना नहीं पढ़ सकता।

विशाखदत्तकृत 'मुद्राराक्षस' चाणक्य और राक्षस के कूटनीतिक दावपेंचों से युक्त राजनीतिक नाटक है। अनेक षड्यंत्रों से पूर्ण इस नाटक का अपना रस है। इससे कुतूहल-वृत्ति आशंका के साथ सदैव तीव्र रहती है और अनेक घटना-चक्रों का प्रभाव इसमें चलता है। 'मुद्राराक्षस' एक ऐतिहासिक नाटक है और आचार्य चतुरसेन ने इसे उसी रूप में प्रस्तुत किया है; यद्यपि ऐतिहासिक तथ्यों से इसकी घटनाओं की पुष्टि नहीं होती।

'अष्टमंगल' का अंतिम एकांकी राजशेखरकृत कर्पूरमंजरी पर आधारित है। यह एक रोमांटिक प्रेमाख्यान-परंपरा का नाटक (सट्टक) है जिसमें तांत्रिक भैरवानंद की चतुराई और करामात प्रमुखतया प्रकट है। यह नाटक संस्कृत में न होकर प्राकृत में लिखा गया था। आचार्य जी ने इसे आवश्यकता से अधिक स्वच्छन्दता के साथ चित्रित किया है। इन्होंने भैरवानंद सिद्ध की ध्यानावस्था के समय कहे गये वचनों को उसी प्रकार न देकर अपने ढंग से इस प्रकार प्रस्तुत किया है :

"लंका पलंका सातों द्वीप नवो खंड गौना, ब्रह्मा विष्णु महेश, पीर पैगम्बर जोगी, जती सती वीर वीर महावीर आकाश पाताल साधूं। मेरी भक्ति गुरु की शक्ति फुरं। दोहाई गोरखनाथ"। पृष्ठ २३९

प्राकृत का छन्द जो कर्पूरमंजरी में दिया हुआ है वह इससे काफ़ी

भिन्न है। प्राकृत का छन्द जो सिद्ध भैरवानंद के मुख से निकला वह इस प्रकार है :—

मन्ताण तन्ताण ण किं पि जाणे झाणं च णो किं पि गुरुप्पसाआ।
मज्जं पिआमो महिलं रमामो मोक्खं च जामो कुलमग्गलग्गा॥
रण्डा चण्डा दिक्खिआ धम्मदारा मज्जं मंसं पिज्जए खज्जए अ।
भिक्खा भोज्जं चम्मखण्डं च सेज्जा कोलो ध मो कस्स णो भाइ रम्मो॥
मुत्तिं भणन्ति हरिवह्ममुहा विदेवा, झाणेण वे अपढणेण कउक्किआहिं।
एक्केण केवल मुमादइएण दिट्ठो, मोक्खोसमं सुरअकेलिसुराररसेहिं॥

परन्तु आचार्य चतुरसेन ने जो रूप सिद्ध-मंत्र करा दिया है वह काफ़ी बाद में प्रचलित तंत्र-मंत्र का रूप है। इन्होंने "दुहाई गोरखनाथ" कह कर पाठक के मन में एक भ्रम उत्पन्न कर दिया कि क्या कर्पूरमंजरी के राजशेखर के ये शब्द हैं! यदि ऐसा है तो फिर गोरखनाथ का समय राजशेखर के पूर्व का या समवर्त्ती है। राजशेखर का समय ८वीं, ९वीं शताब्दी माना जाता है। अतः गोरखनाथ का भी वही समय हुआ। पर तथ्य ऐसा नहीं है। मूल 'कर्पूरमंजरी' में गोरखनाथ का कोई संकेत नहीं। ऐसी दशा में आचार्यजी द्वारा प्रस्तुत मंत्र ऐतिहासिक दृष्टि से भ्रमकारक है। नाटक की दृष्टि से तो वह वातावरण निर्मित करने में सफल कहा जा सकता है परन्तु यदि कोई मूल नाटक न देखे और इसी को आधार मान ले, तो ऐतिहासिक भ्रम का पूरा अवकाश है। फिर भी यह स्पष्ट है कि आचार्य चतुरसेन का उद्देश्य वही वातावरण प्रस्तुत करना था, भ्रम उत्पन्न करना नहीं।

उपर्युक्त परिचयात्मक विवरण देने का तात्पर्य यह स्पष्ट करना है कि 'अष्टमंगल' में एकांकीकृत नाटक भारतीय नाट्यप्रतिभा का प्रतिनिधित्व करने वाले हैं। भरत द्वारा स्वीकृत अष्ट नाट्यरसों का इन आठों नाटकों में परिपाक देखा जा सकता है और एकांकी रूपों में नाटकों की रसगत विशेपता समुचित रूप से सुरक्षित है।

सम्पूर्ण नाटकों का एकांकी अवतरण उतना सरल नहीं है जितना कि

शायद पढ़ने से लगता हो। इन नाटकों में सबसे छोटा नाटक कर्पूरमंजरी (सट्टक) भी चार अंकों का है। अन्य नाटक तो काफ़ी विस्तृत हैं। उनकी समग्र कथावस्तु एवं घटना-विन्यास को एक अंक में उतार लेना बड़ी सूझ-बूझ का काम है। 'अष्टमंगल' के ये नाटक इस खूबी से उतर गये हैं कि उन्हें पढ़ने पर ऐसा लगता है जैसे कि मूल नाटक की कथा को लेकर ये मौलिक रूप से रचे गये हों। किन्तु इनमें मूल नाटक के भाव, चरित्र और वातावरण को बड़ी सफ़ाई के साथ प्रतिफलित किया गया है। यह सिद्धहस्त कलाकार आचार्य चतुरसेन की प्रतिभा-सिक्त लेखनी की विशेषता है।

'अष्टमंगल' को पढ़ने पर हमारे सामने संस्कृत के नाट्य-साहित्य के विकास की झाँकी प्रत्यक्ष हो जाती है। अभी तक तो इन सभी प्रसिद्ध नाटकों का एक-साथ संकलन भी नहीं हुआ है। इसके अतिरिक्त इन सभी नाटकों के हिन्दी अनुवाद भी प्राप्त नहीं होते। अतः हिन्दी साहित्यिकों के लिए इन प्रसिद्ध नाटकों का यह 'अष्टमंगल' लघुरूप वास्तव में बड़ा उपयोगी एवं ज्ञानवर्धक सिद्ध होगा।

आचार्य चतुरसेन को लघुत्व एवं विस्तार दोनों ही की सिद्धि प्राप्त थी। उनके अनेक उपन्यास घटना एवं दृश्य-विस्तार के जहाँ प्रमाण प्रस्तुत करते हैं, वहाँ यह 'अष्टमंगल' उनकी लघिमा-सिद्धि का द्योतक है जिसमें उन्होंने गुरु वस्तु को लघु रूप में प्रगट करने का लाघव दिखाया है। आचार्य जी के कैलाशवास के उपरान्त भी उनकी प्रतिभा का प्रकाश नये रूपों में प्रकट हो रहा है, यह उनका सिद्ध-पुरुषत्व साहित्य के लिए गौरव की वस्तु है। मुझे यह निश्चय है कि उनके व्यक्तित्व और साहित्य का अनेक दृष्टियों से मूल्यांकन होने पर उनका गौरव बढ़ता ही रहेगा।

भगीरथ मिश्र

भास

(ई० पू० पाँचवीं शताब्दी)

स्वप्नवासवदत्ता

जीवन-परिचय

प्राचीन संस्कृत नाटककारों में इस समय तक ज्ञात सबसे अधिक प्राचीन भास हैं। इनके नाटकों का पता सबसे प्रथम १९१२ में त्रावनकोर के पण्डित महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री ने लगाया था। उन्हें अब तक ज्ञात सर्वप्राचीन इस नाटककार के तेरह नाटक एक ही साथ एक ही स्थान पर मिल गये थे। इससे प्रथम कालिदास, वाणभट्ट, राजशेखर, भामह आदि प्राचीन कवियों और और नाटककारों ने भास का उल्लेख तो किया था, और उन्हें चोटी का नाटककार भी बताया था; पर उनकी कोई रचना उपलब्ध न थी। इन तेरह नाटकों की प्राप्ति से साहित्य-जगत् में हलचल मच गई और पाश्चात्य पण्डितों की आँखें चौंधिया गईं।

अभी तक भास के समय और स्थान के सम्बन्ध में बहुत कुछ मत-भेद हैं, परन्तु अनेक प्रमाणों के आधार पर यह मानना पड़ता है कि वे चाणक्य से कुछ पहले ही ई० पू० पाँचवीं शताब्दी में हुए थे। भास भावों और विषयों की सूक्ष्म विवेचना में अपना जोड़ नहीं रखते। इनके वाक्य संक्षिप्त सूत्ररूप, भाव स्वाभाविक और शैली अकृत्रिम है। स्वप्न-वासवदत्ता उनकी अप्रतिम कृति है।

भास के जो तेरह नाटक मिले हैं, उनके नाम हैं—(१) स्वप्न-वासवदत्ता, (२) प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण, (३) प्रतिमा, (४) अभिषेक, (५) पंचरात्र, (६) बालचरित, (७) मध्यम-व्यायोग, (८) दूतवाक्य,

(९) दूतघटोत्कच, (१०) कर्णभार, (११) ऊरुभंग, (१२) चारुदत्त, (१३) अविमारक।

कालिदास के मालविकाग्निमित्र की रचना प्रतिज्ञायौगन्धरायण और स्वप्नवासवदत्ता को सामने रखकर की गई है। तथा शूद्रक का मृच्छकटिक भास के चारुदत्त पर आधारित है।

कथा-सार

प्राचीन काल में कौशाम्वी के राजा वत्सराज उदयन बड़े प्रतापी और गुणी पुरुष थे। जैसे वह गुणों में अद्वितीय थे, वैसे ही स्वरूपवान् और दर्शनीय भी थे। उनमें दो भारी व्यसन थे—एक वीणा बजाने का, दूसरा हाथी के शिकार का। वे वीणा बजाकर हाथी को मन्त्र-मुग्ध कर कौशल से उसे पकड़ लेते थे। उनके दो मन्त्री भी बड़े योग्य नीति-निपुण थे। एक थे—यौगन्धरायण, दूसरे रुमण्वान्। वत्सराज उदयन का एक परम शत्रु था वारुणि। उसने अवसर पाकर और राजा को असावधान समझ कौशाम्वी राज्य पर आक्रमण कर कौशाम्वी पर अधिकार कर लिया।

वत्सराज के निकट मगध की सीमा पर लावाणक नाम का एक छोटा-सा जनपद था। अपने परिजनों, विशिष्ट राज-परिषदों, अमात्यों और सेनापतियों तथा अनुचरों को साथ लेकर महाराज उदयन लावाणक ग्राम में ही जाकर रहने लगे।

एक दिन संयोग से मन्त्री यौगन्धरायण की भेंट एक सिद्ध पुरुष से हो गई। उसने भविष्यवाणी की कि मगध के राजा दर्शक की बहिन पद्मावती के साथ राजा के व्याह का संयोग है। इस पर यौगन्धरायण ने सोचा कि यदि महाराज उदयन का विवाह मगधराजपुत्री पद्मावती के साथ हो जाय तो फिर मगधराज की सहायता से उनकी गई राज्य-लक्ष्मी फिर हाथ में आ सकती है। इसलिए मन्त्री यौगन्धरायण ने दूसरे मन्त्री रुमण्वान् से मिलकर एक कूट मन्त्रणा कर गुप्त योजना बनाई।

उनका दृष्टिकोण किसी तरह पद्मावती का विवाह उदयन के साथ कराना था। पर उदयन की रानी वासवदत्ता प्रथम ही से वर्तमान थी। तथा राजा का रानी से इतना अधिक प्रेम था कि उदयन राजा दूसरे विवाह का ध्यान भी नहीं करते थे। इसके अतिरिक्त मगधराज दर्शक भी सौत पर अपनी बहिन को देना नहीं चाहते थे। फिर, यौगन्धरायण को यह भी भय था कि वासवदत्ता के पिता उज्जैनपति महासेन प्रद्योत भी इस विवाह में बाधा देंगे। उस काल मगध और उज्जैन दोनों ही राज्य बड़े सशक्त थे और अब इस विपन्नावस्था में जब कि उदयन राज्य-भ्रष्ट होकर दिन काट रहे थे, इन दोनों राजाओं को मित्र और सम्बन्धी बनाये रखना अत्यन्त आवश्यक था, इसलिए यौगन्धरायण ने यही सोचा कि पद्मावती से राजा का व्याह कराके उस राज्य को मित्र भी बना लिया जाय और प्रद्योत को नाराज़ होने का भी अवसर न मिले। इसी युक्ति से न केवल उदयन का खोया हुआ राज्य इन दो समर्थ राजाओं की सहायता से प्राप्त हो सकता था, अपितु उदयन उत्तर भारत के बड़े राजा भी बन सकते थे। इस प्रकार यौगन्धरायण की कूट दृष्टि में वासवदत्ता ही इस समय राज्य की सबसे बड़ी बाधा थी। इसलिए उन्होंने रुमण्वान् से मिलकर एक गुप्त योजना तैयार की। योजना का स्वरूप यह था कि कुछ दिन के लिए वासवदत्ता को कहीं छिपा दिया जाय और उसे मृत घोषित कर दिया जाय और तब राजा का व्याह समझा-बुझाकर पद्मावती से करा दिया जाय।

वासवदत्ता की मृत्यु की सूचना पाकर महासेन भी कुछ न कहेंगे और दर्शक भी पद्मावती का व्याह कर देगा। परन्तु राजा वासवदत्ता से बहुत प्रेम करते थे। मन्त्रियों को यह भी डर था कि वासवदत्ता की मृत्यु का समाचार सुन कर राजा प्राण ही न त्याग दें। परन्तु दूसरा उपाय न था। अतः दोनों मन्त्रियों ने अपनी कठिन योजना को क्रियान्वित करने का निश्चय किया। उन्होंने वासवदत्ता को भी अपने साथ

सहमत कर लिया। रानी ने कहा—'मैं आर्यपुत्र के मंगल और कल्याण के लिए सब कुछ करने को तैयार हूँ।' उन्होंने यह भी रानी को समझा दिया कि वह उसे मगधराजपुत्री पद्मावती के आश्रय में रखेंगे। मगध राज्य पास भी है तथा राजकुमारी पद्मावती बहुत सुशील और सच्चरित्र हैं। उनके आश्रय में आप सब भांति निरापद रह सकती हैं। परन्तु जब तक वत्सराज्य का उद्धार न हो जाय, आपको यत्नपूर्वक अपने को छिपा कर छद्मवेश में रहना होगा; क्योंकि सम्भव है—महाराज शीघ्र ही मगध राज्य में जायें। तब आपकी कठिन परीक्षा होगी। किसी भी भाव से आप अपने को प्रकट न कर सकेंगी। राजा के प्रेम के कारण रानी ने मन्त्री की सब बातें स्वीकार कर लीं और एक दिन जब राजा आखेट को वन में गये थे, मन्त्री रुमण्वान् ने राजशिविर में आग लगा दी और रानी के सब आभूषण भी आग में झोंक दिये। उधर सबकी आँख बचाकर यौगन्धरायण वासवदत्ता को लेकर मगध की ओर चल दिये।

राजा ने लौट कर देखा—कि शिविर आग में भस्म हो गया है, तथा सब मन्त्री और परिजन बैठे रो रहे हैं। उन्होंने सुना—देवी वासवदत्ता भी आग में जल गयीं। आग में उनके आभूषणों को अवशेष देख राजा शोक में अधीर हो गये। मन्त्री रुमण्वान् ने जैसे-तैसे उन्हें सम्हाला, सान्त्वना दी। और फिर वे सब लोग लावाणक ग्राम से राजा को लेकर अन्यत्र चले गये। यह भी अफवाह उड़ायी गई कि रानी का बचाने के लिए मन्त्री यौगन्धरायण भी आग में कूद पड़े थे, वे भी जल गये।

रानी और मन्त्री को मरा समझ राजा मूर्छित हो गये। उनका राज्य तो पहले ही नष्ट हो चुका था। अब सुयोग्य मन्त्री और पत्नी को खोकर राजा प्राण देने पर उतारू हो गये। इसके बाद किस प्रकार यौगन्धरायण ने वासवदत्ता को पद्मावती के यहां रक्खा और किस प्रकार उदयन का विवाह पद्मावती से हुआ तथा किस प्रकार प्रद्योत और

मगध की सैन्य सहायता से उदयन ने अपने शत्रु को मार कर अपना राज्य हस्तगत किया, तथा किस प्रकार यौगन्धरायण और वासवदत्ता प्रकट हुई, यह इस रूपक में अतिशय हृदयग्राही और भावपूर्ण भाषा और शैली में महाकवि भास ने वर्णन किया है। यह आप पढ़िए।

विशेष बातें कुछ इस रूपक में हैं, जो ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। प्रथम तो यह कि कवि ने विधाता के स्थानों पर 'ईश्वराः' शब्द प्रयुक्त किया है। (अहो अकरुणा ईश्वराः) इससे यह ज्ञात होता है कि इस काल में विधाता और भाग्य के सम्बन्ध में लोग कुछ नहीं जानते थे, तथा एक ईश्वर का प्रचलन न था। अनेक ईश्वर माने जाते थे। दुर्भाग्य को लोग ईश्वरों का कोप समझते थे, अपना भाग्य-दोष नहीं।

दूसरी बात यह कि मन्त्री ब्राह्मण होने पर राज्य की दृष्टि में पूज्य—बड़ा था, माननीय था। राजा का मन्त्री के प्रति मित्र-भाव समानता का रहता था तथा ब्राह्मण भी उन दिनों क्षत्रियों से श्रेष्ठ नहीं माने जाते थे। यौगन्धरायण राजा को स्वामी कह कर उसके पैरों में गिर जाता है।

जैसे चाणक्य को चन्द्रगुप्त गुरु की भांति पूज्य मानता था, तथा चाणक्य जैसे चन्द्रगुप्त को 'वृषल' कह कर सम्बोधन करता था—यहां राजा यौगन्धरायण को मित्र कहता है। इसी प्रकार और भी बातें हैं।

पात्र-सूची

पुरुष-पात्र—

वत्सराज उदयन	कौशाम्बी का राजा
यौगन्धरायण	उदयन का वृद्ध सेवक
कंचुकी	अन्तःपुर का रक्षक
भट	घोषणा करने वाले भृत्य
ब्रह्मचारी	लावाणक वनवासी वेदपाठी छात्र
विदूषक	उदयन का मित्र ब्राह्मण

स्त्री-पात्र—

वासवदत्ता	राजा उदयन की पहली पत्नी
पद्मावती	राजा उदयन की दूसरी पत्नी
तापसी	आश्रम में रहने वाली तपस्विनी
धात्री	पद्मावती की धाय
प्रतिहारी	द्वारपालिका
दासी, चेटी, पद्मनिका, मधुरिका	पद्मावती की दासियाँ

स्वप्नवासवदत्ता

पहला दृश्य

(स्थान—राजगृह के निकट एक तपस्वी का आश्रम। परिव्राजक के वेश में वत्सराज उदयन के अमात्य आर्य यौगन्धरायण छद्मवेशिनी राजमहिषी वासवदत्ता के साथ आते हैं। एक ओर से भट आता है।)

भट—हटो, हटो, राह छोड़ो।

वासवदत्ता—आर्य, ये कौन गँवार हैं, जो इस पवित्र आश्रम में भी नगरों के राजमार्ग की तरह लोगों को मार्ग से हटा रहे हैं।

यौगन्धरायण—धिक्कार है इनको, जो अपने वैभव के गर्व से अन्धे होकर तपस्वियों के आश्रम में शांत और नम्र नहीं रहते।

वासवदत्ता—तो क्या ये हमें भी इसी भांति हटावेंगे ?

यौगन्धरायण—अज्ञानी जन पूज्य जनों की ऐसी ही अवज्ञा करते हैं।

वासवदत्ता—आर्य, मुझे मार्ग के श्रम से इतना कष्ट नहीं हुआ, जितना इनके इस आचरण से।

यौगन्धरायण—देवी, आप तो इस प्रकार के सुखीय भोगों को जान-बूझ कर ही त्याग कर चुकी हैं, फिर दुःख काहे का ? हम लोगों ने तो जानबूझ कर ही कठिन व्रत लिया है।

वासवदत्ता—अच्छा, अब मैं कुछ न कहूँगी, और सब बातें चुपचाप सह लिया करूँगी।

(कंचुकी आता है।)

कंचुकी—अरे ऐसा मत करो, देखते नहीं—यह तपस्वियों का आश्रम है, राजनगर नहीं।

भट—अच्छा आर्य ! (जाते हैं।)।

यौगन्धरायण—(कंचुकी से) अजी, ये किसलिए लोगों को मार्ग से हटा रहे थे ?

कंचुकी—तपस्वी, हमारे महाराज दर्शक की माता आजकल इसी आश्रम में निवास करती हैं, उन्हीं के दर्शन करने को राजनन्दिनी पद्मावती यहां आई थीं। अब वह आश्रम से लौटकर राजगृह जा रही हैं। ये सब लोग उन्हीं के साथ हैं। आश्रम के नियमों से अपरिचित होने के कारण ये सेवक लोगों को मार्ग से हटा रहे थे, सो मैंने इन्हें रोक दिया।

(पद्मावती सखियों और चेटियों सहित आती हैं।)

चेटी—इधर से राजकुमारी, इधर से। यह आश्रम का द्वार है।

(एक तपस्विनी आगे बढ़ती है।)

तापसी—स्वागत राजकुमारी !

वासवदत्ता—(आगे बढ़कर स्वगत) यही राजनन्दिनी हैं ? जैसा बड़ा कुल है, वैसा ही रूप है।

पद्मावती—आर्ये, वन्दना करती हूँ।

तापसी—चिरंजीव हो, आओ पुत्री, आओ; तपोवन तो अतिथियों का ही घर है।

पद्मावती—आर्ये, आपके इस सम्मान से मैं अनुगृहीत हुई।

वासवदत्ता—(स्वगत) रूप ही नहीं, इसकी वाणी भी बड़ी मधुर है।

पद्मावती—(कंचुकी से) आर्य, मैं आश्रम के तपस्वियों का कुछ सत्कार करना चाहती हूँ। आप उनसे पूछिए कि कौन क्या चाहता है ? जिससे मैं उनके अभीष्ट की पूर्ति करके अनुगृहीत होऊँ।

कंचुकी—बहुत अच्छा ! अजी आश्रमवासियो, तपस्वी जनो,

सुनो। राजनन्दिनी पद्मावती श्रद्धा और भक्तिपूर्वक धर्म के हेतु अर्थ के द्वारा आप लोगों की कुछ सेवा करना चाहती हैं, जिसे जिस वस्तु की आवश्यकता हो, वह कहकर राजपुत्री को अनुगृहीत करे।

यौगन्धरायण—(आगे बढ़कर) मैं एक अर्थी यहाँ उपस्थित हूँ।

पद्मावती—अहा, मेरा आश्रम में आना सफल हुआ।

तापसी—आश्रम के तपस्वियों को तो किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। यह तो कोई आगन्तुक प्रतीत होता है।

कंचुकी—आपको क्या चाहिए ?

यौगन्धरायण—(वासवदत्ता की ओर संकेत करके) मुझे अपने लिए कुछ नहीं चाहिए। यह मेरी भगिनी है। इसका पति परदेश गया है। यह धर्ममूर्ति विदुषी राजपुत्री मेरी वहिन के शील की रक्षा करने योग्य हैं। वह इसे कुछ काल तक अपने पास रखकर इसका परिपालन करें।

वासवदत्ता—(स्वगत) अरे, आर्य यौगन्धरायण मुझे यहाँ छोड़ जाना चाहते हैं ? अच्छी वात है। कुछ सोचकर ही उन्होंने ऐसा करना ठाना है।

कंचुकी—देवी, इस परिव्राजक की प्रार्थना तो वहुत भारी हैं, उसे कैसे स्वीकार करें।

पद्मावती—स्वयं ही उन्हें वांछित मांगने के लिए कहकर अब 'ना' कैसे कहें। ये जैसा कहें वही कीजिए।

कंचुकी—ऐसा ही हो, (यौगन्धरायण के निकट जाकर) अजी पूज्यवर, आपकी भगिनी का संरक्षण राजनन्दिनी स्वीकार करती हैं।

यौगन्धरायण—बड़ा अनुग्रह हुआ। (वासवदत्ता से) वत्से, देवी के पास जाओ।

वासवदत्ता—(धीरे से) क्या करूँ ? मैं मंदभागिनी यह चली।

पद्मावती—आओ वहिन।

तापसी—यह भी रूप-गुण से राजकन्या ही जान पड़ती है।

चेटी—आर्या ने ठीक ही कहा। मैं भी ऐसा ही समझती हूँ।

यौगन्धरायण—(स्वगत) चलो, आधा भार तो सिर से टला। मन्त्रियों से जैसी मन्त्रणा हुई थी—वैसा ही हो गया। राजा के पुनः प्रतिष्ठित होने पर यही पद्मावती वासवदत्ता के सच्चरित्र की साक्षी होगी और पद्मावती का विवाह भी महाराज उदयन ही से होगा।

(एक ब्रह्मचारी आता है।)

ब्रह्मचारी—(आकाश की ओर देखकर) मध्यान्ह हो गया। थक गया हूँ। कहाँ विश्राम करूँ? (इधर उधर देखकर) यह तो किसी तपस्वी का आश्रम जान पड़ता है, (देखकर) अरे! यहाँ तो राजपुरुष और नागरिक जन भी हैं। यह तो आश्रम के विपरीत है। परन्तु तपस्वी भी हैं। अरे! स्त्री!

कंचुकी—आइए, निश्शंक आइए, यह आश्रम तो सभी जनों के लिए है।

वासवदत्ता—(धीरे से) अजी नहीं।

पद्मावती—समझ गई। आर्या परपुरुष दर्शन नहीं करतीं। ठीक है। मैं ध्यान रखूंगी।

कंचुकी—ब्रह्मचारिन्, हम लोग यहाँ आपसे प्रथम आये हैं। अतः हमारा अतिथि-सत्कार स्वीकार कीजिए।

ब्रह्मचारी—(आचमन करके) बस हो गया, अधिक कष्ट मत कीजिए।

यौगन्धरायण—आर्य, आप कहाँ से आ रहे हैं और कहाँ जाने का विचार है तथा आपका शुभ-स्थान कहाँ है?

ब्रह्मचारी—निवासी मैं राजगृह का ही हूँ। पर कदाचित् आपने सुना हो—वत्सराज्य में एक लावाणक नामक ग्राम है, वहाँ मैं वेदाध्ययन के निमित्त गया था।

वासवदत्ता—(स्वगत) हाय, लावाणिक नाम सुनकर । फिर से मेरा मनस्ताप नया हो उठा ।

यौगन्धरायण—तो आप अपना वेदाध्ययन समाप्त कर चुके ?

ब्रह्मचारी—अभी नहीं ।

यौगन्धरायण—तो बीच ही में अध्ययन छोड़कर आने का क्या कारण हुआ ?

ब्रह्मचारी—अजी, वहाँ एक अतिदारुण दुर्घटना हो गई ।

यौगन्धरायण—क्या ? क्या ?

ब्रह्मचारी—वहाँ का राजा उदयन है न ।

यौगन्धरायण—हाँ, नाम सुना है महाराज उदयन का । उनकी क्या बात है ?

ब्रह्मचारी—अजी, उनकी अत्यन्त प्रिया रानी वासवदत्ता थी, अवन्तिराजपुत्री ।

यौगन्धरायण—होंगी, फिर ?

ब्रह्मचारी—राजा तो मृगया के लिए गये थे । उधर ग्राम में आग लग गई और रानी जलकर मर गईं ।

वासवदत्ता—(स्वगत) झूठ, झूठ । मैं मन्दभागिनी तो अभी जीवित हूँ ।

यौगन्धरायण—फिर क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—रानी को बचाने के लिए मन्त्री यौगन्धरायण भी साहस करके आग में कूद पड़ा था पर उसका भी पता नहीं लगा । जान पड़ता है, वह भी आग में जल गया ।

यौगन्धरायण—अरे ! सच ! फिर क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—जब राजा मृगया से लौटे, और प्रियरानी और मन्त्री का इस प्रकार जल मरने का वृत्तान्त सुना तो उनके वियोग और शोक में अधीर हो स्वयं भी आग में कूदने को उद्यत हो गये । तब बड़ी

कठिनाई से मन्त्रियों ने उन्हें रोका ।

वासवदत्ता—(स्वगत) आर्यपुत्र का मुझ पर जो अनुग्रह है, वह मैं जानती हूँ ।

यौगन्धरायण—अच्छा, फिर क्या हुआ

ब्रह्मचारी—वासवदत्ता रानी के शरीर पर के जो आभूषण जलने से बचे थे, उन्हें हृदय से लगाकर राजा मूर्छित हो गये ।

सब लोग—हाय ! हाय !!

वासवदत्ता—(आँखों में आँसू भरकर, स्वगत) अब आर्य यौगन्धरायण समृद्ध मनोरथ हुए ।

यौगन्धरायण—फिर क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—तब राजा धूलि-धूसरित भूमि से उठकर—'हा वासवदत्ते, हा अवन्तिराजपुत्री, हा प्रिये, हा शिष्ये' कहकर बहुविध विलाप करने लगे । अहा, ऐसा विलाप तो चक्रवाक भी नहीं करते । धन्य है वह स्त्री, जिसका पति उसे इतना स्नेह करता है । वह तो जल कर भी नहीं जली ।

यौगन्धरायण—क्यों जी, अमात्यों ने राजा को धैर्य नहीं बँधाया ?

ब्रह्मचारी—हाँ, हाँ, रुमण्वान् नामक अमात्य ने राजा की बहुत यत्न से शुश्रूषा की और बहुत सान्त्वना दी । परन्तु बेचारे मन्त्री की दशा भी बहुत करुणाजनक हो गई है । राजा के साथ वह भी अनाहार कर रहा है । राजा के साथ रुदन करता है । वह रात-दिन राजा की परिचर्या में लगा है । वह न होता, तो राजा भी कब के प्राण त्याग देते ।

वासवदत्ता—(स्वगत) चलो, इतना तो है कि आर्यपुत्र बहुत योग्य व्यक्ति की देखरेख में हैं ।

यौगन्धरायण—(स्वगत) अहा, रुमण्वान् अभी भी महान् भार संवहन कर रहा है । मैं तो अब रानी के भार से मुक्त हुआ । रुमण्वान् पर राजा और राज्य दोनों की रक्षा का भार है । सच है—राजा जिसके

अधीन हैं; उसी के अधीन सब कुछ है। (प्रकट) क्यों जी, अब तो राजा स्वस्थ हैं ?

ब्रह्मचारी—यह मैं नहीं जानता। राजा के चले जाने से वह गाँव उसी प्रकार सूना हो गया—जिस प्रकार नक्षत्रों के सहित चन्द्रमा के अस्त हो जाने से आकाश सूना हो जाता है। इसलिए दुःखित होकर मैं वहाँ से चला आया।

तापसी—वह राजा अवश्य गुणवान् होगा, जिसकी आगन्तुक भी प्रशंसा करते हैं।

ब्रह्मचारी—अब मैं चला। आज्ञा दीजिए।

दोनों—आपका गमन सिद्ध हो।

ब्रह्मचारी—ऐसा ही हो। (जाता है।)

यौगन्धरायण—साधु, राजकुमारी की आज्ञा से मैं भी जाना चाहता हूँ।

पद्मावती—आर्य, अपनी भगिनी के लिए कोई चिन्ता न करें।

यौगन्धरायण—आपके रहते मुझे क्या चिन्ता। (कंचुकी से) अच्छा अब मैं चला।

कंचुकी—फिर भी दर्शन दीजिए।

यौगन्धरायण—अवश्य। (जाता है।)

कंचुकी—अब हम भी चलें राजकुमारी।

पद्मावती—(तापसी से) आर्ये, अभिवादन करती हूँ।

तापसी—पुत्री, अपने अनुरूप वर प्राप्त करो।

वासवदत्ता—आर्ये, मैं भी अभिवादन करती हूँ।

तापसी—तुम भी शीघ्र ही अपने पति को प्राप्त करो।

वासवदत्ता—अनुगृहीत हुई।

कंचुकी—तो अब चलें। पक्षियों ने बसेरा ले लिया, मुनिजन स्नान के लिए जल में प्रविष्ट हो गये। प्रदीप्त यज्ञाग्नि का धुआँ

दूर तक आकाश में उठ रहा है। सूर्य भी अपनी स्वर्ण-किरणों को समेट कर अस्ताचल को जा रहा है।

(सब जाते हैं।)

दूसरा दृश्य

(राजगृह के राजप्रासाद का राजोद्यान। समय—प्रातःकाल।
दासी आती है।)

दासी—अरी कुंजरिके, ओ कुंजरिके, राजनन्दिनी पद्मावती कहां हैं ? (इधर उधर देखकर) अहा, वह माधवीलता-मण्डप के पार्श्व में गेंद से क्रीड़ा कर रही हैं। कानों में लटकती हुई कर्णचूलिका उन्होंने ऊपर कर ली है। इस समय श्रम-सीकर से विचित्र उनका मुखकमल कितना शोभायमान प्रतीत हो रहा है। चलूं, देखूं। (आगे बढ़ती है।)

वासवदत्ता—(गेंद उठाकर) हला, यह लो गेंद।

पद्मावती—अब जाने दो सखी। अब नहीं।

वासवदत्ता—सखी, इतनी देर तक गेंद फेंकते-फेंकते तुम्हारे हाथ लाल हो गये हैं।

(धात्री आती है।)

धात्री—राजनन्दिनी की जय हो। आपका वाग्दान हो गया।

वासवदत्ता—आर्ये, किसके साथ ?

धात्री—वत्सदेश के राजा उदयन के साथ।

वासवदत्ता—राजा कुशल से तो हैं ?

धात्री—हां, बहुत कुशल से हैं। आजकल वह यहीं आये हुए हैं। उन्होंने हमारी राजकुमारी के साथ विवाह करना स्वीकार कर लिया है।

वासवदत्ता—आर्ये, उन्होंने क्या स्वयं ही विवाह का प्रस्ताव किया था ?

धात्री—नहीं, वह तो किसी राज-काजवश आये थे। परन्तु उनका रूप-गुण-कुल-शील देख हमारे महाराज ने स्वयं ही यह सम्बन्ध करने का

प्रस्ताव किया।

वासवदत्ता—(स्वगत) तब तो आर्यपुत्र का इसमें कुछ दोष नहीं है।

(एक दासी आती है।)

दासी—आर्ये, जल्दी चलिए। आज ही शुभ नक्षत्र है। महारानी की आज्ञा है कि आज ही विवाह-मंगलाचार हो जाना चाहिए।

वासवदत्ता—(स्वगत) अरे, ये लोग जितनी जल्दी करते हैं, उतना ही मेरा हृदय अन्धकारावृत हो रहा है।

धात्री—जल्दी चलो, राजकुमारी।

(सब जाते हैं।)

तीसरा दृश्य

(राजगृह के राजप्रासाद का प्रमदवन। वासवदत्ता चिंतित और उदास आती है।)

वासवदत्ता—राजप्रासाद के अन्तःपुर-चतुःशाल में पद्मावती के विवाह का आयोजन हो रहा है। चारों ओर चहल-पहल है। वरागमन की प्रतीक्षा हो रही है। हाय रे दुर्भाग्य, आर्यपुत्र भी अब पराए हो गये। (प्रियंगुलता के नीचे शिलाखण्ड को देखकर) यहीं बैठूं।

(एक दासी फूल चुनती हुई आती है।)

दासी—न जाने आर्या आवन्तिका कहाँ चली गईं। अहा, यह खोई खोई सी यहाँ प्रियंगुलता के नीचे शिलाखण्ड पर बैठी हुई नीहार में छिपी चन्द्रलेखा-सी अनलंकृत भी शोभायमान प्रतीत हो रही हैं। वहीं चलूं। आर्ये आवन्तिके, बड़ी देर से मैं आपको ढूंढ़ रही हूँ।

वासवदत्ता—किस लिए?

दासी—महारानी ने कहा है—कि आप महाकुल में उत्पन्न, स्नेहशील और सब कार्यों में निपुण हैं। इसलिए आर्या ही मंगलमाला गूंथ दें।

वासवदत्ता—किसके लिए माला गूंथनी होगी?

दासी—हमारी राजनन्दिनी के लिए तो।

वासवदत्ता—(स्वगत) यह भी मुझे ही करना बदा था। अरे निर्दयी ईश्वर !

दासी—आर्ये, अब आप विलम्ब न करें। वर मणिभूमि पर स्नान कर रहे हैं, शीघ्र ही माला गूंथ दें।

वासवदत्ता—ला दे गूंथ दूं।

दासी—लीजिए। (पुष्पभाण्डकरण्डिका देती है।)

वासवदत्ता—(भाण्ड से फूल लेकर) यह कौन-सी वनस्पति है ?

दासी—सदासुहागिन।

वासवदत्ता—(स्वगत) इसे तो मैं अपने लिए भी गूंथूंगी और पद्मावती के लिए भी (दूसरी वनस्पति उठाकर) इसका क्या नाम है ?

दासी—सौत-सालिनी।

वासवदत्ता—मैं इसे न गूंथूंगी।

दासी—क्यों ?

वासवदत्ता—राजा की पहली रानी मर ही चुकी। अब इसकी क्या आवश्यकता रही।

(दूसरी दासी आती है।)

दासी—आर्ये, जल्दी कीजिए। वर इस समय सुहागिनों के साथ अन्तःपुर में प्रवेश कर रहे हैं।

वासवदत्ता—यह लो, तैयार हो गई।

दासी—बहुत सुन्दर गूंथी। अच्छा आर्ये, अब मैं चली।

(दोनों जाती हैं।)

वासवदत्ता—गई, हाय रे दुर्भाग्य, आर्यपुत्र अब पराए हो गये। चलूं, शैया पर चलकर लेटूं। कदाचित् नींद आ जाय और दुःख तथा चिन्ता से मुक्ति हो जाय। (जाती है।)

चौथा दृश्य

(राजकुमारी पद्मावती वासवदत्ता, सखियों तथा दासियों के सहित प्रमदवन में आती हैं ।)

दासी—राजकुमारी जी, महाराज तो स्नान से निवृत्त होकर अंग-राग धारण कर भोजन के लिए अन्तःपुर में गये हैं । इस समय आप यहाँ क्यों आई हैं ?

पद्मावती—अरी, मैं यह देखना चाहती हूँ कि शेफालिका लता में फूल खिले हैं या नहीं ।

दासी—खूब खिले हैं । लता फूलों से लद रही है । ललाई लिये हुए धवल पुष्प ऐसे प्रतीत हो रहे हैं जैसे मोती और प्रवाल गूँथ दिये हों ।

पद्मावती—तो देर मत कर । झटपट चुन ले ।

दासी—आप थोड़ी देर यहीं शिलापट्ट पर बैठिए, मैं अभी चुन लाती हूँ । (जाती है ।)

पद्मावती—(वासवदत्ता से) आर्ये, आओ यहाँ बैठें ।

वासवदत्ता—अच्छा ! (दोनों बैठती हैं ।)

दासी—(आकर) देखिए राजकुमारी, इतनी ही देर में मेरी अंजलि फूलों से भर गई ।

पद्मावती—(देखकर) बड़े सुन्दर फूल हैं । देखो तो सखी !

वासवदत्ता—सचमुच बड़े सुन्दर हैं ।

दासी—राजकुमारी जी, और ले आऊँ ?

पद्मावती—ना, अब और मत तोड़ ।

वासवदत्ता—सखी, रोकती क्यों हो ?

पद्मावती—आर्यपुत्र यहाँ आयेंगे, तो इन फूलों को देखकर प्रसन्न होंगे ।

वासवदत्ता—सखी, अभी से तुम पति को इतना प्यार करने लगीं ?

पद्मावती—आर्ये, न जाने मुझे क्या हो गया है। उनके बिना एक पल भी चैन नहीं पड़ता।

वासवदत्ता—(स्वगत) मुझे अब छाती पर पत्थर रखकर ये बातें भी सुननी पड़ रही हैं।

दासी—यह तो होता ही है।

पद्मावती—मेरे मन में एक संदेह है।

वासवदत्ता—क्या ?

पद्मावती—आर्यपुत्र को मैं जितना प्यार करती हूँ, उतना ही क्या आर्या वासवदत्ता भी करती होंगी ?

वासवदत्ता—उससे भी अधिक।

पद्मावती—तुमने कैसे जाना ?

वासवदत्ता—(बात बनाकर) यदि ऐसा न होता तो वासवदत्ता स्वजनों को छोड़कर उनके साथ न जाती ?

पद्मावती—हो सकता है।

दासी—राजकुमारी जी, आप भी महाराज से वीणा-वादन सीखिए।

पद्मावती—मैंने कहा तो था।

वासवदत्ता—आर्यपुत्र ने क्या कहा ?

पद्मावती—बोले नहीं। दीर्घ निश्वास खींचकर चुप हो रहे।

वासवदत्ता—इससे तुमने क्या समझा ?

पद्मावती—मुझे तो ऐसा लगा कि आर्यपुत्र आर्या वासवदत्ता के गुणों को स्मरण करके मेरे सामने केवल रोये नहीं।

वासवदत्ता—(स्वगत) यदि सचमुच यही बात है, तो मैं धन्य हूँ।

(राजा और विदूषक आते हैं।)

विदूषक—न जाने देवी पद्मावती कहाँ गईं। (आकाश में सारसों को पंक्ति बांधकर उड़ते देखकर) जब तक रानी पद्मावती नहीं आती हैं तब तक महाराज इन सारसों ही को देखकर मन बहलायें।

दासी—देखो, देखो राजकुमारी, कोकनद-माला के समान पाण्डुर सारसों की यह पंक्ति कैसी समाहित भाव से उड़ी चली जा रही है। (चौंककर अकस्मात्) अरे ! महाराज !

पद्मावती—हां, आर्यपुत्र ही हैं। (वासवदत्ता से) आर्ये, इस समय तुम्हारा साथ छोड़कर मैं आर्यपुत्र के निकट नहीं जाऊँगी। चलो, हम लोग उस माधवी-मण्डप में चलकर बैठें।

वासवदत्ता—जैसी इच्छा। (जाती हैं।)

विदूषक—जान पड़ता है, देवी पद्मावती अभी यहाँ से गई हैं।

राजा—तुमने कैसे जाना ?

विदूषक—देखिए, शेफालिका गुल्मों से अभी फूल चुने गये हैं।

राजा—ठीक कहते हो मित्र, अच्छा आओ, तब तक इसी शिला-खण्ड पर बैठकर हम देवी की प्रतीक्षा करें।

विदूषक—अच्छा (बैठकर और फिर उठकर) अजी, शरत्काल का यह तीव्र घाम तो सहा नहीं जाता। चलिए उस माधवी-मण्डप में चलें।

राजा—वहीं चलो।

(दोनों जाते हैं।)

पाँचवाँ दृश्य

(माधवी-लतामण्डप में पद्मावती और वासवदत्ता आदि बैठी हैं। राजा और विदूषक को उधर ही आता देख कर।)

पद्मावती—अब हम क्या करें। यह आर्य वसन्तक तो किसी को चैन से बैठने ही न देंगे।

दासी—राजकुमारी, मैं भौंरों से लदी हुई इस लता को हिला कर महाराज को भीतर आने से रोक दूँगी।

पद्मावती—यही कर।

(दासी लता हिलाती है।)

विदूषक—हाय, हाय, ठहरिए महाराज !

राजा—क्यों, क्या हुआ ?

विदूषक—अजी, ये दासीपुत्र भौंरे मुझे सताने लगे।

राजा—मित्र, ऐसा मत कहो, ये प्रेम-विभोर भौंरे, मदमाती प्रिया का आनन्द लेकर अब हमारी ही भांति कांता-वियुक्त हैं। हमारी ही भांति इन्हें भी किसी का आना नहीं भाता।

विदूषक—ऐसा ही होगा। तब यहीं बैठें।

(दोनों लता-मण्डप के बाहर बैठते हैं।)

राजा—(शेफालिका-मण्डप के शिलातल को देखकर) यह देखो, किसी के पैरों से हाल ही में ये फूल कुचले गये हैं। तथा यह शिलातल अभी तक गर्म है। इससे ज्ञात होता है, अभी-अभी कोई हमें देख कर यहां से सहसा ही चला गया है।

दासी—(मण्डप के भीतर) अब तो हम घिर गये।

पद्मावती—दैव-योग से ही आर्यपुत्र बाहर रुक गये।

वासवदत्ता—(स्वगत) आर्यपुत्र प्रसन्न तो दीख पड़ते हैं।

दासी—(राजकुमारी से) राजकुमारी जी, आर्या की आँखों में आँसू भर आये हैं।

वासवदत्ता—अरी, इन भौरों के उपद्रव के कारण मेरी आँख में काश-कुसुम की रेणु गिर जाने से आँसू आ गये।

पद्मावती—ठीक है।

विदूषक—(मण्डप से वाहर) महाराज, यहां तो कोई दूसरा सुनने वाला नहीं है, एक बात पूछना चाहता हूँ।

राजा—पूछ मित्र !

विदूषक—आपको महारानी वासवदत्ता अधिक प्रिय थीं या देवी पद्मावती अधिक प्रिय हैं।

राजा—मित्र, पुरानी दुःखदायी बातों को याद करने का क्या प्रयोजन ?

पद्मावती—(मण्डप के भीतर) सखी, आर्यपुत्र तो दुविधा में पड़ गये ।

वासवदत्ता—(स्वगत) मैं मन्दभागा भी ।

विदूषक—(बाहर) अजी, धीरे से कह दीजिए, कौन सुनता है । एक तो मर ही गई, दूसरी भी यहां नहीं है ।

राजा—अरे मित्र, तू बड़ा मुँहफट है, मैं कुछ नहीं कहूँगा ।

पद्मावती—(भीतर) आर्यपुत्र ने सब कुछ तो कह दिया ।

विदूषक—महाराज प्रसन्न हों । बस, आपको मेरी ही शपथ है ।

राजा—नहीं मानते तो सुनो । यद्यपि रूप, माधुर्य और शील के कारण पद्मावती मुझे अत्यन्त प्रिय है, परन्तु वासवदत्ता से बँधा हुआ मेरा मन बस में नहीं है ।

वासवदत्ता—(स्वगत) हुआ । जा कष्ट सहने पड़े, सबका मूल्य मिल गया । देखो, अज्ञातवास में भी बहुत लाभ हैं ।

दासी—राजकुमारी जी, महाराज तो बड़े भोले हैं कुछ सोचते समझते ही नहीं ।

पद्मावती—अरी, ऐसी बात नहीं । वे बड़े उदार हैं, जो अभी तक आर्या वासवदत्ता को नहीं भूले हैं ।

वासवदत्ता—भद्रे, तुमने अपने उच्चकुल के अनुरूप ही कहा ।

राजा—अच्छा, अब तुम बताओ । तुम्हें वासवदत्ता अधिक प्रिय थी या अब यह पद्मावती ।

पद्मावती—लो देखो । आर्यपुत्र भी वसन्तक बन गये ।

विदूषक—मैं नहीं बताऊँगा ।

राजा—ब्राह्मण देवता प्रसन्न हों । बस, धीरे से कह दो ।

विदूषक—तब सुनिए, मेरे लिए तो भगवती वासवदत्ता ही अच्छी थीं । भगवती पद्मावती भी दर्शनीय हैं, मधुरभाषिणी हैं, कभी गुस्सा नहीं करतीं, न उन्हें अहंकार है । चतुर भी हैं । पर देवी वासवदत्ता

में एक महान् गुण यह था कि वह स्निग्ध और मधुर मिष्टान्न लेकर यह कहती हुई मुझे खोजती ही रहती थीं—कि कहाँ है आर्य वसन्तक।

वासवदत्ता—(स्वगत) अच्छा वसन्तक भी मुझ मन्दभागा को याद करते हैं।

राजा—मित्र, पद्मावती के अनुराग को हृदय में धारण करके मैं अपना दुःख दूर करना चाहता हूँ, परन्तु वासवदत्ता की स्मृति प्रतिक्षण नवीन हो जाती है। आँसू बहाने से कुछ शान्ति मिलती है फिर लोकाचार-मर्यादा पालन भी करना पड़ता है।

विदूषक—महाराज का मुख अश्रुपात से विलन्न हो गया है, जाऊँ मैं मुखोदक ले आऊँ।

पद्मावती—आर्ये, इस समय आर्यपुत्र के नयन अश्रुपूरित हैं, इस अवसर में चलो यहाँ से निकल चलें।

वासवदत्ता—अच्छा! किन्तु तुम यहाँ महाराज के पास ठहर कर उनका मन बहलाओ। मैं निकल जाती हूँ।

दासी—आर्या ने ठीक कहा। राजकुमारी जी, आओ।

पद्मावती—क्या मैं उनके पास जाऊँ?

वासवदत्ता—जाओ सखी। (स्वयं निकल जाती है।)

(विदूषक आता है।)

विदूषक—(कमल-पत्र में जल लेकर) क्या भगवती पद्मावती हैं?

पद्मावती—आर्य वसन्तक, यह क्या है?

विदूषक—यह! यह, हाँ, अजी काश के फूलों की रज वायु से उड़ कर महाराज की आंखों में आ पड़ी थी। जिससे आंखों में जल भर आया—बस, और कुछ बात नहीं है। लीजिए यह मुखोदक।

पद्मावती—(स्वगत) चतुर पुरुषों के संगी-साथी भी चालाक होते हैं। (जल लेकर प्रकट) आर्यपुत्र की जय हो, यह मुखोदक लीजिए।

राजा—अरे, पद्मावती। वसन्तक! यह क्या है?

विदूषक—अजी यों ही।

राजा—अच्छा (आचमन करके) पद्मावती, यहाँ बैठो।

पद्मावती—जैसी आर्यपुत्र की आज्ञा। (बैठती है।)

विदूषक—महाराज, आज अपरान्ह काल में महाराज मगधपति अपने बन्धु-बान्धवों से आपकी भेंट करायेंगे। अब उठिए, वहाँ चलें। क्योंकि साकार से ही सत्कार को ग्रहण करना उचित है।

राजा—बहुत अच्छा।

(सब जाते हैं।)

छठा दृश्य

(मगध का अन्तःपुर। पद्मनिका आती है।)

पद्मनिका—अरी मधुरिके, ओ मधुरिके ! जल्दी आ, जल्दी आ।

मधुरिका—(आकर) आ गई। क्या बात है, कह।

पद्मनिका—अरी, तुझे पता नहीं कि राजकुमारी पद्मावती सिर-दर्द से पीड़ित हैं।

मधुरिका—हाय री मैया ! !

पद्मनिका—अरी, जल्दी जा, आर्या आवन्तिका को खबर कर दे। बस, तू इतना ही कहना कि राजकुमारी के सिर में दर्द है, वह आप चली आयेंगी।

मधुरिका—ठीक है। राजकुमारी कहाँ लेट रही हैं ?

पद्मनिका—समुद्रगृह में लेट रही हैं। तू जल्दी जा, मैं तब तक वसन्तक को ढूँढ़ कर कहती हूँ कि वह महाराज को भी सूचित कर दें

मधुरिका—अभी जाती हूँ। (जाती है।)

पद्मनिका—न जाने, आर्य वसन्तक इस समय कहाँ होंगे।

(इधर उधर देखती है।)

(विदूषक आता है।)

विदूषक—देवी वासवदत्ता के वियोग से संतप्त हमारे महाराज का

विधुर हृदय नई रानी पद्मावती के पाणिग्रहण करने के बाद से और भी संतप्त हो रहा है। (देखकर) अच्छा, पद्मनिका है। अरी पद्मनिके, क्या हाल-चाल है?

पद्मनिका—आर्य वसन्तक, क्या आप नहीं जानते कि राजकुमारी पद्मावती सिर के दर्द से पीड़ित हैं।

विदूषक—क्या सचमुच ? मुझे तो पता ही नहीं।

पद्मनिका—तो आप जाकर महाराज को सूचित कर दीजिए। मैं तब तक झटपट सिर पर लेप की औषधि तैयार करती हूँ।

विदूषक—कहाँ हैं देवी पद्मावती ?

पद्मनिका—समुद्रगृह में लेटी हैं।

विदूषक—अच्छा, तुम जाओ। मैं अभी महाराज से निवेदन करता हूँ।

(दोनों जाते हैं।)

सातवाँ दृश्य

(राजा उदयन आते हैं।)

राजा—अहा, अवन्तिपति की पुत्री श्लाघ्य है। जिसमें पिता के ही समान धैर्योदार गुण थे। भाग्यवश कालक्रम से फिर मुझे भार्यारूप में मगध राजपुत्री की प्राप्ति हुई है। परन्तु लावाणक ग्राम में जिसकी गात्रलता भस्म हो चुकी, उसकी याद तो चित्त से जाती ही नहीं। पाले से मारी हुई कुमुदिनी की भाँति उसकी मैं चिन्ता करता हूँ।

(विदूषक आता है।)

विदूषक—(राजा को देखकर) महाराज, जल्दी कीजिए।

राजा—किसलिए ?

विदूषक—अजी, देवी पद्मावती सिर की पीड़ा से व्याकुल हैं।

राजा—किसने कहा ?

विदूषक—पद्मनिका ने।

राजा—बड़े दुःख की बात है। सुगुणा सुरूपा प्रिया पद्मावती की प्रसन्न-मूर्ति देखकर मेरा शोक बहुत कम हो गया था। अब प्रथम ही से दुःख से संतापित मेरा मन पद्मावती को दुःखित भला कैसे देखेगा! कहाँ है भला देवी पद्मावती?

विदूषक—समुद्रगृह में लेटी हैं।

राजा—तो मित्र, मार्ग बता।

विदूषक—आइए, इधर से आइए।

(दोनों जाते हैं।)

आठवाँ दृश्य

(राजा और विदूषक समुद्रगृह के निकट)

विदूषक—यह समुद्रगृह है, आइए भीतर।

राजा—तुम आगे चलो।

विदूषक—बहुत अच्छा। (भीतर जाकर फिर लौटकर) अजी, आप ठहरिए।

राजा—क्यों, क्या है?

विदूषक—साँप है, साँप।

राजा—(आगे बढ़कर और भीतर देखकर) मूर्ख, यह तो द्वार-मुख पर लटकती हुई माला वायु के झोंके से भूमि पर गिरकर वायु से इधर उधर हिल रही है। दीप के मन्द प्रकाश में तू इसे देखकर डर गया।

विदूषक—महाराज ने ठीक कहा। यह साँप नहीं है। (भीतर जाकर फिर बाहर आता है।) देवी पद्मावती तो यहाँ हैं ही नहीं, जान पड़ता है, आकर चली गई हैं।

राजा—तुम मूर्ख हो। वे अभी यहाँ आई ही नहीं।

विदूषक—यह आपने कैसे जाना?

राजा—देखते नहीं, शैया पर बिछे हुए बिछौने पर सलवटें नहीं हैं। उज्ज्वल तकिए पर किसी प्रकार के लेप आदि का चिन्ह नहीं है।

ओढ़ने की दुलाई की तह भी नहीं खुली है। न रोगी के विनोद की यहाँ कोई सामग्री ही है।

विदूषक—(सोचकर) यह तो आपने ठीक कहा। तो आप यहाँ शैया पर बैठकर देवी की प्रतीक्षा करें।

राजा—अच्छा। (पलंग पर बैठकर) मित्र, मुझे तो नींद आ रही है, कोई कहानी सुना।

विदूषक—अच्छा, मैं कहानी कहता हूँ। आप हुंकारा भरिए।

राजा—अच्छा।

विदूषक—एक उज्जयिनी नाम की नगरी थी। वहाँ बड़े-बड़े रमणीय उद्यान...

राजा—(दुःखित होकर) तुमने फिर उज्जयिनी की बात छेड़ दी, इससे मुझे वह घटना याद आ गई, जब अवन्तिपति की पुत्री अपने परिजनों को छोड़ मेरे साथ चल खड़ी हुई थी। उस समय प्रियजन-विछोह से वह कातर हो, आँसू बहाती हुई, मेरे ऊपर गिर गई थी और मैंने उसे दोनों भुजाओं में समेट लिया था। आह !

विदूषक—अच्छा तो फिर दूसरी कहानी सुनिए। ब्रह्मदत्त नगर में काम्पिल्य नाम का राजा रहता था।

राजा—अरे मूर्ख, यों कह कि कापिल्य नगर में ब्रह्मदत्त राजा रहता था।

विदूषक—तब आप ठहरिए। मैं इसे घोख लूँ। काम्पिल्य नगर, ब्रह्मदत्त राजा। हाँ, अब सुनिए। (राजा को सोता देख) अरे महाराज तो सो गये। बड़ी ठण्ड है। एक चादर ले आऊँ। (जाता है।)

(वासवदत्ता आवन्तिका के वेश में दासी के साथ आती हैं।)

दासी—आर्या, आओ, राजकुमारी के सिर में भारी पीड़ा है।

वासवदत्ता—सुनकर दुःखी हूँ। कहाँ लेट रही हैं देवी पद्मावती ?

दासी—इसी समुद्रगृह में।

वासवदत्ता—तो आगे चल।

दासी—आप भीतर जाइए। मैं तब तक जल्दी से लेप तैयार करके लाती

वासवदत्ता—अहा, देखो विधाता की वामगति। आर्यपुत्र मेरे ही विरह में दुःखित हैं। अब देवी पद्मावती के दुःख का भार भी उन्हें सहना पड़ा। चलूँ, देखूँ। देखो, लोगों का प्रमाद। दीपक के प्रकाश में अकेले ही राजकुमारी को छोड़कर सब चले गये। परन्तु देवी पद्मावती की आँख लग गई है। यहीं पृथ्वी पर बैठ जाऊँ। परन्तु इससे तो परायापन प्रतीत होता है। पलंग पर ही बैठूँ। (बैठती है।) यह क्या बात है। इस समय पलंग पर बैठने से मेरा हृदय प्रफुल्लित हो रहा है। श्वास लेने से प्रतीत होता है कि आराम से सो रही हैं। सिर की पीड़ा अच्छी हो गई प्रतीत होती है। आधी शैया भी इसने इसीलिए छोड़ी है कि मैं इसके पास लेटूँ। मैं भी सोती हूं। (पलंग पर लेट जाती है।)

राजा—(स्वप्न में) हा! वासवदत्ते!

वासवदत्ता—(सहसा उठकर) अरे, यह तो आर्यपुत्र हैं। पद्मावती नहीं है। इन्होंने कहीं मुझे देख तो नहीं लिया। ऐसा न हो कि यौगन्ध-रायण का प्रतिज्ञा-भार निष्फल हो जाय।

राजा—हा, अवन्तिराजपुत्री!

वासवदत्ता—आर्यपुत्र स्वप्न देख रहे हैं। यहां तो इस समय कोई नहीं है। क्षण भर इन्हें अच्छी तरह देखकर हृदय को और आँखों को तृप्त कर लूं।

राजा—हा प्रिये, हा प्रियशिष्ये, एक बार तो बोलो।

वासवदत्ता—हे स्वामी, मैं बोल तो रही हूँ।

राजा—क्या तुम कुपित हो प्रिये?

वासवदत्ता—नहीं आर्यपुत्र, मैं दुःखित हूँ।

राजा—यदि कुपित नहीं तो अलंकार क्यों नहीं पहिने?

वासवदत्ता— क्या इतने पर भी आप मेरे अंग पर अलंकार देखना चाहते हैं ?

राजा—क्या तुम्हें विरचिका का स्मरण हो आया ?

वासवदत्ता—(क्रुद्ध होकर) आप नहीं भूले। यहाँ भी विरचिका।

राजा—नहीं गुस्सा मत करो। मैं हाथ जोड़ता हूँ।

(राजा दोनों हाथ फैलाता है।)

वासवदत्ता—बहुत देर हो गई। कोई मुझे देख न ले। अब चलूँ यहाँ से। पर आर्यपुत्र का हाथ जो शैया से लटक गया है, उसे उठाकर शैया पर रख दूं।

(हाथ उठाकर शैया पर रखकर जल्दी से चली जाती है।)

राजा—(सहसा उठकर) वासवदत्ता, ठहरो, ठहरो, हा धिक्। (नींद ही में उठकर दौड़ते हैं और द्वार से टकराकर गिर पड़ते हैं। फिर उठकर) यह क्या हुआ ? क्या वासवदत्ता ही थी या भ्रम था।

(विदूषक आता है।)

विदूषक—महाराज जग गये।

राजा—अरे मित्र, शुभ समाचार सुन, वासवदत्ता जीवित है।

विदूषक—अजी अब देवी वासवदत्ता कहाँ। चिरकाल हुआ उनका स्वर्गवास हुए।

राजा—नहीं मित्र, वह अभी मुझे जगाकर गई है। रुमण्वान् ने अवश्य मुझसे कुछ छल किया है। वासवदत्ता जली नहीं है।

विदूषक—नहीं महाराज, ऐसा नहीं हो सकता। मैंने आपसे जो उज्जयिनी की चर्चा की थी, उसी से देवी का आपको ध्यान रहा और आपने उन्हें स्वप्न में देखा।

राजा—यदि मैंने स्वप्न ही देखा है, तो मैं चाहता हूँ कि मैं सोता ही रहूँ और यदि यह मेरा भ्रम है तो अच्छा है कि भ्रम सदैव बना रहे।

विदूषक—महाराज, इस नगर में अवन्ति-सुन्दरी नाम की एक

यक्षिणी रहती है; वह आपने देखी होगी।

राजा—नहीं मित्र, मैंने तो जागकर शीलवती, अंजन से पूरित नेत्रों वाली और लम्बी अलकों वाली वासवदत्ता को देखा है। देखो, उसके सुख-स्पर्श से अभी तक मुझे रोमांच हो रहा है।

विदूषक—महाराज, अब इन वहम की बातों को छोड़िए; चलिए महल में चलें।

(कंचुकी आता है।)

कंचुकी—आर्य की जय हो। हमारे महाराज दर्शक ने आपकी सेवा में कहलाया है कि आपका अमात्य रुमण्वान् आरुणि पर आक्रमण करने के लिए बहुत बड़ी सेना लेकर आया है। अब हमारी चतुरंगिणी भी युद्ध के लिए सन्नद्ध है। कुछ सेना सकुशल भागीरथी के पार उतर भी गई है। अब महाराज युद्ध के लिए तैयार हो जायें और समझ लें कि गया हुआ वत्स देश आपके हाथों में आ ही गया है।

राजा—(उठकर) तो मैं भी खड्ग-हस्त प्रस्तुत हूँ। उस क्रूर आरुणि का मैं महासमर में अवश्य ही वध करूंगा।

(सब जाते हैं।)

नौवाँ दृश्य

(राजप्रासाद। कंचुकी आता है।)

कंचुकी—अजी, कांचनद्वार पर कौन शोभायमान हैं ?

प्रतिहारी—आर्य, मैं विजया हूँ। कहिए, क्या आज्ञा है ?

कंचुकी—भगवति जाओ, महाराज वत्सराज उदयन से निवेदन करो—कि महाराज महासेन के यहाँ से रैभ्यस गोत्रोत्पन्न कांचुकीय आया है। और उसके साथ महारानी अंगारवती की अन्तेवासिनी पुत्री वासवदत्ता की धात्री वसुन्धरा भी आई है। वे द्वार पर उपस्थित हैं।

प्रतिहारी—यह तो उपयुक्त समय नहीं है।

कंचुकी—किस कारण ?

प्रतिहारी—सुनिए (आज महाराज जब सूर्यमुख-प्रासाद में शयन करने गये तो वहाँ कोई वीणा बजा रहा था। उसे सुनकर महाराज ने कहा—यह तो घोषवती का स्वर-घोष है, जिसे रानी वासवदत्ता बजाया करती थीं।

कंचुकी—तब ?

प्रतिहारी—तब उन्होंने वीणा बजाने वाले से जाकर पूछा कि यह वीणा तुम्हें कहाँ मिली ? तो उसने कहा—यह मुझे नर्मदा-तट पर एक झाड़ी में मिली; यदि महाराज की इच्छा हो तो ले लीजिए। महाराज उस वीणा को हृदय से लगाकर बेसुध हो गये। फिर चेतना आने पर कहने लगे—घोषवती तो मिल गई परन्तु वह प्रिया न मिली। इस समय महाराज अत्यन्त खिन्न हैं इसलिए आर्य, मैं कैसे आपका आगमन निवेदन करूँ।

कंचुकी—हे भगवती, आप निवेदन तो कर दीजिए। हमारा आगमन भी पुत्री वासवदत्ता ही के सम्बन्ध में है।

प्रतिहारी—महाराज सूर्यमुख प्रासाद से उतर कर इधर ही आ रहे हैं, मैं अभी महाराज से आपके सम्बन्ध में निवेदन करती हूँ। आप ठहरिए।

कंचुकी—बहुत अच्छा।

दसवाँ दृश्य

(राजा और विदूषक आते हैं।)

राजा—अहा, यह घोषवती वीणा—जो प्रिया की गोद का सुख ले चुकी है, सर्वथा स्नेहशून्य और निर्मम है, जो उस तपस्विनी को स्मरण नहीं करती।

विदूषक—बस महाराज, बस। अब अधिक संताप करने से क्या लाभ है।

राजा—अरे मित्र, नहीं। इस घोषवती वीणा ने मुझे पिछली सब बातें स्मरण करा दी हैं। हाय, वह देवी अब कहाँ है, जिसकी यह

वीणा है। (ठण्डा श्वास लेकर) वसन्तक, तुम जाकर शिल्पियों से जल्दी यह वीणा ठीक करा लाओ।

विदूषक—जैसी महाराज की आज्ञा।

(वीणा लेकर जाता है।)

(प्रतिहारी आगे बढ़ती है।)

प्रतिहारी—स्वामी की जय हो। अवन्तिपति महाराज महासेन के यहाँ से रैभ्यस गोत्रोत्पन्न कांचुकीय तथा महारानी अंगारवती की भेजी हुई देवी वासवदत्ता की धात्री आर्या वसुन्धरा आई हैं। दोनों द्वार पर खड़े हैं।

राजा—तो पहले जाकर देवी पद्मावती को बुला लाओ।

प्रतिहारी—जो आज्ञा। (जाती है।)

राजा—इतने ही अल्पकाल में यह समाचार महाराज महासेन तक भी पहुँच गया।

(पद्मावती और प्रतिहारी आती हैं।)

प्रतिहारी—यह महारानी आ रही हैं।

पद्मावती—आर्यपुत्र की जय हो।

राजा—पद्मावती, तुमने सुना, महाराज महासेन के यहाँ से रैभ्यस गोत्र कांचुकीय आये हैं। उनके साथ महारानी अंगारवती की भेजी हुई देवी वासवदत्ता की धात्री आर्या वसुन्धरा भी है। दोनों द्वार पर खड़े हैं।

पद्मावती—आर्यपुत्र, अपने बन्धु-बान्धवों का कुशल-वृत्त जानने को मैं उत्सुक हूँ।

राजा—पद्मावती, तुमने अपने उच्च-कुल के अनुरूप ही कहा। ठीक है, देवी वासवदत्ता के स्वजन तुम्हारे बन्धु-बान्धव ही हैं। आओ, बैठो, मैं उन लोगों को यहीं बुलाता हूँ।

पद्मावती—आर्यपुत्र, क्या उनके सामने मेरा आपके साथ बैठना उचित होगा?

राजा—क्यों, इसमें क्या दोष है ?

पद्मावती—उन्होंने तो सदा आपको देवी वासवदत्ता के साथ बैठा देखा है। अब किसी दूसरी को देखकर उन्हें बुरा न लगेगा।-आपके दूसरे विवाह से तो वे उदासीन ही होंगे।

राजा—वृद्धजन तो छोटों के बड़े दोष को कभी नहीं देखते। तुम बैठो।

पद्मावती—जैसी आर्यपुत्र की आज्ञा। (बैठती है।) न जाने पिता ने और माता ने कंचुकी और धात्री द्वारा क्या कहला भेजा है।

राजा—पद्मावती, वे क्या कहेंगे, इसके लिए मेरा हृदय भी शंकित है। तो प्रथम मैंने अवन्तिराज की कन्या हरण की और फिर उसकी रक्षा न कर सका। यह तो मेरा दूना गुरुतर अपराध है। भाग्य ही से ऐसा हुआ। परन्तु मैं महाराज, महासेन और महारानी अंगारवती के सामने उसी प्रकार लज्जित और भयभीत हूं, जैसे कोई पुत्र अपने माता-पिता के रोष से भयभीत होता है।

पद्मावती—समय पर देवी की रक्षा न हो सकी।

(प्रतिहारी आती है।)

प्रतिहारी—धात्री और कंचुकी उपस्थित हैं।

राजा—उन्हें शीघ्र ले आओ।

प्रतिहारी—जो आज्ञा।

(जाती है, और दोनों को साथ लेकर आती है।)

कंचुकी—हमें प्रसन्नता है कि हम सम्बन्धी राज्य में आये हैं। परन्तु हमारी राजकुमारी वासवदत्ता का निधन हो गया इसका दुःख भी है। देवेच्छा ! महाराज ने शत्रुओं का विनाश करके अपना महद् राज्य फिर से प्राप्त कर लिया। क्या ही आनन्द होता, यदि आज हम देवी वासवदत्ता का कुशल-मंगल सुन पाते।

प्रतिहारी—आर्य, आगे बढ़िए, यहां महाराज विराजमान हैं।

कंचुकी—(आगे बढ़कर) महाराज की जय हो।

धात्री—स्वामी की जय हो।

राजा—आर्य, पृथ्वी के सब राजाओं का उदय अस्त करने में समर्थ किन्तु मेरे प्रति स्नेहभाव रखने वाले महाराज अवन्तिराज महासेन प्रसन्न तो हैं।

कंचुकी—हाँ महाराज, हमारे महाराज कुशलपूर्वक हैं और यहाँ के कुशल-मंगल की सदा अभिलाषा रखते हैं।

राजा—(आसन से उठकर) महाराज महासेन की मेरे लिए क्या आज्ञा है ?

कंचुकी—आपका यह शिष्टाचार तो वैदेही-पुत्र के योग्य ही है। अब महाराज आसन पर बैठकर संदेश सुनें।

राजा—जैसी महाराज महासेन की आज्ञा।

(बैठता है।)

कंचुकी—महाराज महासेन यह सुनकर प्रसन्न और संतुष्ट हुए हैं कि शत्रुओं ने जो आपका राज्य हरण कर लिया था, वह फिर आपने प्राप्त कर लिया। वीर सदैव राज्य-श्री का भोग करते हैं।

राजा—आर्य, यह सब महाराज महासेन की ही कृपा का प्रभाव है। क्योंकि उन्होंने तो सदैव अपने पुत्र ही के समान मुझे समझा। मेरा पालन किया। परन्तु मैं उनकी कन्या की रक्षा न कर सका। मैं तो उनके समक्ष अपराधी हूँ। परन्तु इन बातों का तनिक भी विचार न करके उन्होंने पूरी-पूरी सहायता भेज कर मेरा राज्य फिर दिलवाया। इससे मैं उनका बहुत ही कृतज्ञ हूँ।

कंचुकी—मैंने महाराज का संदेश निवेदन कर दिया, अब राजमहिषी अंगारवती का संदेश भगवती वसुन्धरा सुनायेंगी।

राजा—हा अम्ब, महाराज महासेन की सोलह रानियों में जो ज्येष्ठा हैं, वह पुण्यरूपा नगर-देवता-स्वरूपा मेरे दुःख से दुःखिता महारानी

कुशल से तो हैं ।

धात्री—सब भांति कुशल है । और आप सब का कुशल पूछती हैं ।

राजा—(आँखों में आँसू भर कर) हाय, सब का कुशल ? माता, जैसा कुशल है, वह देख लो ।

धात्री—महाराज, इतना शोक न करें ।

कंचुकी—धैर्य धारण कीजिए महाराज । आप जो अवन्तिराजपुत्री को अब भी इतने स्नेह से याद करते हैं, सो वह तो मरने पर भी मरी नहीं । फिर महाराज, समय आने पर मृत्यु को कौन रोक सकता है । रस्सी कट जाने पर घड़ा तो डूब ही जाता है । यह तो संसार का धर्म है—जीवन और मृत्यु ।

राजा—आर्य, अवन्तिराजपुत्री मेरी प्रियशिष्या और प्राणाधिक प्रिया थी । उसे तो मैं दूसरे जन्म में भी न भूल सकूँगा ।

धात्री—महारानी ने कहा है—क्या हुआ, हमारी पुत्री नहीं रही । मेरे और महाराज महासेन के जैसे दो पुत्र गोपाल और गोपालक हैं, उनसे अधिक आप हैं । इसी से उन्होंने आपको उज्जयिनी बुलाकर बिना अग्नि की शादी किये ही वीणा की शिक्षा के बहाने आपको वासवदत्ता सौंप दी थी । पर आपकी चंचलता के कारण विवाहकृत्य सम्पन्न न हो सके, अतः आपकी और वासवदत्ता की प्रतिमूर्तियां चित्रों में बनवाकर उज्जयिनी में विवाह के सब कार्य सम्पन्न किये गये थे । अब वही चित्रपट महारानी ने आपके पास भेजे हैं कि उन्हें देखकर आपके मन को शांति मिले ।

(चित्रपट देती है ।)

राजा—यह तो सौ राज्यों की प्राप्ति से भी बढ़कर है । जब महाराज महासेन और माता अंगारिका मुझ अपराधी से भी इतना स्नेह करते हैं, यह तो अधिक से भी अधिक है ।

पद्मावती—आर्यपुत्र, मैं भी गुरुजनों के दर्शन करना चाहती हूँ ।

धात्री—देखो महारानी । (चित्र देती है ।)

पद्मावती—(देखकर स्वगत) अरे, यह तो हू-ब-हू आर्या आवन्तिका की ही आकृति है। (राजा से) आर्यपुत्र, क्या यह आकृति ठीक आर्या की ही है न ?

राजा—ठीक क्या ? यह तो देवी वासवदत्ता की आकृति है। हाय, कैसे निर्दय अग्नि ने इस मधुरमूर्ति को जला डाला।

पद्मावती—आर्यपुत्र का चित्र देखकर पता लगेगा कि यह आकृति आर्या की ही है।

धात्री—(राजा का चित्र देखकर) लो देखो, महारानी।

पद्मावती—हूबहू आर्यपुत्र ही हैं। तब तो यह भी आर्या ही हैं।

राजा—देवी क्या बात है, चित्र देख कर तुम उद्विग्न सी क्यों हो रही हो ?

पदमावती—आर्यपुत्र, ठीक इस चित्र के अनुरूप आर्या आवन्तिका यहीं हैं।

राजा—क्या देवी वासवदत्ता की आकृति के अनुरूप ?

पद्मावती—हां।

राजा—उन्हें अभी यहां बुलाओ।

पद्मावती—आर्यपुत्र, विवाह से प्रथम एक दिन एक ब्राह्मण अपनी बहिन को मेरे पास यह कह कर रख गया था कि इसके पति परदेश गये हैं। तब से वह देवी मेरे साथ है। परन्तु वह किसी पर-पुरुष के सामने नहीं आतीं।

राजा—(निराश भाव से) यदि वह ब्राह्मण की भगिनी हैं तो खैर। संसार में तुल्यरूपता भी देखने में आती ही है।

(प्रतिहारी आती है।)

प्रतिहारी—महाराज की जय हो। उज्जयिनी का एक ब्राह्मण द्वार पर उपस्थित है—वह कहता है कि मैं राजकुमारी के पास अपनी बहिन को रख गया था। अब मैं उसे लेने आया हूँ।

राजा—पद्मावती, क्या यही वह ब्राह्मण है ?

पद्मावती—सम्भव है।

राजा—(प्रतिहारी से) ब्राह्मण को आदरपूर्वक यहाँ ले आओ।

प्रतिहारी—जैसी महाराज की आज्ञा।

राजा—पद्मावती, तुम भी उस स्त्री को ले आओ।

पद्मावती—जैसी आर्यपुत्र की आज्ञा। (जाती है।)

(प्रतिहारी के साथ यौगन्धरायण आते हैं।)

यौगन्धरायण—(स्वगत) राजा ही के लाभ के लिए मैंने रानी को छिपा दिया था, मेरा मनोरथ भी पूरा हो गया—फिर भी न जाने राजा मेरे साथ कैसा व्यवहार करें?

प्रतिहारी—आइए, यह महाराज विराजमान हैं।

यौगन्धरायण—(आगे बढ़कर) महाराज की जय हो।

राजा—यह स्वर तो कहीं सुना है। अजी, ब्राह्मण क्या तुमने ही अपनी बहन को देवी पद्मावती के पास रखा था?

यौगन्धरायण—हाँ महाराज!

राजा—तो जाओ, शीघ्र इनकी भगिनी को यहाँ ले आओ।

प्रतिहारी—जैसी महाराज की आज्ञा (जाती है।)

(पद्मावती और आवन्तिका प्रतिहारी के साथ आती हैं।)

पद्मावती—आर्ये, प्रिय निवेदन करती हूँ। तुम्हारे भाई आये हैं।

आवन्तिका—(स्वगत) देखूँ अब क्या होता है?

पद्मावती—(आगे बढ़कर) आर्यपुत्र की जय हो। यही वह थाती हैं जो ब्राह्मण देवता मेरे पास रख गये थे।

राजा—तो थाती साक्षियों के समक्ष लौटा दो। यहाँ महाशय रैभ्य हैं, और आर्या वसुन्धरा भी संयोग से उपस्थित हैं।

पद्मावती—आर्य, यह आपकी धरोहर है, लीजिए।

धात्री—(अकस्मात् चिल्ला कर) अरे, यह तो हमारी राजकुमारी वासवदत्ता है।

राजा—क्या कहा, क्या कहा ? देवी, तुम पद्मावती के साथ भीतर आओ।

यौगन्धरायण—नहीं, यहाँ मत बुलाइए। वह मेरी बहिन हैं।

राजा—किन्तु आर्या तो इन्हें महासेन की पुत्री बता रही हैं।

यौगन्धरायण—महाराज, आप महाज्ञानी हैं और भरतवंश के भूषण हैं। आपके समक्ष राजधर्म के विपरीत अनरीति न होनी चाहिए।

राजा—अच्छा, तो मुझे अच्छी तरह देखना होगा। आर्ये, तनिक अपना घूँघट तो हटाओ।

यौगन्धरायण—महाराज की जय हो।

वासवदत्ता—आर्यपुत्र की जय हो।

राजा—अरे, यह क्या चमत्कार है। आप आर्य यौगन्धरायण और तुम देवी महासेन की पुत्री ? क्या मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा ? इन्हें मैं स्वप्न में कदाचित् एक बार और देख चुका हूँ। अब फिर यह स्वप्न है या साक्षात् ?

यौगन्धरायण—महाराज, देवी को छिपाकर मैंने महान् अपराध किया है। आप स्वामी हैं। क्षमा कीजिए। (पैरों में गिर जाता है।)

राजा—(उठा कर हृदय से लगाकर) तो आप आर्य यौगन्धरायण ही हैं न। धन्य हैं आप, उज्जयिनी में उन्मत्त का स्वाँग रच कर, युद्ध में शौर्य दिखाकर और नीतिशास्त्र के अनुकूल आचरण करके बारंबार आपने मेरी और मेरे राज्य की डूबते हुए रक्षा की।

यौगन्धरायण—महाराज, हमारे जैसे राज्य-सेवक तो स्वामि-कार्य-सिद्धि को ही मुख्य मानते हैं।

पद्मावती—तो ये आर्या ही हैं। आर्ये, अनजाने मैंने जो आपके साथ सखी जैसा बराबरी का व्यवहार किया, उसके लिए पैरों पर गिर कर क्षमा चाहती हूँ। (पैरों में गिरती है।)

वासवदत्ता—(पद्मावती को उठाती हुई) उठो सौभाग्यवती, तुम्हें

अपने को अपराधी कहना शोभा नहीं देता। (अंक में भर लेती है।)

पद्मावती—अनुगृहीत हुई।

राजा—मित्र यौगन्धरायण, देवी को छिपा देने में तुम्हारा क्या उद्देश्य था?

यौगन्धरायण—केवल कौशाम्बी की रक्षा।

राजा—पर इन्हें पद्मावती के पास क्यों रखा?

यौगन्धरायण—इसलिए कि पुष्पकभद्रादि सिद्ध पुरुषों ने कहा था कि राजकुमारी पद्मावती आपकी महारानी होंगी।

राजा—रुमण्वान् को ये सब बातें ज्ञात थीं?

यौगन्धरायण—हां महाराज।

राजा—अहो, बड़ा धूर्त है रुमण्वान्।

यौगन्धरायण—महाराज, मेरा निवेदन है कि आर्या वसुन्धरा और आर्य रैभ्य को इसी समय महारानी वासवदत्ता का क्षेम-कुशल महाराज महासेन और महिषी अंगारवती को देने के निमित्त विदा कर दीजिए।

राजा—नहीं, नहीं, हम सभी पद्मावती सहित चलें।

यौगन्धरायण—यह और भी अच्छा है।

शूद्रक

(ईसा की दूसरी शताब्दी)

मृच्छकटिक

जीवन-परिचय

शूद्रक के सम्बन्ध में ठीक-ठीक कुछ नहीं कहा जा सकता। स्कन्द-पुराण में एक शूद्रक राजा का उल्लेख है। बाण ने कादम्बरी में शूद्रक को विदिशा का राजा बताया है। कालिदास ने अपने पूर्ववर्ती भास, सौमिल्ल और कविपुत्र आदि जिन कवियों की चर्चा की है, उनमें शूद्रक का नाम नहीं दिया है। मृच्छकटिक नाटक में शूद्रक ने कहीं अपना परिचय भी नहीं दिया है, न इस कविराजा की कोई दूसरी रचना उपलब्ध है। वैतालपच्चीसी में उसे वर्द्धमान का और कथासरित्सागर में शोभावती का राजा कहा है। इन स्थानों में शूद्रक को सौ वर्ष से भी अधिक दीर्घजीवी कहा है। दशकुमारचरित में भी कुछ उसके उल्लेख हैं। हर्षचरित में उसे चन्द्रकेतु का शत्रु बताया गया है, जो चाकोरा का राजकुमार था। राजतरंगिणी में उसे विक्रमादित्य के समान उदार और वीर कहा गया है। स्कन्दपुराण में उसका समय कलिसम्वत् ३२९० बताया है। जो ईस्वी सन् १८९ ठहरता है। वामन ने 'शूद्रकादि-रचितेषु प्रबन्धेषु' यह वाक्य अपनी काव्यालंकार सूत्रवृत्ति में लिखा है। इन सब प्रमाणों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि शूद्रक राजा और कवि कोई व्यक्ति वामन से पूर्ववर्ती था तथा वामन ने उसकी और रचनाएं भी देखी थीं। श्री पिश्चल ने भी अपनी श्रीनगर-तिलक की भूमिका में यही मत व्यक्त किया है। मृच्छकटिक नाटक में आर्यक के

विद्रोह का उल्लेख है, गुणाढ्य की बृहत्कथा में भी गोपालदारक आर्यक के विद्रोह की कथा है। इससे यह अनुमान होता है कि शूद्रक ईसा की दूसरी शताब्दी में शुंग-काण्वकाल का पुरुष है। परन्तु कालिदास के काल तक उसकी प्रसिद्धि नहीं हुई थी।

मृच्छकटिक में यद्यपि प्रकृष्ट नाटकीय तत्वों का अभाव है, परन्तु संस्कृत-साहित्य में उसका विशेष स्थान है। उसमें एक वेश्या के प्रेम की कहानी है। तत्कालीन समाज-व्यवस्था, अस्त-व्यस्त राजनीति, एकतन्त्री शासन-न्याय और राजकाज की परिस्थितियों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। उस समय दास-प्रथा थी, जुआ खेलने का लोगों को व्यसन था। 'आर्य' शब्द नागरिक मात्र के लिए प्रयोग किया जाता था। ब्राह्मणों का अधिक महत्व न था तथा वेश्याएँ समाज में आदर से देखी जाती थीं। वे ठाठ से रहती थीं। पर नगर-सुरक्षा का सर्वथा अभाव था। सम्भवतः इस नाटक में आभीरों के उदयकाल का संकेत है। सम्भव है, शूद्रक भी कोई गोप या आभीर राजा हो। नाटक में दृश्यों की बड़ी गड़बड़ी है। समय और स्थान तथा घटनाओं का ठीक-ठीक विभाजन नहीं किया गया है। लम्बे-लम्बे भाषण तथा श्लोक बहुत हैं। बात को बढ़ाकर कहा गया है। नाटक का कथानक भी कुछ ऐसा प्रभावशाली नहीं है।

कथासार

बहुत दिन हुए, उज्जयिनी में चारुदत्त नामक एक ब्राह्मण व्यापारी रहता था। उसका घराना बहुत अमीर था, परन्तु बाद में वह दरिद्र हो गया था। उन दिनों उज्जयिनी का राजा पालक था। राजा लोग अपने अन्तःपुर में बहुत-सी नीच जाति की स्त्रियाँ रख लेते थे। उनके सगे सम्बन्धी राजा के साले बनकर भांति-भांति के अनाचार करते थे। जिनकी सुनवाई कहीं न होती थी। ऐसी ही अनियन्त्रित राज्य-व्यवस्था उन दिनों होती थी। एक दिन उज्जयिनी की प्रसिद्ध वेश्या वसन्तसेना सन्ध्या-समय कहीं जा रही थी कि राजा का साला लम्पट शकार उसके

पीछे पड़ा। दैव-संयोग से चारुदत्त का घर सामने ही था, वसन्तसेना अन्धेरे में भागकर एक घर में घुस गई और अपने गहने चारुदत्त के पास धरोहर रखकर उन्हें संग ले अपने घर आ गई।

उन दिनों जुआ खेलने का भी बड़ा रिवाज था। चारुदत्त का पैर दबाने वाला नौकर संवाहक जुए में दस मोहर हारकर छिपता फिरता था। जुआरी उसे पकड़ना चाहता था। संवाहक दौड़कर वसन्तसेना के घर में घुस गया और वसन्तसेना से कहा—'मैं आपकी शरणागत हूँ।' वसन्तसेना ने अपना गहना जुआरी को देकर उसे छुड़ा लिया। संवाहक फिर बौद्ध भिक्षु बन गया।

उधर शर्विलक नामक एक ब्राह्मण ने सेंध काटकर चारुदत्त के घर से वसन्तसेना की धरोहर वे गहने चुरा लिये। वसन्तसेना की एक दासी मदनिका थी। उसे शर्विलक प्रेम करता था। उसने चोरी के गहने मदनिका को देकर कहा—कि इन्हें वसन्तसेना को देकर अपने को दासत्व से छुड़ा लो। पर मदनिका ने गहने पहचान कर कहा—ये गहने तो वसन्तसेना के हैं, तुमने कहाँ से पाये। तब उसने सच-सच हाल उसे बता दिया। इस पर मदनिका ने उसे समझाया, और उसके कहने से उसने वसन्तसेना के पास जाकर कहा—कि ये गहने चारुदत्त ने भेजे हैं, इन्हें रख लीजिए। वसन्तसेना ने छिपकर उन दोनों की बात सुन ली थी। उसने कहा—'चारुदत्त ने मुझसे कहा था कि जो कोई ये गहने लेकर आये, उससे मदनिका का व्याह कर देना, सो अब मदनिका मैं तुम्हें देती हूँ। इसे गाड़ी में बैठाकर ले जाओ।'

चारुदत्त को जब मालूम हुआ कि उसके घर से गहने चोर ले गया, है तो उसे बड़ी चिन्ता हुई। चारुदत्त की पत्नी धूता बड़ी पतिव्रता थी। उसने अपनी रत्नावली दे दी। वह रत्नावली लेकर चारुदत्त का मित्र मैत्रेय ब्राह्मण वसन्तसेना के घर गया और कहा—कि चारुदत्त तुम्हारे गहने जुए में हार गये हैं। उनके बदले में तुम यह रत्नावली ले लो।

वसन्तसेना सब बात समझ गई। उसने रत्नावली ले ली और कहा कि आज शाम को वह चारुदत्त से मिलने आयेगी।

रात को वसन्तसेना चारुदत्त से मिलने गई तो कहा—'अजी जुआरी महाशय, आपकी रत्नावली तो मैं जुए में हार गई, अब उसके बदले तुम ये गहने ले लो।' ये वही गहने थे, जो उसके यहां से चोरी गये थे। चारुदत्त सब बात समझ गया। उसने लज्जित होकर कहा—'चोरी की बात पर कौन विश्वास करता। लोग यही समझते कि चारुदत्त गहने पचा गया। इसी से मैंने जुआ खेलने की झूठी बात कही थी।'

दूसरे दिन सुबह चारुदत्त पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान में चला गया। और सेवक से कह दिया गया कि वसन्तसेना को गाड़ी में बैठा कर वहीं ले आना। दैवयोग से इसी समय राजा के साले की गाड़ी वहां आ गई। और उसे चारुदत्त की गाड़ी समझ वसन्तसेना उसी में बैठ गई।

राजा पालक का एक शत्रु था—गोपपुत्र आर्यक। उसे सिद्धों ने कहा था कि यह राजा होगा, इससे आर्यक को राजा ने बन्दी बना लिया था। अब अवसर पाकर आर्यक बन्दीखाने से भाग निकला और वह ठीक उस समय चारुदत्त के बगीचे के फाटक पर जा पहुँचा, जब चारुदत्त की गाड़ी वसन्तसेना को लेने वहाँ पहुँची। वसन्तसेना तो पहले ही राजा के साले की गाड़ी में जा चुकी थी। अब आर्यक चारुदत्त की गाड़ी में बैठ गया और परदा डाल दिया। गाड़ीवान ने यह समझकर कि वसन्तसेना है, गाड़ी हाँक दी।

पुष्पकरण्डक उद्यान में जब चारुदत्त की गाड़ी पहुँची, तो उसमें आर्यक को बैठा देख और शरणागत समझ कर चारुदत्त ने उसकी बेड़ी काट कर गाड़ी में ही दूर भेज दिया और आप भी घर चला आया। थोड़ी देर बाद वसन्तसेना को लेकर राजा के साले की गाड़ी भी पहुँच गई। वसन्तसेना को देखकर पहले तो राजा का साला शकार बहुत खुश हुआ। बाद में जब उसने उसकी बात नहीं मानी तो उसका गला घोट

दिया। वसन्तसेना मूर्छित होकर गिर गई। उसे मरी समझ सूखे पत्तों से ढक कर शकार भाग गया। इसी समय बौद्ध भिक्षु संवाहक ने वहां जाकर सूखे पत्तों पर अपना गीला चीवर सूखने को डाल दिया। वसन्तसेना भी होश में आ गई। भिक्षु ने उसे देख लिया कि यह तो वही वसन्तसेना है, जिसने गहने देकर उसे जुआरी से छुड़ाया था। वह उसे पास के एक विहार में ले गया।

शकार ने न्याय कचहरी में आकर अभियोग उपस्थित किया कि किसी ने वसन्तसेना को गहने के लालच में मार डाला है। वसन्तसेना की माता ने आकर बयान दिया कि वह चारुदत्त के घर गई थी। चारुदत्त ने आकर यह बात स्वीकार की। पर वह इस बात का सन्तोष-जनक जवाब न दे सका कि वह कहीं चली गई। आर्यक को उसने सहायता दी थी, यह वह नहीं बताना चाहता था। इसी समय मैत्रेय ब्राह्मण भी वहाँ आ गया। उनके पास से वसन्तसेना के गहने निकल आये। इस प्रकार अभियोग प्रमाणित होने पर चारुदत्त को वध करने का दण्ड मिल गया।

चाण्डाल ढिंढोरा पीटते हुए उसे वधस्थल पर ले गये। परन्तु जब उसे वध किया जा रहा था, तभी वसन्तसेना भिक्षु के साथ वहाँ जा पहुँची। इससे चारुदत्त के प्राण बच गये। इसी समय शर्वलिक ने वहाँ पहुँचकर कहा—कि आर्यक पालक राजा को मारकर उज्जयिनी के राजा हो गये हैं, और आपको कुशावती का राज्य दिया है। उसने वसन्तसेना से चारुदत्त के विवाह का भी प्रस्ताव किया, जिसे दोनों ने स्वीकार कर लिया। शकार को चारुदत्त ने क्षमा कर दिया। भिक्षु को सेनापति बना दिया। इसी समय उन्हें सूचना मिली कि चारुदत्त की पत्नी अग्निप्रवेश कर रही है। इस पर सबने जाकर उसे रोका। सब संकट दूर होने पर सब लोग प्रसन्नता से घर लौटे।

पात्र-सूची

पुरुष-पात्र—

चारुदत्त	उज्जयिनी का व्यापारी
मैत्रेय	चारुदत्त का मित्र ब्राह्मण
शकार	राजा पालक का साला
संवाहक (भिक्षु)	चारुदत्त का पैर दबाने वाला नौकर
जुआरी, माथुर, दर्दुरक	जुआ खेलने वाले
शर्वलिक	एक प्रसिद्ध चोर
आर्यक	गोपपुत्र, राजा पालक का शत्रु
दो चाण्डाल	फांसी देने वाले नीच
वर्धमानक	चारुदत्त का नौकर
स्थावरक	शकार का नौकर
रोहसेन (बालक)	चारुदत्त का पुत्र
विट	शकार का साथी
वीरक, चन्दनक	प्रधान रक्षक
न्यायाधीश	कचहरी का जज
कायस्थ	कचहरी का क्लर्क
श्रेष्ठी कायस्थ	पेशकार
शोधनक	कचहरी का नौकर

स्त्री-पात्र—

वसन्तसेना	उज्जयिनी की प्रसिद्ध वेश्या
रदनिका	चारुदत्त की दासी
धूता	चारुदत्त की पत्नी
मदनिका	वसन्तसेना की दासी
वृद्धा	वसन्तसेना की माता
चेटी, दासी आदि	

मृच्छकटिक

पहला दृश्य

(उत्तरीय हाथ में लिये मैत्रेय आता है ।)

मैत्रेय—मित्र चारुदत्त, यह चमेली के फूलों से सुगन्धित उत्तरीय आपके मित्र चूर्णवृद्ध ने आपके लिए भेजा है । (देता है ।)

चारुदत्त—(लेकर) मित्र, जैसे घने अन्धेरे में दीपक का उजाला अच्छा लगता है उसी तरह दुःख का अनुभव होने पर ही सुख अच्छा लगता है। परन्तु जिसे सुख-भोग के उपरान्त दुःख मिलता है, वह तो जीवित भी मृतक है ।

मैत्रेय—मित्र, मांगने वालों को दे देकर आप जो रिक्त हो गये हैं, सो आपका यह वैभव प्रतिपदा की क्षीण चन्द्रकला-सा शोभनीय है ।

चारुदत्त—मित्र, दरिद्र मनुष्य लज्जित रहता है । लज्जित मनुष्य का तेज नष्ट हो जाता है । और तेजहीन पुरुष का सब तिरस्कार करते हैं । अच्छा, मैं सान्ध्य कृत्य से निवट लूं ।

(नेपथ्य में)

—अरी, वसन्तसेना, ठहर, ठहर ! ।

(घबड़ाई हुई वसन्तसेना आती है । उसका पीछा करते हुए विट, शकार और चेट आते हैं ।

विट—अरी वसन्तसेना, ठहर, ठहर ।

शकार—ठहर जा, वसन्तसेना, क्यों गिरती पड़ती भाग रही है । डरे मत, यह देख, आग में पड़े मांसखण्ड की भाँति मेरा हृदय जल रहा है ।

वसन्तसेना—पल्लवक ! पल्लवक ! परभृते ! परभृते !

शकार—(डरकर) अरे, यहाँ कोई मनुष्य है ?

वसन्तसेना—माधविके ! माधविके !

विट—(हँसकर) मूर्ख, वह तो अपने परिजनों को पुकार रही है।

शकार—अरी वसन्तसेना, तू चाहे जिसे पुकार, जब मैं तेरे पीछे हूँ तो कौन तुझे बचा सकता है ? (पकड़कर) अब बोल, काट लूँ तेरा सिर।

वसन्तसेना—आर्य, मैं अबला हूँ।

शकार—इसी से तो तुझे मैंने नहीं मारा।

वसन्तसेना—आप गहने लेना चाहते हैं, तो ले लें।

विट—अरी, गहने रहने दे। मुझ देव-पुरुष की तू कामना कर।

वसन्तसेना—(क्रोध से) दूर हो अनार्य। (छूटकर अंधेरे में छिप जाती है।)

शकार—अरे, इस अंधेरे में वह तो भाग गई।

वसन्तसेना—(देखकर स्वगत) यह तो आर्य चारुदत्त के घर का पिछवाड़े वाला द्वार प्रतीत होता है।

(चारुदत्त और मैत्रेय भीतर)

चारुदत्त—लो मित्र, मैं जप कर चुका हूँ, अब तुम जाकर मातृदेवी को बलि चढ़ा आओ। रदनिके, तू भी जा।

मैत्रेय—रदनिके, बलिदीप थाम। मैं द्वार खोलता हूँ। (खोलता है।)

वसन्तसेना—(देखकर) भाग्य से द्वार खुल गया। मैं इसी में घुस जाऊँ।

(आँचल से दीपक बुझाती हुई घुस जाती है।)

चारुदत्त—मैत्रेय, क्या हुआ ?

मैत्रेय—अजी, हवा के झोंके से दीप बुझ गया। रदनिके, तू बाहर खड़ी रह, मैं दीप जलाकर लाता हूँ। (जाता है।)

शकार—अरे खोजो, वसन्तसेना को खोजो। (अंधेरे में रदनिका को

पकड़कर) पकड़ लिया, पकड़ लिया।

रदनिका—(डरकर) अजी यह भलेमानसों का काम नहीं।

विट—यह तो कोई दूसरा ही है।

मैत्रेय—(आकर) रदनिके, रदनिके!

शकार—पुरुष, पुरुष।

रदनिका—आर्य मैत्रेय, देखो तो तनिक।

मैत्रेय—(लाठी उठाकर) अरे, यह तो राजा का साला है। दुष्ट, आर्य चारुदत्त आज दरिद्र हो गये हैं, तो क्या तुम उनके घर में घुस कर उनके परिजनों से मार-पीट करोगे?

शकार—(मैत्रेय से) अरे कौए के पैर की तरह छोटे माथे वाले वटुक, उस दरिद्र चारुदत्त से कह दे कि सोने के गहनों से सजी हुई यह नटी वसन्तसेना, हमारे अनुनय आग्रह करने पर भी, तुम्हारे घर चली आई है। उसे तुम हमारे हवाले कर दो।

(भीतर)

चारुदत्त—(वसन्तसेना को रदनिका समझकर) रदनिके, रोहसेन को सर्दी लग गई है। इसे भीतर ले जाकर उत्तरीय उढ़ा दे।

(उत्तरीय देता है।)

वसन्तसेना—(उत्तरीय लेकर स्वगत) इन्होंने मुझे सेविका समझा है। (सूँघकर) अहा, यह उत्तरीय तो चमेली के फूलों में बसाया हुआ है (मुँह फेर कर छिपाती है।)

चारुदत्त—अरी रदनिके, बोलती क्यों नहीं?

मैत्रेय—(आकर) आर्य, रदनिका तो यह रही।

चारुदत्त—तब वह कौन है?

मैत्रेय—अजी, यह वसन्तसेना है।

चारुदत्त—वसन्तसेने, अनजान ही में मैं तुमसे दासी का-सा व्यवहार करने का अपराधी बना।

वसन्तसेना—आर्य, मैं अयोग्या ही आपके घर में घुस आने की अपराधिनी हूँ। कृपाकर ये गहने अपने घर रख लीजिए। इन्हीं के लिए ये दुष्ट मेरा पीछा कर रहे हैं।

चारुदत्त—मैत्रेय, गहने सम्हाल लो।

वसन्तसेना—अनुगृहीत हुई (गहने देती है।) आर्य, मैं इन मैत्रेय के साथ घर जाना चाहती हूँ।

चारुदत्त—मैत्रेय, जाओ।

मैत्रेय—अजी, इस हंसगामिनी के साथ तो आप ही जाइए। ब्राह्मण की जान घपले में मत डालिए।

चारुदत्त—अच्छा, मैं ही जाता हूँ। वर्द्धमानक, दीपक जलाओ।

वर्द्धमान—(धीरे से) आर्य, तेल नहीं है।

चारुदत्त—तो रहने दे। राजपथ पर प्रकाश फैलाने वाला चन्द्रमा उग आया है।

(जाता है।)

दूसरा दृश्य

(नेपथ्य में—पकड़ा हुआ जुआरी भाग गया। पकड़ो, पकड़ो!!)

(घबराया हुआ संवाहक आता है।)

संवाहक—जुआ बड़ा दुःखदायी है। लो देखो, मैं कौड़ी ही से मारा गया। (इधर उधर देखता है) जुआरी मुझे खोजते हुए कहीं इधर ही न चले आयें। लो, मैं इस सूने मन्दिर में छिपा जाता हूँ।

(माथुर और जुआरी आते हैं।)

जुआरी—(पदचिन्ह देखकर) यहाँ तक तो पाँवों के निशान हैं।

माथुर—मन्दिर सूना है। धूर्त इसी मन्दिर में घुसा है। आओ देखें।

(दोनों मन्दिर में जाते हैं।)

माथुर—यहाँ तो कोई नहीं है। आओ जुआ खेलें। (पासा फेंकता है।)

जुआरी—मेरा दाव है, मेरा।

माथुर—नहीं, मेरा।

संवाहक—(मूर्ति के पीछे से निकलकर) मेरा दाव है।

जुआरी—पकड़ो, वह रहा (पकड़ कर) दे दस मोहर।

संवाहक—अजी, दया कीजिए।

माथुर—दे, दे, अभी दे। (मारते हैं।)

संवाहक—कहाँ से दूँ ?

माथुर—अपने वाप को वेचकर दे।

संवाहक—मेरा बाप है ही नहीं।

माथुर—तो मां को वेचकर दे।

संवाहक—मां भी नहीं है।

माथुर—तो अपने को वेचकर दे।

संवाहक—अच्छा, मुझे राजमार्ग पर ले चलो।

माथुर—चल।

संवाहक—(राजमार्ग में पुकार कर) अजी कोई मुझे दस मुहरों में खरीद ले ! मैं सब सेवा करूँगा। हाय, कोई नहीं सुनता। आर्य चारुदत्त के दरिद्र होने से मैं ऐसा हतभाग्य हो गया।

माथुर—अरे, तू हमें मुहर दे। (पकड़कर घसीटता है।)

संवाहक—आर्यो, बचाओ, बचाओ।

(दर्दुरक आता है।)

दर्दुरक—जुए से मैंने सब कुछ पाया और इसी में सब कुछ गँवा दिया। अब मुझे भागने का अवसर मिल गया। यह सभिक माथुर इस जुवारी संवाहक की दुर्गति कर रहा है। इस वेचारे को वचाऊँ। (आगे बढ़कर) अजी माथुर, क्या मामला है ?

माथुर—इसे दस मुहरें देनी हैं।

दर्दुरक—तुम पतित हो जो दस मुहर के लिए मनुष्य को मारते हो।

छोड़ दो उसे ।

(तीनों में मारपीट होती है। दर्दु रक माथुर की आँख में धूल डालता है। अवसर पाकर संवाहक भाग जाता है।)

तीसरा दृश्य

(वसन्तसेना का घर। संवाहक भागता हुआ घर में घुस जाता है।)

वसन्तसेना—कौन ? कौन ?

संवाहक—आर्ये शरणागत हूँ।

वसन्तसेना—शरणागत को अभय। दासी, द्वार वन्द कर दे।

(दासी द्वार वन्द कर देती है।)

वसन्तसेना—तुम्हें किसका भय है ?

संवाहक—आर्ये, महाजन का।

वसन्तसेना—तुम कौन हो ?

संवाहक—आर्ये, मैं पाटलिपुत्र-निवासी संवाहक हूँ। मैं आर्य चारुदत्त की सेवा में था। उनके धनहीन होने से मेरी नौकरी छूट गई। और मैं जुआरी हो गया और दुर्भाग्य से दस मोहर हार वैठा।

(नेपथ्य में)

—मैं लुट गया, मैं नष्ट हो गया।

संवाहक—आर्ये, सभिक और जुआरी खोजते हुए आ पहुँचे।

वसन्तसेना—मदनिके, जा सभिक और जुआरी को यह आभूषण दे दे और कह कि इसे संवाहक ने भेजा है।

(कंगन हाथ से उतार कर देती है।)

दासी—(वाहर आकर) आर्ये, आप में सभिक कौन है ?

माथुर—हे मधुराक्षी, हमारे पास धन नहीं है, किसी और के पास जाओ।

दासी—अजी, तुम्हारा कोई ऋणी भी है ?

माथुर—हाँ, हाँ, दस मोहर का हमारा ऋणी भाग गया है।

दासी—तो उसी ने यह कंगन भेजा है।

माथुर—(कंगन लेकर प्रसन्नता से) उस छलपुत्र से कहना कि तुम्हारा ऋण चुक गया। चलो जी, फिर जुआ खेलें।

(जाते हैं।)

चेटी—(आकर) चले गये।

वसन्तसेना—अच्छा हुआ। (संवाहक से) अब आप भी प्रसन्न हों।

संवाहक—आर्ये, लाइए, आपकी देह का मर्दन संवाहन कर दूँ।

वसन्तसेना—आपने जिनके कारण यह कला सीखी है, उन्हीं की सेवा कीजिए।

संवाहक—आर्या ने चतुराई से अस्वीकार कर दिया; तो अब मैं बौद्ध भिक्षु हो जाऊँगा और सिर मुँडाकर आनन्द से राज-मार्ग पर विचरण करूँगा।

(जाता है।)

चौथा दृश्य

(चारुदत्त और मैत्रेय आते हैं।)

चारुदत्त—मित्र, रेभिल गाता खूब है।

मैत्रेय—अजी आधी रात हो गई। गली में कुत्ते सुख से सो रहे हैं। चन्द्रमा अस्त हो रहा है। अन्धकार बढ़ रहा है। (देखकर) यह घर आ गया। अरे, वर्द्धमान द्वार खोल दे।

(सेवक द्वार खोलता है। दोनों भीतर जाते हैं।)

मैत्रेय—अरे, पैर धोने के लिए रदनिका को ला।

चारुदत्त—अजी, सोती हुई को क्यों जगाते हो। वर्द्धमान ही धो देगा।

वर्द्धमानक—(पैर धुलाकर) आर्य मैत्रेय, मैंने दिन भर इन गहनों की रक्षा की है। अब रात को आपकी बारी है। (देकर जाता है।)

मैत्रेय—मित्र, इन्हें अन्तःपुर में भेज दूँ?

चारुदत्त—नहीं मित्र, यह वेश्या की धरोहर है। तुम्हीं पास रखो।

मैत्रेय—आँखों में नींद घिरती चली आ रही है। चलो सोयें।

(दोनों सोते हैं।)

पाँचवाँ दृश्य

(चारुदत्त के घर का पिछवाड़ा। शर्विलक आता है।)

शर्विलक—चन्द्रमा अस्त हो गया। बाग में सेंध देकर मैं घर की चौहद्दी में तो घुस आया। (देखकर) भीतर दीपक जल रहा है। दो पुरुष सो रहे हैं। अच्छा बीज फेंककर देखूँ, कहीं धरती में तो धन नहीं गड़ा है। (बीज फेंकता है) बीज नहीं फैलता। यह तो सचमुच दरिद्र का घर है। चलो यहाँ से। (जाना चाहता है।)

मैत्रेय—(सोते हुए) मित्र, कहीं चोर सेंध लगाकर न आ जाय। ये गहने तुम्हीं रख लो।

शर्विलक—अरे, पुराने अंगोछे में बँधे हुए यह तो सचमुच स्वर्ण आभरण हैं, ले लूँ। परन्तु दीपक जल रहा है। पहले दीपक बुझाने के कीड़े को छोड़ूँ। (कीड़ा छोड़ता है। दीपक बुझ जाता है। चोर आभूषण लेता है।)

छठा दृश्य

(रदनिका आती है।)

रदनिका—(सेंध देखकर) हाय, हाय, घर में सेंध लग गई। आर्य मैत्रेय उठो, उठो, चोर सेंध मारकर निकल गया।

चारुदत्त—(जगकर) कहाँ, कहाँ ?

रदनिका—यह देखिए, यहाँ।

मैत्रेय—अजी वे गहने कहाँ हैं ? अच्छा हुआ, मैंने तुम्हें दे दिये।

चारुदत्त—मित्र, परिहास मत करो।

मैत्रेय—परिहास नहीं मित्र।

चारुदत्त—तो गहने चोरी चले गये। (सोच में बैठ जाता है।)

अब मैं क्या करूँ ? सब मुझ को दोष देंगे। देव ने मुझे धनहीन कर दिया। अब चरित्रहीन भी होना पड़ा।

सातवाँ दृश्य

(अन्तःपुर में दासी के साथ वधू धूता बात करती है।)

धूता—आर्यपुत्र और आर्य मैत्रेय कुशल से तो हैं। कहीं चोट तो नहीं लगी।

दासी—सब ठीक है, पर उस वेश्या की धरोहर सब गहने चोर ले गया।

धूता—तो आर्यपुत्र शरीर ही से सुरक्षित हैं, चरित्र से नहीं रहे। तू आर्य मैत्रेय को बुला।

दासी—अभी जाती हूँ।

(जाती है। मैत्रेय को लेकर आती है।)

मैत्रेय—(आकर) आपका कल्याण हो।

वधू—आर्य प्रणाम करती हूँ। तनिक सुनिए, मैंने रत्नषष्ठी का व्रत किया है। उसमें अपनी सम्पत्ति के अनुसार ब्राह्मण को दान दिया जाता है। इसलिए यह रत्नावली ले लीजिए।

मैत्रेय—(लेकर) कल्याण हो। (स्वगत) धन्य है इनकी उदारता।

(चारुदत्त के पास आता है।)

—मैं यह लाया हूँ।

चारुदत्त—मैत्रेय, इस रत्नावली को लेकर वसन्तसेना के पास जाओ और उससे कहो, उनके गहने मैं जुए में हार गया। उनके बदले में वह यह रत्नावली ले लें।

मैत्रेय—अजी, उन थोड़े से गहनों के बदले आप यह अमूल्य रत्नावली दे रहे हैं।

चारुदत्त—नहीं मित्र, जिस विश्वास से वसन्तसेना ने धरोहर हमारे

पास रखी थी, उस विश्वास के लिए यह रत्नावली उसे दे आओ।

मैत्रेय—हाय रे दारिद्रय !

चारुदत्त—मित्र, मैं दरिद्र कहाँ हूँ। अनुकूल पत्नी, सुहृद मित्र, सत्य की रक्षा, सब कुछ मेरे पास है। जाओ, मैं भी प्रातःकृत्य से निश्चिन्त होऊँ।

(जाते हैं।)

आठवाँ दृश्य

(वसन्तसेना का घर। शर्विलक आता है)

शर्विलक—यही आर्या वसन्तसेना का घर है। (देखकर) अहा, वह मेरी प्रिया मदनिका आ रही हैं।

मदनिका—शर्विलक तुम हो, स्वागत है।

शर्विलक—(सशंक चारों ओर देखकर) एक गुप्त बात है।

वसन्तसेना—मदनिका कहाँ चली गई। (झरोखें से देखकर) वह तो उस पुरुष से बात कर रही है। कहीं वह उससे प्रेम तो नहीं करती। अच्छा छिपकर उनकी बात सुनूँ।

शर्विलक—मदनिके, तुमने कहा था कि धन लेकर तुम्हें वसन्तसेना मुक्त कर देंगी।

मदनिका—पर तुम्हारे पास धन कहाँ है ?

शर्विलक—तुम वसन्तसेना से जाकर कहो कि वह ये आभूषण लेकर तुम्हें मुक्त कर दें। (आभूषण देता है।)

वसन्तसेना—अरे, ये तो मेरे ही गहने हैं।

मदनिका—ये गहने तो आर्या वसन्तसेना के हैं। उन्होंने आर्य चारुदत्त के यहाँ धरोहर के रूप में रखे थे।

शर्विलक—दुःख की बात है, तुम्हें मुक्त करने को आज रात मैंने अतिसाहस किया। तो अब क्या किया जाय ?

मदनिका—तुम आर्य चारुदत्त के कुटुम्बी बनकर ये गहने आर्या के

पास ले जाओ। इससे न तुम चोर समझे जाओगे, न चारुदत्त पर ऋण रहेगा। आर्या को अपने गहने मिल जायेंगे। चलो।

(दोनों वसन्तसेना के पास आते हैं।)

शर्विलक—(वसन्तसेना से) आपका कल्याण हो। सार्थवाह चारुदत्त ने कहा है कि घर बहुत पुराना है, इससे इन गहनों की रक्षा करना बहुत कठिन है। इन्हें आप ले लें। (गहने देता है और जाने लगता है।)

वसन्तसेना—अजी, आर्य चारुदत्त ने मुझसे कहा है कि जो कोई इन गहनों को लाकर दे, उसे मदनिका समर्पित कर देना। इसी से मदनिका आपको देती हूँ। इसे पत्नीभाव से ग्रहण कीजिए। मदनिके, गाड़ी पर चढ़।

मदनिका—(रोती हुई) आर्ये, आप मुझे निकाल रही हैं। (चरणों पर गिरती है।)

वसन्तसेना—(उठाकर) अब तो तुम मेरी वन्दनीया हो गई। मुझे भूल मत जाना। जाओ।

(दोनों गाड़ी में बैठते हैं।)

(नेपथ्य में)

—राजपुरुष यह सूचना देते हैं कि किसी सिद्ध पुरुष ने कहा है कि गोपपुत्र आर्यक राजा होगा। इसी से राजा पालक ने उसे पकड़ कर वन्दीगृह में डाल दिया है। अपने-अपने स्थानों पर प्रहरी सावधान हो जायें।

शर्विलक—(सुनकर) क्या राजा पालक ने मेरे मित्र आर्यक को पकड़ लिया? पृथ्वी पर स्त्री और मित्र दो ही प्रिय हैं। पर इस समय मित्र वन्दी है, इसलिए स्त्री की अपेक्षा वही मुख्य है।

(गाड़ी से उतरता है।)

मदनिका—(आँसू भरकर) आपका विचार ठीक है। पर आप

पहले मुझे घर के गुरुजनों के पास पहुँचा दीजिए।

शर्विलक—(दास से) भद्र, मेरी प्रिया को रेभिल सार्थवाह के घर पहुँचा दो।

दास—बहुत अच्छा।

(जाते हैं।)

नौवाँ दृश्य

(वसन्तसेना उद्यान में बैठी है। मैत्रेय आता है।)

दासी—आर्ये, शुभ सम्वाद है। आर्य चारुदत्त के यहाँ से ब्राह्मण आया है।

वसन्तसेना—तो उन्हें बंधुल के साथ आदरपूर्वक ले आ।

दासी—जो आज्ञा।

(जाती है और मैत्रेय के साथ आती है।)

मैत्रेय—(देखकर) अरे, वसन्तसेना के तो बड़े ठाट-बाट हैं। किधर से चलूँ। अजी यह कहो, आर्या वसन्तसेना कहाँ है ?

दासी—वे सामने उद्यान में बैठी तो हैं।

मैत्रेय—(आगे बढ़कर) आपका मंगल हो।

वसन्तसेना—(उठकर) स्वागत, यह आसन है। बैठिए। कहिए कैसे कष्ट किया ?

मैत्रेय—अजी, आर्य चारुदत्त बद्धाञ्जलि यह निवेदन करते हैं कि अपना समझकर आपने जो गहने रखे थे, उन्हें मैं जुए में हार गया। उनके बदले में आप यह रत्नावली ले लीजिए। (देता है।)

वसन्तसेना—(हंसकर रत्नावली लेकर) मेरी ओर से उन जुआ खेलने वालों से कहना कि मैं सूर्यास्त के बाद उनसे मिलने आऊँगी।

मैत्रेय—कह दूंगा।

(जाता है।)

दसवां दृश्य

(चारुदत्त आसन पर अपने घर में बैठे हैं)

चेट—(आकर) आर्य, वन्दना करता हूँ । आर्या वसन्तसेना आई हैं ।

चारुदत्त—प्रिय वचन सुनकर मैंने कभी भी किसी को खाली नहीं जाने दिया । यह उत्तरीय ले ।

(चेट प्रणाम करके जाता है ।)

(अभिसारिका के वेश में वसन्तसेना आती है ।)

वसन्तसेना—(फूलों से मारकर) अजी, जुआरी महोदय, आपकी सान्ध्य बेला आनन्दमयी तो है ?

चारुदत्त(उठकर)—तुम्हारे सान्निध्य में यह सन्ध्या मेरे सब दुःख दूर कर देगी । यह आसन है, बैठो ।

(सब बैठते हैं ।)

मैत्रेय—(कान में) मैं इनसे कुछ पूछूं ?

चारुदत्त—पूछो ।

मैत्रेय—अजी, इस अंधेरे में आने का आपने क्यों कष्ट किया ?

दासी—आर्या यह पूछने आई हैं कि रत्नावली का मूल्य कितना है ?

मैत्रेय—(धीरे से कान में) यह तो कुछ और चाहती है ।

दासी—अजी, उस रत्नावली को अपनी समझकर भूल से ये जुए में हार गई । आप ये आभूषण रख लें ।

(आभूषण मैत्रेय को देती है ।)

मैत्रेय—(कान में) मित्र, ये तो वही आभूषण हैं, जिन्हें चोर हमारे घर से चुरा ले गया था ।

चारुदत्त—(धीरे से) हमने जो छल किया, वह यह भी कह

रही है। (प्रकट) भद्रे, सचमुच क्या ये वही आभूषण हैं ?

दासी—आर्य, वही हैं।

वसन्तसेना—(निकट आकर) आर्य, आप इस रत्नावली के बराबर मेरा मन समझो।

चारुदत्त—(लज्जित होकर) वसन्तसेने, चोरी पर कौन विश्वास करता। सब कहते कि दरिद्र चारुदत्त धरोहर खा गया।

(वसन्तसेना चारुदत्त के पास बैठती है।)

चारुदत्त—अरे मेघ और गरज।

मैत्रेय—मित्र, यह बिजली की गरज से डर गई है।

चारुदत्त—तो चलो, भीतर चलें।

(सब जाते हैं।)

ग्यारहवां दृश्य

(वसन्तसेना सो रही है। दासी आती है।)

दासी—अजी, उठिए।

वसन्तसेना—क्या सवेरा हो गया ?

दासी—हो ही गया।

वसन्तसेना—तेरे वह जुआरी कहाँ गये ?

दासी—आर्य चारुदत्त पुष्पकरण्ड नामक जीर्णोद्यान में गये हैं, और वर्द्धमानक से कह गये हैं कि गाड़ी में बैठाकर आर्या को वहीं ले आये।

वसन्तसेना—तो तू यह रत्नावली आर्या धूता को दे आ। कहना, यह तो आप ही के कण्ठ में शोभा देती है।

(दासी जाकर आती है।)

दासी—अजी, आर्या धूता कहती हैं कि आर्यपुत्र ने प्रसन्न होकर इसे आपको दिया है, इसलिए मैं नहीं ले सकती। मेरे भूषण तो आर्यपुत्र ही हैं।

(रोहसेन को लेकर रदनिका आती है।)

रदनिका—आओ वत्स, इस गाड़ी से खेलें।

बालक—(विगड़कर) यह तो मिट्टी की गाड़ी है, मुझे सोने की गाड़ी दे।

रदनिका—(दुःख से) वेटा, हमारे यहाँ सोना कहाँ ? (वसन्तसेना को देखकर) आर्ये प्रणाम करती हूँ।

वसन्तसेना—(हाथ फैलाकर) आओ पुत्र, तुम रोते क्यों हो ?

रदनिका—अपने पड़ोसी गृहपति की सोने की गाड़ी से यह अभी खेल चुका है। अब कहता है, वैसी ही गाड़ी मुझे दे।

वसन्तसेना—(आँसू भर कर गहने उतार कर) यह लो (गहने गाड़ी में भर देती है।) इस सोने की गाड़ी से खेलो।

(चेट वैलगाड़ी लेकर आता है।)

चेट—रदनिके, आर्या वसन्तसेना से कह दो कि पर्देवाली गाड़ी द्वार पर खड़ी है।

रदनिका—आर्ये, गाड़ी आ गई।

वसन्तसेना—तो ठहरो, मैं अभी तैयार होती हूँ।

वर्द्धमान—अरे, मैं परदे का कपड़ा तो भूल ही गया। अभी लेकर आता हूं। (जाता है)

(दूसरी गाड़ी पर स्थावरक आता है।)

स्थावरक—(स्वगत) राजा के साले, संस्थान ने कहा है कि जल्दी गाड़ी लेकर पुष्पकरंडक उद्यान में आ, सो वहीं जा रहा हूं। पर यह मार्ग रोके किस की गाड़ी खड़ी है। अरे गंवारो, हटाओ। यह राजा के साले की गाड़ी है। (देखकर) यह आर्य चारुदत्त का वाग है। अच्छा, गाड़ी यहीं रोकता हूँ।

(गाड़ी रोक कर उतरता है।)

वसन्तसेना—(दासी से) तू यहीं रह।

(स्थावरक की गाड़ी में वैठ जाती है। स्थावरक गाड़ी हाँकता है।)

(नेपथ्य में)

—अरे रक्षको, अपनी जगह पर सावधान रहो। गोपपुत्र आर्यक वन्दीगृह के रक्षकों को मारकर भाग गया है। उसे पकड़ो।

स्थावरक—जल्दी जल्दी चलूं। इस नगरी में वड़ा आतंक छाया है।

(वैलों को तेज हाँकता है।)

(आर्यक आता है।)

आर्यक—प्रिय मित्र शर्विलक की सहायता से बड़ी कठिनाई से भागा हूँ। परन्तु पैरों में वेड़ियाँ पड़ी हैं। अव कहाँ जाऊँ? (इधर उधर देखता है।)

(वर्द्धमान आता हैं)

वर्द्धमान—अजी मैं आ गया। आर्या वसन्तसेना से कह दो, गाड़ी में वैठे।

आर्यक—(स्वगत) यह गणिका की गाड़ी है। इसी पर चढ़ चलूं।

(धीरे से चढ़ता है। पैर की जंजीर वजती है)

वर्द्धमान—(शब्द सुनकर) आर्ये वैलों की नाक नाथी हुई है, इससे वे कुपित हो रहे हैं, जरा सम्हल कर बैठी रहिए। (वैलों को हांकता है।)

(वीरक आता है।)

वीरक—अरे, जय, जयमान, चन्दनक, मंगल, पुष्पभद्र, प्रधान पुरुषो, गोपपुत्र आर्यक वन्दीगृह तोड़ कर भाग निकला। एक सामने पूर्व की गली के मुँह पर तैयार रहे। एक पश्चिम, एक दक्षिण, एक उत्तर मार्ग रोके। मैं चन्दनक के साथ उस ऊँचे टीले पर चढ़कर देखूंगा।

(वर्द्धमान की गाड़ी को देखकर)

चन्दनक—अरे रोक दे। किसकी गाड़ी है ?

वर्द्धमानक—आर्य चारुदत्त की गाड़ी है। इस पर आर्या वसन्तसेना

बैठी है, और पुष्पकरंड-जीर्णोद्यान को जा रही है।

चन्दनक—गाड़ी का परदा उठा। मैं देखूंगा।

(चन्दनक गाड़ी पर चढ़कर देखता है।)

आर्यक—(धीरे से) मैं शरणागत हूँ।

चन्दनक—(स्वगत) अरे, यह आर्यक मेरे प्राणदाता शर्विलक का मित्र है। (धीरे से प्रकट) शरणागत को अभय। (गाड़ी से उतर कर) देख लिया।

वीरक—तो मैं भी तनिक देख लूं।

चन्दनक—जब मैंने देख लिया, तो तुम देखने वाले कौन ?

वीरक—तो तुम्हीं कौन होते हो ? अरे, गाड़ी रोक।

चन्दनक—नहीं, गाड़ी ले जा। (वीरक गाड़ी पर चढ़ना चाहता है और चन्दनक नीचे खींचता है।)

(दोनों गुत्थमगुत्था होते हैं।)

वीरक—मैं राजा का सेनापति हूँ। तुमने मेरे केश पकड़ कर लात मारी है। मैं चलकर न्यायालय से चतुरंग दण्ड दिलवाऊँगा।

चन्दनक—अरे जा जा, कुत्ते की भाँति तू मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

वीरक—अच्छा देखूंगा। (जाता है।)

चन्दनक—(चारों ओर देखकर) अरे गाड़ीवान, जा, कोई रोके तो कहना, चन्दनक और वीरक देख चुके हैं। आर्ये वसन्तसेने, यह अंकेत लो।

(आर्यक को तलवार देता है)

बारहवाँ दृश्य

(जीर्णोद्यान पुष्पकरण्डक में चारुदत्त और मैत्रेय)

चारुदत्त—मित्र, बड़ी देर हो रही है। अभी वसन्तसेना आई नहीं।

(सामने से गाड़ी आती है ।)

मैत्रेय—लो, यह गाड़ी आ गई । (वर्द्धमानक से) दासी-पुत्र, इतनी देर क्यों लगाई ?

वर्द्धमानक—अजी, मैं गाड़ी का पर्दा भूल गया था ।

चारुदत्त—वर्द्धमानक, गाड़ी घुमाओ । मैत्रेय, वसन्तसेना को उतारो ।

मैत्रेय—(पर्दा उठाकर) अरे, यह तो कोई और ही है ।

चारुदत्त—(गाड़ी में देखकर) ये कौन महापुरुष हैं ? दर्शनीय तो हैं, पर इनके एक पाँव में बेड़ी पड़ी है । आप कौन हैं ?

आर्यक—आपकी शरणागत हूँ, मैं गोपपुत्र आर्यक हूँ ।

चारुदत्त—जिन्हें राजा पालक ने बन्दीगृह में डाल दिया था ?

आर्यक—वही ।

चारुदत्त—तो मैं प्राण देकर भी शरणागत की रक्षा करूँगा । (वर्द्धमानक से) वर्द्धमानक, इनकी बेड़ी काट ।

(दास बेड़ी काटता है ।)

आर्यक—तो अब जाऊँ ? (गाड़ी से उतरता है ।)

चारुदत्त—नहीं मित्र, आपके पैरों से अभी बेड़ी कटी हैं । चल नहीं सकोगे । फिर राजपुरुष इस पथ पर अधिक घूम रहे हैं । इससे गाड़ी पर ही जायें ।

आर्यक—जैसा आप कहें ।

(जाता है ।)

तेरहवाँ दृश्य

(पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान में राजा का साला शकार और विट)

शकार—न जाने स्थावरक चेट ने इतनी देर कहाँ कर दी ? बड़ी तेज धूप है । (गाड़ी आती देखकर) पुत्रक स्थावरक, तुम आ गये ?

स्थावरक—जी हाँ; आइए चढ़िए ।

शकार—(गाड़ी में चढ़ता है । भीतर वसन्तसेना को देखकर) अरे, गाड़ी में तो राक्षसी है ।

वसन्तसेना—(स्वगत) अरे, यह तो राजा का साला मेरी आँखों का काँटा है । अब मैं क्या करूँ ।

विट—(वसन्तसेना को देखकर) हाय रे कष्ट, शरत्काल के चन्द्रमा की भाँति उज्ज्वल हंस को छोड़कर यह हंसनी कौए के पास कैसे आ गई ?

वसन्तसेना—मैं गाड़ी बदलने के कारण आ गई । आपकी शरणागत हूँ ।

विट—(कुछ सोचकर) अजी, यह वसन्तसेना आपके पास आई है ?

शकार—हे विशाललोचने ! (चरणों पर गिरता है) मैं तुम्हारा सेवक हूँ ।

वसन्तसेना—दूर हट अनार्य ! (ठोकर मारती है ।)

शकार—अरे स्थावरक, तू इस वसन्तसेना को कहाँ से ले आया ?

स्थावरक—अजी, गाँव में रास्ता रुका था । उस समय चारुदत्त के उद्यान में मैंने गाड़ी खड़ी कर दी थी । मेरी समझ में यह इसे अपनी गाड़ी समझकर चढ़ गई ।

शकार—तब उतर गधी, मेरी गाड़ी से । नहीं तो तेरे केश पकड़ कर गाड़ी से नीचे खींचता हूँ ।

वसन्तसेना—(आँचल पसार कर) मैं शरणागत हूँ ।

शकार—सोने के गहने दूँगा । पगड़ी सहित तेरे चरणों में गिरता हूँ । फिर भी तू मुझे नहीं चाहती ।

वसन्तसेना—अरे मूर्ख, तुम अधम हो ।

शकार—तो ठहर (गला दबाता है । वसन्तसेना मूर्छित होकर भूमि

पर गिर जाती है।)

(विट स्थावरक के साथ आता है।)

विट—(देखकर) अरे ! (स्वगत) कहीं यह पापी इस नीच कार्य को मुझ पर न थोप दे। तो मैं यहाँ से भाग चलूँ। (जाना चाहता है।)

शकार—मेरे पुष्पकरण्डक उद्यान में तुमने वसन्तसेना को मारा है। अब कहाँ भागते हो ? (पकड़ता है।)

विट—(तलवार खींचकर) अरे नीच, ठहर।

शकार—(डरकर) अरे तुम डर गये, तो जाओ।

(विट जाता है।)

शकार—अरे स्थावरक, ले ये आभूषण ले (अपने गहने उतार कर देता है।) जा, इन बैलों को लेकर, मेरे महल की नई वीथी में ठहर।

स्थावरक—जो आज्ञा। (जाता है, शकार भी जाता है।)

(पीला चीवर लिये भिक्षु आता है।)

भिक्षु—मैंने चीवर धो लिया। यह सूखे पत्तों का ढेर पड़ा है। इसी पर फैला दूँ। (फैलाता है और वहीं बैठकर सूत्र घोखता है। देखकर) अरे पत्तों में यह कौन साँस ले रहा है ?

(मूर्छा से जागकर वसन्तसेना हाथ हिलाती है।)

—अरे, यह तो स्त्री का हाथ है (पहचान कर पत्ते हटा कर) यह तो वही बुद्धोपासिका है।

वसन्तसेना—(आँख खोलकर) आर्य, आप कौन हैं ?

भिक्षु—आपने मुझे नहीं पहचाना ? मुझे आपने दस मुहर में खरीदा था।

वसन्तसेना—याद आता है; पर जैसे आप कहते हैं, वह बात नहीं है।

भिक्षु—इस वृक्ष के पास की लता के सहारे उठिए। (लता को झुकाता है। वसन्तसेना लता पकड़ कर उठती है।)

भिक्षु—यह स्थान भयदायक है। पास ही विहार में मेरी एक धर्म-भगिनी रहती है। चलिए, उसी के पास चलें।

(जाते हैं।)

चौदहवाँ दृश्य

(न्याय-मण्डल में शोवनक आता है।)

शोवनक—न्याय-मण्डल में जाकर मैंने आसनों को सजा दिया। अब जाकर न्यायाधीशों से निवेदन करूँ। (देखकर) अरे, यह दुष्ट राजा का साला इधर क्यों आ रहा है। चलूँ, इसकी नजर बचा कर निकल जाऊँ।

(श्रेष्ठी कायस्थ से घिरे न्यायाधीश आते हैं।)

न्यायाधीश—भद्र शोवनक, न्याय-मण्डल का मार्ग दिखा।

शोवनक—इधर से महोदय, इधर से आइए।

(सब भीतर आते हैं।)

न्यायाधीश—भद्र शोवनक, बाहर आकर पता लगाओ कि आज विचार-प्रार्थी कौन है ?

शोवनक—जैसी आज्ञा, (बाहर आकर) अजी न्यायकर्ता पूछते हैं कि आज कौन-कौन न्यायप्रार्थी आये हैं।

शकार—मैं श्रेष्ठी पुरुष राजा का साला कार्यार्थी उपस्थित हूँ।

शोवनक—(घबराकर) सबसे पहले राजा का साला ही कार्यार्थी है। (प्रकट) तो आर्य मैं निवेदन करता हूँ। (भीतर जाकर) आर्यगण, राजश्यालक कार्यार्थी बनकर न्याय के लिए आया है।

न्यायाधीश—भद्र, उसे बुलाओ।

शोवनक—(बाहर आकर) आर्य, आइए।

न्यायाधीश—आपका क्या अभियोग है ?

शकार—अजी, मेरी बहन के पति राजा ने प्रसन्न होकर मुझे पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान दिया था। मैंने संयोग से वहाँ एक स्त्री का मृत

शरीर पड़ा देखा। नहीं, नहीं देखा।

न्यायाधीश—वह कौन स्त्री मरी पड़ी थी ?

शकार—उज्जयिनी की शृंगार वसन्तसेना। किसी ने क्षणभंगुर धन के लिए उसे मार डाला। मैंने नहीं।

(मुँह ढाँप लेता है।)

न्यायाधीश—ऐ श्रेष्ठी कायस्थ, सबसे प्रथम इस विचारणीय शब्द को लिखो—मैंने नहीं।

कायस्थ—जैसी आज्ञा। (लिखता है।)

शकार—(स्वगत) हाय, यह मैंने क्या कह दिया। (प्रकट) न्याय-कर्ताओ, मैं कहता हूँ, मैंने ही देखा है।

न्यायाधीश—तुमने कैसे जाना कि धन के लिए गला घोट कर मारा ?

शकार—गले में आभूषण न होने से।

श्रेष्ठी कायस्थ—तो वसन्तसेना की माता को बुलाया जाय।

न्यायाधीश—शोधनक, वसन्तसेना की माता को बुलाओ।

शोधनक—बहुत अच्छा।

(जाता है और उसे लेकर आता है।)

वृद्धा—मेरी पुत्री तो अपने मित्र के घर गई है, और यह चिरंजीव मुझे न्यायालय में लाया है (भीतर आकर) श्रेष्ठों का मंगल हो।

न्यायाधीश—भद्रे, क्या तुम वसन्तसेना की मां हो ?

वृद्धा—हाँ।

न्यायाधीश—इस समय वसन्तसेना कहाँ है ?

वृद्धा—मित्र के घर।

न्यायाधीश—उस मित्र का क्या नाम है। संकोच मत करो। न्याय-व्यवहार के लिए पूछ रहे हैं।

वृद्धा—तो श्रेष्ठीजन सुनें। वह श्रेष्ठी विनयदत्त के नाती, सागर-

दत्त के पुत्र आर्य चारुदत्त हैं, जो श्रेष्ठी-चत्वर में रहते हैं।

शकार—आप लोगों ने सुना। अब मेरा विवाद चारुदत्त के साथ है।

न्यायाधीश—यह विवाद-निर्णय चारुदत्त की अपेक्षा करता है। धनदत्त, व्यवहार का प्रथम पाद लिख लीजिए कि वसन्तसेना आर्य चारुदत्त के घर गई। भद्र शोधनक, जाओ, आर्य चारुदत्त को सादर ले आओ।

(शोधनक जाता है और चारुदत्त के साथ आता है।)

चारुदत्त—बन्दीगृह तोड़ कर आर्यक मेरी ही गाड़ी में भागा है। मैंने अपनी ही गाड़ी में उसे दूर भेज दिया है। क्या राजा यह बात जान गया? इसी से न्यायालय में मुझे अपराधी की भांति लाया गया है। (प्रकट) न्यायकर्ताओं का कल्याण हो।

न्यायाधीश—आर्य, क्या गणिका वसन्तसेना आपकी मित्र है?

(चारुदत्त लज्जित होता है।)

श्रेष्ठी कायस्थ—आर्य, निस्संकोच बताइए। यह व्यवहार का स्थान है।

चारुदत्त—अधिकारीगण, मेरा विवाद किससे है?

शकार—अरे मुझसे। अरे स्त्रीहत्या करने वाले, सैकड़ों सोने के आभूषण पहने हुई वसन्तसेना को मारकर अब ऊपर से उसे छिपाना चाहता है।

चारुदत्त—यह क्या बकवाद है?

न्यायाधीश—आर्य चारुदत्त, सच कहिए, क्या गणिका आपकी मित्र है?

चारुदत्त—जी, हाँ।

न्यायाधीश—वह कहाँ है?

चारुदत्त—घर गई।

श्रेष्ठी कायस्थ—कब ? किसके साथ ?

चारुदत्त—(स्वगत) क्या जवाब दूँ ?

श्रेष्ठी कायस्थ—कहिए, आर्य ।

चारुदत्त—घर गई और क्या कहूँ ?

शकार—मेरे पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान में जाकर इसने धन के कारण गला घोट कर उसे मार डाला । अब कहता है—घर गई ।

चारुदत्त—तुम बकते हो, झूठे हो ।

न्यायाधीश—आर्य चारुदत्त, क्या वह पैदल गई या गाड़ी में ?

चारुदत्त—वह मेरे सामने नहीं गई । मैं नहीं बता सकता ।

(वीरक आता है ।)

वीरक—सभ्यगण, मैं नगररक्षक वीरक हूँ । आर्यक बन्धन तोड़कर भाग निकला । मैंने उसे खोजते हुए देखा कि पर्दे से ढकी एक गाड़ी जा रही थी । उसे देखने को मैं उस गाड़ी पर चढ़ना चाहता था कि चन्दनक ने मुझे लात मारी । मेरा न्याय हो ।

न्यायाधीश—गाड़ी किसकी थी भद्र ?

वीरक—इन्हीं आर्य चारुदत्त की । उस पर वसन्तसेना बैठी थी । गाड़ीवान ने कहा कि वह पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान में आर्यचारुदत्त के पास जा रही है ।

शकार—आप लोगों ने सुन लिया ।

न्यायाधीश—वीरक, तुम्हारा न्याय पीछे होगा । न्यायालय के द्वार पर जो घोड़ा है, उस पर चढ़कर पुष्पकरण्डक उद्यान में जाकर देखो । वहाँ कोई स्त्री मरी पड़ी है या नहीं ?

वीरक—जैसी आर्य की आज्ञा ।

(जाता है और लौटकर आता है ।)

—अजी, देख आया । उस स्त्री की देह को जन्तु खारहे थे ।

श्रेष्ठी कायस्थ—तुमने कैसे जाना कि वह स्त्री की देह थी ?

वीरक—उसके लम्बे बाल और हाथ पांव के गहने देखकर।

न्यायाधीश—अरे, लोक-व्यवहार कितना विषम है? जितना ही सूक्ष्मता से देखता हूँ, उतना ही संकट बढ़ता है। (चारुदत्त से) आर्य चारुदत्त, अब सत्य कहो?

शकार—न्यायाधिकारियो, आप पक्षपात कर रहे हैं। अभी तक यह अपराधी आसन पर बैठा है। इसे आसन से उतारो।

न्यायाधीश—भद्र शोधनक, यही करो।

(शोधनक चारुदत्त को आसन से उतारता है।)

चारुदत्त—(भूमि पर बैठकर) विचार करो, अधिकारियो, विचार करो।

(आभूषण लिये मैत्रेय आता है।)

मैत्रेय—(भीतर आकर) अरे मित्र, यह क्या मामला है? (चारुदत्त से सब बात सुनकर) आर्य, जिसने गरीबों के घर बनवाये, बौद्ध-विहार, उद्यान, देवमन्दिर, सरोवर, कुएँ, यज्ञ-स्तम्भ बनवा कर उज्जयिनी को सुन्दर नाया, वह क्या क्षण-भंगुर धन के लोभ से ऐसा बुरा काम कर सकता है? (शकार को देखकर) ठहर कुट्टिनी के पुत्र, इस डण्डे से तेरा सिर फोड़ता हूँ।

(मैत्रेय और शकार आपस में मारपीट करते हैं। मैत्रेय की बगल से गहनों की पोटली गिरती है।)

शकार—(उठाकर) देखें, देखें, आर्यगण, ये उसी के गहने हैं।

श्रेष्ठी कायस्थ—(वसन्तसेना की माता से) देखिए, ये गहने वसन्तसेना के हैं?

वृद्धा—(देखकर) हैं तो वैसे ही।

श्रेष्ठी कायस्थ—आर्य चारुदत्त, ये गहने किसके हैं?

चारुदत्त—वसन्तसेना के।

न्यायाधीश—ये कहाँ से आये?

चारुदत्त—मेरे घर से।

न्यायाधीश—चारुदत्त, सच बोलो। नहीं तो तुम्हारे कोमल शरीर पर बेंत पड़ेंगे।

चारुदत्त—मुझे और कुछ कहना नहीं है।

न्यायाधीश—राजपुरुषो, चारुदत्त को पकड़ लो।

(राजपुरुष पकड़ते हैं।)

पन्द्रहवाँ दृश्य

(दो चाण्डालों के साथ चारुदत्त आता है।)

एक चाण्डाल—ओ चारुदत्त, यह घोषणा का स्थान है। (साथी से) नगाड़ा बजाओ, और राज-निर्णय सुना दो।

दूसरा चाण्डाल—सुनिए भद्रजनो, यह सार्थवाह विनयदत्त का नाती सागरदत्त का पुत्र आर्य चारुदत्त है। इस दुष्कृति ने क्षण-भंगुर धन के लिए गणिका वसन्तसेना को पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान में ले जाकर मार डाला। यह गहनों के साथ पकड़ा गया है और इसने स्वीकार किया है। इसलिए राजा पालक की आज्ञा से इसे सूली देने को हम ले जा रहे हैं, जिससे दूसरों को भी शिक्षा हो।

(नेपथ्य में—'हा तात ! हा प्रिय मित्र !')

चारुदत्त—(चाण्डालों से) चौधरियो, पुत्र का मुख देखना चाहता हूँ।

चाण्डाल—तो ऐसा ही करिए। नगरवासियो, तनिक पीछे हटिए। चारुदत्त अपने पुत्र का मुख देख ले। आ बालक, आ।

(बालक को लेकर मैत्रेय आता है।)

चारुदत्त—(पुत्र और मित्र को देखकर) हा पुत्र, हा मैत्रेय, मैं इस पुत्र को क्या दूँ। (अंग से जनेऊ उतार कर) अभी तो यह है। यह बिना सुवर्ण और रत्न का ब्राह्मण का शृंगार है। (यज्ञोपवीत देता है।)

एक चाण्डाल—चल रे चारुदत्त, बहुत देर हुई।

बालक—अरे, चाण्डालो, मेरे पिता को कहाँ ले जा रहे हो ?

चाण्डाल—अरे, फिर घोषणा कर दे।

(दूसरा चाण्डाल घोषणा करता है।)

चारुदत्त—हाय, मुझे यह भी सुनना पड़ा।

(प्रासाद से वृद्ध स्थावरक घोषणा सुनता है।)

स्थावरक—अरे, चारुदत्त विना ही अपराध कलंकित करके मारे जा रहे हैं। मुझे शकार ने वेड़ी डाल कर बन्द कर लिया है। अब मैं क्या करूँ ? अच्छा, चिल्लाऊँ। पर दूर होने से मेरी बात कोई नहीं सुनेगा। तो क्या कूद पड़ूँ ? इससे कदाचित् चारुदत्त बच जाय। (कूदता है) लो बच गया। पर कूदने से वेड़ी टूट गई। (घोषणा-स्थान पर जाकर पुकार कर) अरे चाण्डाल रास्ता दे।

चाण्डाल—क्यों क्या बात है ?

स्थावरक—सुनो, वसन्तसेना को शकार ने गला घोटकर मारा है। चारुदत्त ने नहीं।

चारुदत्त—आर्यो, सुनो; नागरिको, सुनो; मैं मौत से नहीं डरता; पर कलंक से डरता हूँ।

चाण्डाल—स्थावरक, क्या सच कह रहे हो ?

स्थावरक—विलकुल सच। मैं इस दुर्घटना की वावत किसी से कह न दूँ, इससे शकार ने मुझे वेड़ी डाल कर महल की नई वीथी में डाल दिया था।

(शकार नए महल में दीख पड़ता है।)

शकार—अहा, यह तो चाण्डालों का घोषणा-स्वर है। वध के समय की ऊँची आवाज और नगरों का गर्जन सुनाई दे रहा है। अवश्य ही दरिद्र चारुदत्त वध-स्थल पर ले जाया जा रहा है। अरे, स्थावरक, कहाँ भाग गया ? कहीं वह भेद न खोल दे। उसे खोजूँ। (उतरता है।)

स्थावरक—(शकार को आता देखकर) स्वामियो, वह आ रहा है, देखिए।

चाण्डाल—हटो, मार्ग दो।

शकार—राह दो, मार्ग दो, (पास आकर) पुत्रक स्थावरक आओ, चलो।

स्थावरक—अरे अनार्य, वसन्तसेना को मार कर तू तृप्त नहीं हुआ। अब याचकों के कल्पवृक्ष आर्य चारुदत्त को भी मरवाना चाहता है।

सब—तुमने स्त्री को मारा है।

शकार—ऐसा कौन कहता है ?

सब—यह कहता है।

शकार—(डर कर) झूठ बात है। इस दास ने चोरी की थी। इससे मैंने इसे बांधकर पीटा था। इसकी पीठ देखो।

चाण्डाल—(देखकर) ठीक है। यह दास झूठ बोल रहा है।

स्थावरक—हाय, दासत्व भी इतना अधम है। आर्य चारुदत्त, मैं यही कर सकता था।

चारुदत्त—आपने तो बन्धु का सारा काम ही कर दिया।

शकार—अरे चाण्डालो, विलम्ब क्यों करते हो ? इस चारुदत्त का वध करो।

चारुदत्त—(पुत्र से) जा बेटा, माता के पास जा। (मैत्रेय से) मित्र, इसे ले जाओ।

मैत्रेय—मित्र तुम्हारे बिना मेरा जीवन व्यर्थ है। यह पुत्र ब्राह्मणी को देकर तुम्हारे रास्ते ही आ रहा हूँ। (रोता हुआ जाता है।)

(वसन्तसेना और भिक्षु आतुरतापूर्वक आते हैं।)

वसन्तसेना—राजपथ पर इतनी भीड़ क्यों है ? आर्य, पता लगाइए। यह तो उज्जयिनी ही यहाँ उमड़ आई है।

चाण्डाल—यह पाँचवाँ घोषणा-स्थान है। नगाड़ा बजाकर घोषणा करो।

(घोषणा करता है।)

—सुनो, सुनो, वसन्तसेना की हत्या करने के कारण आर्य चारुदत्त का राजाज्ञा से आज वध किया जा रहा है। अरे चारुदत्त, प्रहार की प्रतीक्षा कर। डरे मत, झटपट सब समाप्त हो जायगा।

भिक्षु—(घबराकर) उपासिके, तुम्हें मार डालने के अपराध में चारुदत्त को वे वध करने के लिये जा रहे हैं।

वसन्तसेना—हाय, हाय, जल्दी चलो, जल्दी, मुझ अभागिन के लिए आर्य चारुदत्त मारे जा रहे हैं।

भिक्षु—सज्जनो, रास्ता दो।

वसन्तसेना—रास्ता दो, रास्ता, हटो, हटो।

चाण्डाल—चारुदत्त, अब अपने इष्टदेव को याद कर लो। राजाज्ञा से हम तुम्हारा वध कर रहे हैं। हमारा दोष नहीं है। (तलवार खींचकर) चारुदत्त, ऊपर वक्ष और नीचे पीठ करके लेट जा। बस, एक ही वार का काम है।

(चारुदत्त लेटता है। चाण्डाल प्रहार करना चाहता है।)

वसन्तसेना—रुको, रुको।

चाण्डाल—यह कौन केश खोले, हाथ उठाकर हमें रोकती आ रही है।

वसन्तसेना—आर्य यह क्या हुआ ? (आकर चारुदत्त के वक्ष पर गिर जाती है।)

भिक्षु—हाय, यह क्या हो गया। (चरणों पर गिर जाता है।)

चाण्डाल—तो क्या यही वसन्तसेना है ?

भिक्षु—क्या चारुदत्त जीवित है ?

चाण्डाल—वह सौ बरस जिएँ।

वसन्तसेना—हाय, मैं जी गई, मैं जी गई।

चाण्डाल—चलो, हम राजा को यह समाचार कह दें।

(जाते हैं।)

सोलहवाँ दृश्य

(धूता, रोहसेन, मैत्रेय और रदनिका। चिता प्रज्वलित है।)

धूता—पुत्र, मुझे छोड़ दे। विघ्न मत डाल, मैं आर्यपुत्र का अमंगल सुनने से प्रथम ही अग्नि-प्रवेश करूँगी। (चिता की ओर बढ़ती है।)

रोहसेन—माँ, मुझे छोड़कर मत जाओ।

(दौड़ कर पकड़ लेता है।)

शर्विलक—आर्य, जल्दी चलिए।

धूता—रदनिके, बालक को पकड़।

रदनिका—(रोती हुई) आर्ये, आप ही इसे सम्हालिए।

धूता—आर्य मैत्रेय, आप ही इसे पकड़ लें।

मैत्रेय—(रोकर) अजी, सिद्धि के लिए ब्राह्मण को आगे कीजिए। आपसे प्रथम मैं अग्नि-प्रवेश करूँगा।

धूता—हाय, दोनों मेरी बात नहीं मानते। (पुत्र को गले लगाकर) पुत्र, हम लोगों को तिलोदक देने को तू जीवित रह। हाय, आर्यपुत्र अब तेरी रक्षा न करेंगे।

चारुदत्त—(तेजी से पहुँचकर) मैं ही पुत्र की रक्षा करूँगा।

धूता—अरे, आर्यपुत्र हैं। मेरा भाग्य ! मेरा सौभाग्य !

बालक—पिताजी, मुझे गोद में ले लो। मां, देखो पिताजी ने मुझे गोद में ले लिया। आओ।

चारुदत्त—प्रिये, पति के जीवित रहते अग्निप्रवेश ? यह कसा कठोर व्रत ?

मैत्रेय—मेरी आँखें यह क्या देख रही हैं। मित्र, जय हो, जय हो।

(आलिंगन करता है।)

रदनिका—आर्य, प्रणाम करती हूँ। (चरणों पर गिरती है।)

चारुदत्त—रदनिके उठ। (उठाता है।)

धूता—(वसन्तसेना से) देखो वहिन, भाग्य के खेल।

वसन्तसेना—अब तो सुख ही सुख है।

(परस्पर आलिगन करती हैं।)

शर्विलक—भाग्य से आर्य, सब सुहृद वच गये।

चारुदत्त—आपकी कृपा ।

शर्विलक—आर्ये, वसन्तसेने, राजा चारुदत्त आपको वधू वनाते हैं।

(घूंघट खींचता है।)

वसन्तसेना—कृतार्थ हुई।

शर्विलक—आर्ये, इस भिक्षु का क्या हो।

चारुदत्त—इन्हें पृथ्वी के सारे विहारों का कुलपति वना दिया जाय।

भिक्षु—ठीक है।

शर्विलक—स्थावरक का क्या हो ?

चारुदत्त—इसे दासत्व से मुक्त कर दो। वे दोनों चाण्डाल अपने कुल के चौवरी वन जायें और चन्दनक को प्रधान सेनापति वना दो।

शर्विलक—जैसी आज्ञा। किन्तु राजा का साला ?

चारुदत्त—वह जैसा था, वैसा ही रहे ?

शर्विलक—तो अब और क्या करूँ ?

चारुदत्त—मेरे चरित्र का कलंक दूर हो गया और मैंने शरणागत की रक्षा कर ली। मित्र आर्यक पृथ्वी के राजा हो गये। प्रिया वसन्तसेना मुझे मिल गई। अब और शेप क्या रह गया।

(सब जाते हैं।)

कालिदास

(ईसा की छठी शताब्दी)

अभिज्ञान-शाकुन्तल

जीवन-परिचय

कालिदास की गणना संसार के सर्वश्रेष्ठ कवियों और नाटककारों में की जाती है। पाश्चात्य पण्डित भी उनके प्रशंसक हैं। सर विलियम जोन्स उन्हें शेक्सपियर के समकक्ष मानते हैं। जर्मन कवि गेटे शकुन्तला पर मुग्ध हैं [1]। प्राचीन भारतीय कवियों ने भी कालिदास की उपमा, भाषामाधुर्य और चरित्र-चित्रण की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। बाणभट्ट कहते हैं कि जब कालिदास की सूक्तियाँ निकलती हैं तो उन्हें पढ़ कर उनसे, मधु-रस से आर्द्र मंजरियों के समान किसे प्रसन्नता नहीं होती [2]। प्रसिद्ध है कि सब काव्यों में श्रेष्ठ शकुन्तला नाटक है। उसमें भी चतुर्थ

1—Wilt thou the bloom of springtide, the fruit of the year that doth wither ?
Wilt thou what charms and pleases ? Wilt thous what fills and keeps fed ?
Wilt thou the earth and the heaven in one name mingle together ?
I name Sakuntala, thee, and so is every thing said.

२—निर्गतासु नवा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु ।
प्रीतिर्मधुरसार्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते ॥

अंक तथा चौथे अंक में भी चार श्लोक मनोहर हैं [१]।

कालिदास का ठीक समय अभी निर्धारित नहीं है। कोई तो उन्हें ई० पू० प्रथम शती का मानते हैं। कोई ई० की तीसरी चौथी शती का कहते हैं। कुछ लोगों का मत है कि मेघदूत और कुमारसम्भव आदि काव्यों के कर्ता कालिदास और अभिज्ञानशाकुन्तल के कर्ता कालिदास भिन्न व्यक्ति हैं। कहा जाता है कि वह विक्रमादित्य के सभा-पण्डित थे। पर विक्रमादित्य कौन हैं तथा उनका काल क्या है? इस पर अभी मतभेद है। कुछ लोग इन्हें उज्जयिनी का कहते हैं, कुछ काश्मीर का, कुछ बंगाली इन्हें बंगदेश का निवासी बताते हैं।

हमारा मत है कि कालिदास उज्जयिनी के ही निवासी थे। तथा हूणों का पराभव करने वाले यशोधर्मन् विक्रमादित्य के समकालीन और उन्हीं के आश्रित थे। यशोधर्मन् ही को उनकी हूण विजय पर मालव जनों ने विक्रमादित्य की उपाधि दी थी, तथा पुरातन मालव सम्वत् को विक्रम सम्वत् कहकर प्रचलित किया था। कालिदास का नाम मातृगुप्त था। हूणपति मिहिरगल को परास्त कर यशोधर्मन् ने मातृगुप्त को काश्मीर का शासक बनाकर भेजा था। यह काल ई० की छठी शती ही ठहरता है।

कालिदास के कुमारसम्भव और रघुवंश महाकाव्य, ऋतुसंहार और मेघदूत खण्डकाव्य और मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशी तथा अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक बहुत प्रसिद्ध हैं। अभिज्ञानशाकुन्तल के बंगला, देवनागरी, काश्मीरी और दाक्षिणात्य चार संस्करण उपलब्ध हैं, जिनमें परस्पर बहुत अन्तर है।

शाकुन्तल का वास्तविक नाम अभिज्ञानशाकुन्तल है। यह सात अंकों का नाटक है। यह महाभारत पर आधारित कालिदास की

१—काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।
तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कस्तत्र श्लोकचतुष्टयम्॥

रचनाओं में सर्वश्रेष्ठ नाटक है। पाश्चात्य देशों में यह नाटक आदर की दृष्टि से देखा जाता है तथा इसे संसार का सर्वश्रेष्ठ नाटक कहा गया

नाटक में तत्कालीन वातावरण का बहुत कुछ प्रभाव है। अनेक प्रकार की असंभाव्य कल्पनाओं और अन्धविश्वास तथा दैवी चमत्कारों का उसमें संकेत है। तथा कवि के नैसर्गिक भाव-प्रवाह की अपेक्षा जिसका सम्पूर्ण दर्शन हम भास की रचनाओं में पाते हैं, इसमें नाटकीय कौशल और कथानक-निर्वाह के लिए कृत्रिम कल्पना-मूलक दृश्य स्थान-स्थान पर एकत्र हैं। भापा की दृष्टि से यह नाटक अद्वितीय है।

कथासार

प्राचीन काल में प्रसिद्ध पुरुवंश में एक दुष्यन्त नामक प्रतापी राजा हस्तिनापुर में राज्य करते थे। एक दिन वह शिकार खेलते हुए मालिनी नदी के तीर पर कण्व मुनि के आश्रम के समीप जा निकले। वहाँ उन्होंने मृग के पीछे घोड़ा दौड़ाया और मृग आश्रम की ओर भागा। राजा ने जब उसके मारने को धनुष पर बाण चढ़ाया तो किसी तपस्वी ने कहा—महाराज, ये आश्रम के मृग हैं, इन्हें मत मारो।

आश्रम का नाम सुन कर राजा ने रथ रोक दिया और आश्रम में चले गये। जहाँ कण्व की पोषिता कन्या शकुन्तला अपनी दो सहेलियों अनसूया और प्रियंवदा के साथ वृक्षों में जल सींच रही थी। वहाँ शकुन्तला को देखकर राजा उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो गये और बातों ही बातों में उन्होंने पता लगा लिया कि यह ऋषि-कन्या नहीं है, अप्सरा की कन्या है। शकुन्तला भी राजा के प्रेम में विकल हो गई। अन्ततः सखियों के उद्योग से दोनों का गान्धर्व-विवाह होकर परस्पर संयोग हो गया और राजा स्मृति के रूप में अपनी अंगूठी शकुन्तला को देकर और शीघ्र राजमहल में बुलाने का वचन देकर राजधानी चले आये।

राजा के चले जाने से शकुन्तला उद्विग्न बैठी थी कि दुर्वासा ऋषि आये। उनका उसने अतिथि-सत्कार नहीं किया। दुर्वासा बड़े क्रोधी व्यक्ति थे। उन्होंने शाप दिया कि जिसके शोक में तू बैठी है वह तुझे भूल जायगा, परन्तु पीछे सखियों के समझाने-बुझाने से इतना मान गये, कि अंगूठी देखकर शाप-मुक्ति होगी। सखियों ने यह बात तो शकुन्तला को नहीं बताई, पर उन्होंने उससे इतना कह दिया कि अंगूठी ध्यान से सम्हालकर रखना और कभी याद दिलानी हो, तो अंगूठी दिखा देना।

इस समय कण्व ऋषि तीर्थयात्रा को गये थे। लौटने पर उन्होंने सब वृत्तान्त सुना और दो तपस्वियों तथा आर्या गौतमी के साथ शकुन्तला को उसके पति के पास भेज दिया। परन्तु शापवश राजा ने शकुन्तला को बहुत कहने-सुनने पर भी न पहचाना, न ग्रहण किया।

तब दुःख से विलाप करती हुई शकुन्तला को उसकी माता मेनका अप्सरा ले गई और उसे कश्यप प्रजापति के आश्रम में रख दिया। यहाँ उसके पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम सर्वदमन रखा गया।

घटनावश एक धीवर को मछली के पेट में वह अंगूठी मिल गई। राजा को अंगूठी देखते ही शकुन्तला की याद आ गई और वह उसकी याद में विलाप करने लगा। इसी समय इन्द्र का सारथी स्वर्ग से राजा के लिए रथ लेकर इन्द्र का युद्ध-निमन्त्रण लाया। राजा ने जाकर इन्द्र के शत्रु दानवों का संहार किया और जब वह स्वर्ग से लौट रहा था—मार्ग में कश्यप प्रजापति के आश्रम में गया।

वहाँ उसने सिंह-शावक से खेलते हुए अपने पुत्र सर्वदमन को देखा। वहाँ शकुन्तला से भी साक्षात्कार हुआ और तब प्रसन्नतापूर्वक सब लोग अपनी राजधानी में लौट आये।

पात्र-सूची

पुरुष-पात्र—

राजा दुष्यन्त	अयोध्या का राजा
सारथी	दुष्यन्त का रथवाहक
वैखानस	आश्रम का तपस्वी
विदूषक	राजा का मन बहलाने वाला ब्राह्मण
रैवतक, करभक	दुष्यन्त के भृत्य
ऋषिकुमार	ऋषिपुत्र
शिष्य	ऋषि कण्व के छात्र
मातलि	इन्द्र का भेजा हुआ रथवाहक
शारंगरव, शारद्वत	कण्व के शिष्य
पुरोहित	राज्य का पुरोहित
दो प्यादे	संदेशवाहक
कुम्भलिक	कोतवाल
कंचुकी	रनिवास का वृद्ध सेवक
प्रतिहारी	द्वारपाल
मारीच	एक महर्षि
कण्व	एक ऋषि

स्त्री पात्र—

शकुन्तला	विश्वामित्र और मेनका की पुत्री, दुष्यन्त की पत्नी
अनसूया, प्रियंवदा	शकुन्तला की सखियाँ
गौतमी	आश्रम की वृद्धा माता
दो तपस्विनियाँ, दासी	आदि।

अभिज्ञान-शाकुन्तल

पहला दृश्य

(कण्व ऋषि के आश्रम के निकट का वन। मृग का पीछा करते हुए धनुष-वाण लिये रथ पर वैठे राजा दुष्यन्त का सारथी सहित प्रवेश)

राजा—सूत, यह हरिण तो हमें बहुत दूर ले आया। लम्बी-लम्बी छलांगें मारता हुआ यह ऐसा दीख रहा है जैसे इसके पांव धरती पर पड़ ही नहीं रहे। (आश्चर्य से) अरे, वह तो अकस्मात् ही आँखों से ओझल हो गया।

सारथी—आयुष्मन्, ऊँची-नीची भूमि होने के कारण मैंने रास खींच कर रथ का वेग कम कर दिया था, इसी से इतना अन्तर पड़ गया। यहाँ समथल है। अब आप उसे हाथ में आया ही समझिए।

(वेग से रथ हाँकता है।)

राजा—अच्छा तो अब मैं हरिण को मारता हूँ।

(वाण चढ़ाता है।)

(दो शिष्यों के साथ तपस्वी वैखानस दोनों हाथ उठाये सामने आते हैं।)

वैखानस—राजन्, ये आश्रम के हरिण हैं। इन्हें मत मारिए।

राजा—तो सारथी घोड़ों को रोक दो, लीजिए, उतार लिया।

(वाण उतारता है।)

वैखानस—आप जैसे पुरुवंश प्रदीप के लिए यही शोभनीय है।

वैखानस—महाराज, हम समिधा लेने जा रहे हैं। सामने मालिनी नदी के तट पर कुलपति कण्व का आश्रम है। यदि आप व्यस्त न हों, तो पधार कर आश्रम का आतिथ्य ग्रहण कीजिए।

राजा—क्या कुलपति महात्मा कण्व आश्रम में हैं ?

वैखानस—जी नहीं। वह अपनी पुत्री शकुन्तला को आश्रम का और अतिथियों का भार सौंपकर उसकी ग्रहशान्ति के निमित्त सोमतीर्थ गये हैं।

राजा—अच्छी बात है। सूत, तुम रथ यहीं रोक दो। मैं उतर जाता हूँ। (रथ से उतर कर) आश्रम में विनीत वेश में जाना चाहिए, इसलिए आभूषण और शस्त्र मैं यहीं छोड़ जाता हूँ। (आभूषण और शस्त्र उतारता है।) जब तक मैं न लौटूँ, तुम घोड़ों को ठण्डा कर लो।

सारथी—अच्छा।

(राजा आगे बढ़ता है।)

(नेपथ्य में)

—'अरी सखियो, यहाँ आओ।'

राजा—'फुलवारी की दाहिनी ओर कोई बोल रहा है। उधर ही चलूँ। (घूमकर) अहा, यह तो तपस्वियों की कन्याएँ अपने-अपने घड़े लिये पेड़ों को सींचती हुई इधर ही को आ रही हैं। (ध्यान से देखकर) वाह, कैसा माधुर्य है ! ऐसा सौन्दर्य तो रनवासों में भी दुर्लभ है। जैसे वन-लताओं ने उद्यान-लताओं को लजा दिया हो ! अच्छा, मैं इनके आने तक इस वृक्ष की छाया में खड़ा होता हूँ।

(खड़ा होता है। सखियों सहित शकुन्तला आती है।)

शकुन्तला—सखियो, इधर।

अनसूया—अरी शकुन्तले, मैं सोचती हूँ कि पिता कण्व को ये पौदे तुझ से भी प्यारे हैं। तभी उन्होंने तुझ जैसी चमेली की कली-सी कोमल बाला को इन्हें सींचने में नियुक्त किया है।

शकुन्तला—पिता की आज्ञा से नहीं, सखी, मैं भी तो इन्हें सहोदरी

शकुन्तला—वाह, इसे भूलूंगी, तब तो अपने ही को भूल जाऊँगी।

प्रियंवदा—(मुस्करा कर) अनसूया, भला यह शकुन्तला इस वन-ज्योत्स्ना को इतने चाव से क्यों देख रही है ?

अनसूया—मैं क्या जानूं ? तू ही बता।

प्रियंवदा—अरी, यह सोच रही है, जैसे इस वन में ज्योत्स्ना को मनभावना पति मिल गया है, वैसा मुझे भी मिल जाय।

शकुन्तला—यह तो मेरे मन का मनोरथ है।

(घड़े का जल पेड़ की जड़ में डालती है।)

राजा—यह ऋषि-कन्या कहीं असवर्ण क्षात्रा तो नहीं है ?

शकुन्तला—(घबराकर) अरे, जल पड़ने से डर कर यह भौंरा नई चमेली को छोड़ कर बार-बार मेरे ही मुंह पर मँडरा रहा है।

(भौंरे को भगाती है।)

शकुन्तला—यह ढीठ भौंरा मानता ही नहीं। अब कहाँ जायँ।

(दूसरे स्थान पर जा खड़ी होती है।)

—अरे, यहाँ भी आ पहुंचा। अरी सखियो, बचाओ, बचाओ। इस दुष्ट भौंरे ने तो मुझे तंग कर डाला।

राजा—वाह, जिधर भौंरा जाता है, उधर ही मुँह फेरती है, मानो भय के बहाने मुग्धापन ही में भौंह चढ़ाना सीखती हो।

सखी—अरी, बचाने वाली हम कौन होती हैं, दुष्यन्त को पुकार। तपोवन की रक्षा का भार तो राजा ही पर है।

राजा—(आगे बढ़कर) डरो मत। डरो मत। जब तक दुर्विनीतों पर शासन करने वाला पुरुवंशी दुष्यन्त पृथ्वी पर शासन कर रहा है, तब तक किसका साहस है कि मुनि-कन्याओं से अविनय करे।

अनसूया—(राजा को देखकर सहमती हुई) आर्य, कोई भारी विपत्ति नहीं है। मेरी इस सखी को इस भौंरे ने सताया था, इसी से वह डर गई। (शकुन्तला की ओर संकेत करती है।)

दुष्यन्त—(शकुन्तला के सम्मुख जाकर)--देवी, तुम्हारा तप सफल हो।

(शकुन्तला लजाकर चुप खड़ी रह जाती है।)

अनसूया—आप जैसे सम्मानित अतिथि के आने से सफल ही समझिए। अरी शकुन्तले, कुटी से कुछ फल-फूल और अर्घ्य ले आ। पादोदक तो इस घड़े में यहाँ है ही।

राजा—तुम्हारे मधुर वचनों ही से मेरा सत्कार हो गया।

प्रियंवदा—तो आर्य, चलिए, उस घनी छाया वाले सप्तपर्ण के नीचे वाली वेदिका पर मुहूर्त भर बैठकर विश्राम कर लीजिए।

राजा—तुम सब भी तो श्रम से थक गई हो। तुम भी बैठो।

प्रियंवदा—शकुन्तले, अतिथि की बात तो रखनी ही चाहिए। आओ, तनिक बैठ जायँ।

(सब बैठते हैं।)

अनसूया—आर्य, आपके मधुरालाप से जो विश्वास उत्पन्न हो गया है, वह हमें आपसे यह पूछने को उत्साहित कर रहा है कि आर्य ने किस राजर्षि-वंश को अलंकृत किया है? किस देश की प्रजा को विरह-व्याकुल छोड़कर आर्य यहाँ पधारे हैं? और ऐसा कौन-सा कार्य आ पड़ा है जिसने आपके सुकुमार शरीर को तपोवन तक आने का कष्ट दिया?

शकुन्तला—(मन में) अरे मन धीर धर। सखी अनसूया मेरी मन-भाती बात ही पूछ रही है।

राजा—(स्वगत) अब कैसे अपने को छिपाऊँ और क्या कह कर अपना परिचय दूँ। अच्छा, ऐसा कहूँ (प्रगट) भद्रे, पुरुवंशी राजा ने मुझे राज्य के धर्म-कार्यों में नियुक्त किया है। इसलिए मैं यह देखने आश्रम में आया हूँ कि देखूँ तपस्वियों के कार्य में कोई विघ्न तो नहीं होता।

अनसूया—तव तो धर्माचारी जन सनाथ हुए (शकुन्तला और दुष्यन्त के मनोभावों को देखकर मुस्कराती है।)

(शकुन्तला लजाती है।)

राजा—(सखियों से) हम भी अब तुम्हारी सखी के विषय में पूछें ?

दोनों—यह तो आपका अनुग्रह ही है, पूछिए।

राजा—हमने सुना था, महर्षि कण्व बालब्रह्मचारी हैं। फिर तुम्हारी सखी उनकी पुत्री कैसे है ?

अनसूया—आर्य सुनें। कौशिक गोत्र में कोई एक महाप्रतापी राजर्षि हैं।

राजा—हाँ, मैंने भी सुना है।

अनसूया—तो सुनिए, उस राजर्षि ने गौतमी के तट पर उग्र तप किया था। तब देवताओं ने शंकित हो उन्हें तपोभ्रष्ट करने को मेनका अप्सरा भेजी। बस, वही मेनका शकुन्तला की माता है।

राजा—ठीक है। तभी तो, भला मनुष्यों में यह रूप कहाँ। चका-चौंध करने वाली बिजली कहीं पृथ्वी पर चमकती है।

(शकुन्तला लजा कर सिर झुका लेती है।)

प्रियंवदा—(मुस्करा कर और शकुन्तला तथा राजा की ओर निहारती है।)

शकुन्तला—(रोष से) सखी, मैं जाती हूं।

अनसूया—क्यों ?

शकुन्तला—मैं आर्या गौतमी से जाकर कहती हूं कि अनसूया कहनी अनकहनी बात कहती है।

(शकुन्तला उठ कर चलना चाहती है।)

प्रियंवदा—सखी, अभी मत जाओ।

शकुन्तला—(भौंह चढ़ाकर) क्यों ?

प्रियंवदा—इसलिए कि अभी तो दो पौधे तुम्हें और सींचने हैं। यह ऋण चुका कर जाना हो, तो जाओ।

राजा—अजी, तुम्हारी सखी बहुत थक गई है। लो इसका ऋण मैं चुकाता हूँ। (हाथ की अँगूठी उतार कर देता है) अंगूठी पर दुष्यन्त का नाम देख दोनों सखी एक दूसरी को देखती हैं।

राजा—आप कुछ और न समझिए। यह राजा की अँगूठी है। उन्हीं से मुझे मिली है।

प्रियंवदा—तो आर्य, आप इसे अपने पास ही रक्खें। आपके कहने से ही ऋण चुक गया। (शकुन्तला से) अरी, इन महात्मा ने अथवा यों कहो महाराज ने तेरा ऋण चुका दिया। अब तू चाहे तो चली जा।

शकुन्तला—तुम आज्ञा देने वाली कौन होती हो ?

राजा—(स्वगत) मेरी ही भांति इसका मन भी मुझ में लगा है। वह मुझसे बात नहीं करती, पर ध्यान से मेरी बात सुनती है।

प्रियंवदा—महाराज, हमसे योग्य अतिथि-सत्कार नहीं बन पड़ा। इससे यह कहती लजाती है कि फिर दर्शन देना।

राजा—नहीं, नहीं, तुम्हें देखने से ही हमारा सत्कार हो गया।

(सखियाँ जाती हैं।)

शकुन्तला—अरी अनसूये, मेरे पाँव में कांटा लग गया है। और कुरे की डाल मेरे आँचल में उलझ गई है। तनिक ठहर तो जाओ। (रुकती हुई जाती है।)

राजा—शरीर मेरा आगे चलता है, पर मन पीछे ही रहा जाता है। जैसे हवा के सम्मुख चलने से पताका पीछे फहराती है। चलूँ तपोवन के निकट ही डेरा डलवाऊँ। (जाता है।)

दूसरा दृश्य

(वही तपोवन। उदास विदूषक का प्रवेश)

विदूषक—(लम्बी साँस भरकर लाठी टेकता हुआ) मर मिटे।

इस अहेरी राजा के साथ आकर मैं तो संकट में आ फँसा। भरी दुपहरी में इस वन से उस वन में भटकना, जहाँ पेड़ों की छाँह तक नहीं, फिर यह हल्ला कान फाड़े डालता है—यह मृग आया, वह सूअर निकला, वह रहा सिंह। सड़े हुए पत्तों से मिले हुए जल वाली नदियों का कसैला और कड़ुआ पानी पीना और अबेर-सबेर लोहे की सीखों पर भुना हुआ मांस खाना। घोड़े के पीछे दौड़ते-दौड़ते जोड़ हिल गये। (घूमकर) अरे, हाथ में धनुष लिये और कण्ठ में जंगली फूलों की माला पहिने बहुत-सी यवनी दासियों के साथ सखा दुष्यन्त इधर ही चले आ रहे हैं। अच्छा, मैं भी लुंजपुंज बनकर लाठी के सहारे खड़ा हो जाता हूँ। (वैसा ही करता है।)

(राजा का प्रवेश)

विदूषक—आज पीड़ा के मारे हाथ नहीं उठते, इसी से वचन ही से आशीर्वाद देता हूँ।

राजा—क्यों, क्या हुआ ?

विदूषक—अजी, आप जो राज-काज छोड़कर जंगली जन्तुओं के पीछे इस बीहड़ वन में भटक रहे हैं, उससे मेरे जोड़-जोड़ बिखर गये।

राजा—(स्वगत) मेरा मन भी शकुन्तला में रम रहा है। आखेट में रुचि ही नहीं रही। (प्रकट) अच्छा, मित्र, ऐसा है तो आज हम आखेट नहीं करेंगे। अरे रैवतक, सेनापति से कह दो—आज हम आखेट नहीं करेंगे। जो आखेटक आगे गये हैं, वे लौट आयें।

रैवतक—जो आज्ञा महाराज। (जाता है।)

विदूषक—अब इन वृक्षों की छाया में इस शिला पर बैठिए। मैं भी सुख से विश्राम करूँ।

(दोनों बैठते हैं।)

राजा—अरे मित्र, तूने देखने योग्य वस्तु भी देखी ?

विदूषक--क्यों ? मैं तो नित्य ही महाराज को देखता हूँ।

राजा—अरे, अपनों को तो सभी देखते हैं। तूने शकुन्तला भी देखी ? जो इस आश्रम की शोभा है।

विदूषक--तो आपका मन छुहारों से हट कर इमली पर चला गया।

राजा-अरे एक वार उसे देख तो सही। उसका सौंदर्य बिना सूंघे हुए फूल के समान निर्दोष है, जैसे विना टूटी हुई कोंपल, विना विधा रत्न, विना चखा मधु होता है; ऐसी है वह पुण्यों के अखण्ड फल के समान।

विदूषक---तव तो महाराज झटपट व्याह कर लीजिए। कहीं वह हिंगोट के तेल लगी और घुटी हुई खोपड़ी वाले तपस्वी के पल्ले न पड़ जाय।

(दो ऋषिकुमार आते हैं।)

ऋषिकुमार---महाराज की जय हो। हम प्रार्थी हैं। पिता कण्व आश्रम में नहीं है और राक्षस नित्य हमारी तपस्या में विघ्न डालते हैं। आप यदि आश्रम में ठहरें, तो वड़ी कृपा हो।

राजा—अच्छा। तो रैवतक, सारथी से कहो—हमारा रथ और धनुष ले आये। (रैवतक आता है।) (तपस्वियों से) तुम चलो, मैं आता हूँ। (तपस्वी जाते हैं।) (विदूषक से) मित्र, तू क्या उस मुनि-कन्या को देखना चाहता है ?

विदूषक—चाहता तो हूँ पर यह राक्षसों का झंझट वुरा।

(रैवतक आता है।)

रैवतक—महाराज, रथ प्रस्तुत है। परन्तु राजधानी से करभक दूत माता का सन्देश लेकर आया है।

राजा—शीघ्र ले आओ।

रैवतक—जो आज्ञा।

(जाता है, फिर दूत सहित आता है।)

करभक—(आकर) महाराज की जय हो। माताजी ने आज्ञा दी

है कि आज से चौथे दिन पुत्र-पिण्ड-पालन उपवास होगा। उस समय पुत्र अवश्य आकर हमें प्रसन्न करें।

राजा—यह तो बड़ा धर्म-संकट आया। इधर ऋषियों का काज, उधर गुरुजनों की आज्ञा। अब मैं क्या करूं?

विदूषक—(हँसकर) अब त्रिशंकु बन कर यहीं ठहरो।

राजा—सुन मित्र, माता तुझे भी तो पुत्र समझती हैं। बस तू ही जा और मेरे स्थान पर उपस्थित होकर कह कि मैं तपस्वियों के काम से रुक गया हूँ।

विदूषक—जा तो सकता हूँ, पर आप यह तो न समझेंगे कि मैं राक्षसों से डर गया?

राजा—(हँसकर) नहीं, नहीं, भला हम ऐसा कैसे समझेंगे? पर देख मित्र, मैं यहां केवल तपस्वियों के हित से ठहरा हूँ। शकुन्तला के लिए नहीं। भला, कहां हम और कहां वह लड़की जो हिरनियों के साथ रहती रही है। मैंने हँसी में कहा था।

विदूषक—समझ गया महाराज।

(जाता है।)

तीसरा दृश्य

(मालिनी नदी का तट। समय मध्याह्न। राजा दुष्यन्त अकेले चिन्तित)

राजा—(ठण्डी सांस खींच कर) न जाने इस दुपहरी में शकुन्तला कहां होगी। देखूं, कदाचित् किसी लता-कुंज में सखियों सहित बैठी हो। (आगे बढ़ता है। देखकर) मेरे नेत्र सफल हुए। शकुन्तला फूलों से सजी पाटी पर लेट रही है। दोनों सखियां पास में हैं। अच्छा, छिपकर इनकी बात सुनूं। (सुनता है।)

दोनों सखी—(बयार झरती हुई) अरी सखी शकुन्तले, हम कमल के पत्ते से तेरी बयार करती हैं, सो तुझे अच्छी भी लगती है?

शकुन्तला—सखियो, तुम यह कष्ट क्यों कर रही हो ?

अनसूया—(शकुन्तला से) अरी शकुन्तले, तेरी यह क्या दशा है ? हमसे मन की बात खोलकर कह।

शकुन्तला—क्या कहूँ, जब से राजर्षि को देखा है, मेरा मन बस में नहीं रहा। या तो कुछ उपाय करो, या मेरे जीने की आशा तज दो।

प्रियंवदा—(अनसूया से कान में) अरी, इसकी प्रेम-विथा तो अब इतनी बढ़ गई है कि अब उपाय में विलम्ब नहीं होना चाहिए।

अनसूया—तो फिर सखी की विथा दूर करने का क्या उपाय किया जाय ?

प्रियंवदा—मनोरथ पूरा होना तो कठिन नहीं है, पर गुप्त रहना कठिन है।

अनसूया—क्यों ?

प्रियंवदा—जब से उस राजर्षि ने इसे देखा है, उसकी भी यही दशा है। मेरे विचार में तो शकुन्तला उसे एक प्रेम-पत्र लिखे और हम उसे फूलों में रखकर देव-प्रसाद के बहाने राजा तक पहुँचा दें।

शकुन्तला—तो मैं अब क्या करूं ?

प्रियंवदा—तू सोच कर एक अच्छा-सा छन्द रच।

शकुन्तला—तो तुम्हारा कहा करती हूँ। (सोचती है।)

प्रियंवदा—ले कमल के इस कोमल पत्ते पर लिख।

शकुन्तला—(लिखकर) अच्छा सुनो—अरे निर्मम, मैं तेरे मन की तो नहीं जानती, पर मेरा मन तो तेरे लिए अधीर हो रहा है।

(राजा छिपने की जगह से प्रकट होकर)

राजा—अरी शुभे, तेरा संतप्त शरीर पुष्प-शैया से लगा हुआ, कमल की कोमल पंखड़ियों से सुगन्धित-इतना कष्ट सहने योग्य नहीं है।

सखियां—ले, अब तो तेरा मनोरथ ही पूरा हो गया।

(शकुन्तला राजा को आदर देने को उठती है।)

दुष्यन्त—इतना कष्ट मत करो प्रिये !

प्रियंवदा—तो महाराज, आप भी इसी शिला पर विराजिए।

(राजा शिला पर शकुन्तला के निकट बैठ जाता है।)

प्रियंवदा—महाराज, आप दोनों का अनुराग तो प्रत्यक्ष ही है। फिर भी मैं इतना कहना चाहती हूँ कि सखी की प्राण-रक्षा आप ही के हाथ में है।

राजा—यद्यपि मेरी ओर से भी तुम्हारी सखी के प्रति यही कहना है, परन्तु तुम्हारी बातों का मैं अनुगृहीत हूँ।

शकुन्तला—अरी सखियो, तुम व्यर्थ में इन्हें यहाँ रोक रही हो। इनका ध्यान तो अन्तःपुर में लगा होगा।

राजा—प्रिये, मैं तो केवल तुम्हारे वशीभूत हूँ और किसी का मुझे ध्यान नहीं है।

अनसूया—(हँसकर) महाराज, हमने सुना है, राजाओं के यहाँ बहुत रानियाँ हुआ करती हैं। अब हमारी सखी का निर्वाह आपके हाथ है।

राजा—मेरे अन्तःपुर में दो ही रानियाँ होंगी। एक तो ससागरा पृथ्वी, दूसरी तुम्हारी सखी।

अनसूया—तब तो हम निश्चिन्त हुईं।

प्रियंवदा—(अनसूया से) देखो, यह हिरन का बच्चा कैसी दृष्टि से अपनी माता को ढूंढ़ रहा है। आओ चलो, हम इसे इसकी माता के पास पहुँचा दें।

(दोनों जाती हैं।)

शकुन्तला—सखियो, मुझे अकेली छोड़ कर कहाँ जाती हो। (उठ कर जाने लगती है।)

राजा—डरो मत, मैं यहाँ तुम्हारी सेवा में हूँ। क्या इस कमल-पत्र से हवा करूँ ? (हाथ पकड़ कर बैठाता है।)

शकुन्तला—हे पुरुवंशी, मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ। नीति का पालन करो।

राजा—प्रिये, बहुत-से राजर्षियों की कन्या गान्धर्व-विवाह करती हैं। इसमें बुराई नहीं है। कण्व धर्मनीति को जानते हैं। वह तुझे दोष नहीं देंगे।

(नेपथ्य में)

—अरी चकवी, रात आ गई। अब तू अपने सहचर से पृथक् हो।

शकुन्तला—हे पौरव, यह सखी का संकेत है। मेरा वृत्तान्त जानने को आर्या गौतमी इधर ही आ रही है। आप इस वृक्ष की आड़ में हो जायँ।

(राजा आड़ में होता है।)

(हाथ में कमण्डलु लिये गौतमी दोनों सखियों सहित आती है।)

गौतमी—अरी बेटी, तेरे शरीर का ताप घटा या नहीं ?

शकुन्तला—हाँ, कुछ घटा तो है।

गौतमी—इस कुश के जल से तेरा शरीर नीरोग हो जायगा। (जल छिड़कती है।) अब चल सन्ध्या हुई। (जाती है।)

शकुन्तला—हे दुःख हरने वाली लता, मैं तुझसे न्यारी होती हूँ पर आशा है, फिर भी तुझे देखूंगी। (जाती है।)

राजा—(बाहर निकल कर और दीर्घ श्वास छोड़कर) अब इसी लता-मण्डप पर, जिसे प्यारी क्रीड़ा करके छोड़ गई हैं, कुछ देर बैठकर उसी का ध्यान करूँ।

(बैठता है।)

चौथा दृश्य

(तपोवन—दोनों सखी फूल बीनती हुई आती हैं।)

अनसूया—सखी, शकुन्ला का गान्धर्व-विवाह हुआ और पति भी उसे मनभावना मिल गया। मेरा मन आनन्दित भी है, पर एक शंका चित्त में खटक रही है।

प्रियंवदा—क्या ?

अनसूया—आज वह राजर्षि तपस्वियों का यज्ञ पूरा करके राजधानी को जा रहा है। ऐसा न हो कि रनवास में पहुँच कर हमारी सखी की सुध न ले।

प्रियंवदा—ऐसा क्यों सोचती हो, ऐसे महापुरुष स्वभाव के खोटे नहीं होते। पर मुझे तो यह चिन्ता है कि न जाने पिता कण्व सुन कर क्या कहें।

(नेपथ्य में)

—'यह मैं हूँ।'

अनसूया—(कान लगा कर) यह तो किसी अतिथि का बोल है।

प्रियंवदा—क्या शकुन्तला कुटिया में नहीं है ? (आप ही आप) आज उसका चित्त ठिकाने नहीं है। जाकर देखूं। (जाती है।)

अनसूया—इतने फूल बहुत हैं। मैं भी चलती हूँ। (जाती है।)

(नेपथ्य में)

—अरे, अतिथि का निरादर करने वाली, मुझ तपोधन को तूने आया जानकर भी सत्कार नहीं किया। इसलिए मैं तुझे शाप देता हूँ कि तू जिसके ध्यान में बैठी है, वह तुझे भूल जायगा।

(प्रियंवदा आती है।)

प्रियंवदा—हाय, बुरा हुआ। बेसुधी में किसी तपस्वी का अपराध शकुन्तला से हो गया। (देखकर) अरे, यह तो महाक्रोधी दुर्वासा ऋषि है। देखो, शाप देकर क्रोध से डगमगाते पैरों से जल्दी-जल्दी लौट रहे हैं।

अनसूया—प्रियंवदा, तू जाकर हाथ-पैर जोड़कर इस क्रोधी ऋषि को मना। तब तक मैं अर्घ्य-पाद्य लाती हूँ।

प्रियंवदा—अच्छा। (जाती है।)

अनसूया—(जल्दी-जल्दी चल कर गिर जाती है) हाय उतावली में

फूलों की टोकरी ही गिर गई। (फूल बीनती है।)

प्रियंवदा—(आकर) अरी सखी, वह ऋषि तो बड़ा क्रोधी है। वह लौटने को तो नट गया, पर जब मैंने बहुत विनती की, तो उसने कहा—अंगूठी देखने पर शाप मिट जायगा।

अनसूया—चलो, अच्छा हुआ। वह राजर्षि अपने नाम की खुदी हुई एक अंगूठी दे गया है। वह शकुन्तला के पास है ही। जब वह राजा के पास जायगी। तो अंगूठी देखकर शाप का प्रभाव नष्ट हो जायगा।

प्रियंवदा—(देखकर) अरी अनसूये, इस शकुन्तला को देख तो, पति के वियोग में कैसी बेसुध बैठी है। इसे तो आये-गये का भी ध्यान नहीं है।

अनसूया—तो इसे शाप की बात मत कहना।

(जाती है।)

पाँचवाँ दृश्य

(कण्व के आश्रम के समीप का स्थान। एक शिष्य आता है।)

शिष्य—महात्मा कण्व अभी तीर्थयात्रा से लौटे हैं और मुझसे पूछा है कि देख रात कितनी शेष है ? (देखकर) यह तो सवेरा हो गया।

(अनसूया आती है।)

अनसूया—(स्वगत) यद्यपि मैं संसार की बातों से अनजान हूँ, पर राजा ने किया अनर्थ।

शिष्य—अब होम का समय हो गया। चल कर गुरु जी से कहना चाहिए। (जाता है।)

अनसूया—मेरी तो कुछ समझ में नहीं आता। ऐसा प्रतीत होता है कि मेरी सखी किसी प्रवंचक के जाल में फँस गई। अथवा ऋषि के शाप का फल है कि जो राजर्षि ने वचन देकर भी सखी की सुध नहीं

ली। न संदेश भेजा। अब उन्हें याद दिलाने के लिए अंगूठी भेजनी चाहिए। पर तपस्वियों में से किसे भेजूं। पिता कण्व अभी तीर्थ से आये हैं। उनसे कैसे कहूँ कि शकुन्तला का गान्धर्व-विवाह हो गया और उसे गर्भ भी है।

(प्रियंवदा हँसती हुई आती है।)

प्रियंवदा—अरी, जल्दी चल, शकुन्तला की विदा की तैयारी कर।

अनसूया—तू कहती क्या है?

प्रियंवदा—मैं शकुन्तला से यह पूछने गई थी कि वह रात में सुख से सोई भी या नहीं। पर वह लाज से सिर झुकाये खड़ी रही। तभी पिता कण्व आये और उसके सिर पर हाथ फेर कर बोले—पुत्री, मंगल की बात है। जिस प्रकार योग्य शिष्य को विद्यादान देने से प्रसन्नता होती है, उसी प्रकार प्रसन्नता से आज मैं तुझे ऋषियों के साथ तेरे पति के पास भेज दूंगा।

अनसूया—परन्तु पिता से यह समाचार कहा किसने?

प्रियंवदा—अरी, जब महर्षि यज्ञ-स्थान में पहुँचे, तभी आकाशवाणी हुई कि जैसे शमी की लकड़ी में अग्नि छिपी रहती है, वैसे ही तेरी पुत्री के गर्भ में वह तेज है, जो दुष्यन्त ने उसे प्रजा की रक्षा करने को दिया है।

अनसूया—यह सुनकर तो हर्ष हुआ, पर सखी आज ही जायगी, इससे चित्त उदास हो गया।

प्रियंवदा—वह सुखी रहे, हमें इसी में सुख है।

अनसूया—मैंने इसी दिन को उस नारियल में, जो आम के पेड़ पर लटका है, नित नई नागकेसर की माला रखी थी। इसे तू उतार ले। तब तक मैं मृगरोचन और तीर्थ की मिट्टी और दूब मंगल उपचार की सामग्री ले आऊं।

प्रियंवदा—बहुत अच्छा।

(अनसूया जाती है। प्रियंवदा माला उतारती है।)

(नेपथ्य में)

--आर्या गौतमी, शारंगरव और शारद्वत मिश्रों से कह दो कि वे शकुन्तला को पहुँचाने जायँ।

प्रियंवदा--(कान लगा कर) अरी अनसूया, जल्दी कर। हस्तिनापुर जाने वाले ऋषि बुलाये जा रहे हैं।

(अनसूया हाथ में सामग्री लिये आती है।)

अनसूया--आओ सखी, हम भी चलें। शकुन्तला सूर्योदय से प्रथम ही सिर से स्नान करके बैठी है और बहुत-सी तपस्विनियाँ हाथ में तन्दुल लिये असीस दे रही हैं। चलो, हम भी वहीं चलें।

(जाती हैं।)

छठा दृश्य

(शकुन्तला की कुटीर। होमाग्नि जल रही है। तपस्विनी असीस दे रही हैं। कण्व ऋषि आते हैं।)

कण्व--आज पुत्री शकुन्तला जा रही है। इससे मेरा मन बहुत उदास है। कण्ठ से बात नहीं फूटती। आँखें पानी भर आने से धुंधली हो गई हैं। जब मुझ जैसे वीतराग तपस्वी का यह हाल है, तब गृहस्थों की क्या दशा होती होगी!

शकुन्तला--(उठकर लजाती हुई) पिता, अभिवादन करती हूँ।

कण्व--पुत्री, जैसे पति की रानी बनकर शर्मिष्ठा ने आदर पाया, वैसे ही तू भी पति से आदर पा और चक्रवर्ती पुत्र की माता हो।

गौतमी--आर्य, यह आशीर्वाद नहीं, वरदान है।

कण्व--पुत्री, उठ कर यज्ञाग्नि की प्रदक्षिणा कर।

(शकुन्तला प्रदक्षिणा करती है।)

कण्व--साथ जाने वाले मिश्र कहाँ हैं?

(शारंगरव और शारद्वत आते हैं।)

मुनि---आर्य, हम उपस्थित हैं।

कण्व---तो अपनी बहिन को राह बताओ।

शारंगरव---आओ भगवती, इधर से।

(सब चलते हैं।)

कण्व---हे तपोवन के वृक्षो, जो शकुन्तला तुम्हें सींचे बिना जल नहीं पीती थी, जो फूल तोड़ते भी दुख पाती थी। तुम्हारे फूलने का उत्सव मनाती थी, वह आज ससुराल जा रही है। भला, देखो कोयल कूक उठी, वनदेवताओं ने कोयल के मुख से पुत्री को विदा दे दी।

शकुन्तला---(सखियों से) आश्रम छोड़ते मेरी छाती फटती है।

प्रियंवदा---तुम्हारे वियोग से तो यह तपोवन भी शोकमग्न हो गया। देखो ये मृग मुख का घास खाना भूल गये, मोर अपना नृत्य भूल गये। और लताएँ जो पीले पत्ते गिरा रही हैं सो जैसे आँसू गिर रहे हैं।

शकुन्तला---(नवमल्लिका लता से दौड़ कर लिपट कर) अरी बहन वनज्योत्स्ना, यद्यपि तू आम से लिपटी है, फिर भी एक बार मुझ से मिल ले।

कण्व---अरी पुत्री, अब विलम्ब मत कर।

शारंगरव---महात्मन्, सुनते हैं कि प्रिय जनों को पहुँचाने जहाँ तक जलाशय न मिले, वहाँ तक जाना चाहिए। अब यह सरोवर आ गया। आप लौट जाइए।

कण्व---तो आओ, क्षण भर सब कोई इस वट की छाया में बैठें।

(बैठते हैं।)

कण्व---(स्वगत) राजा को मैं क्या संदेश भेजूं। (सोचता है।) आयुष्मन् शारंगरव, तू शकुन्तला को आगे करके हमारी ओर से उस धर्मात्मा राजा से कहना कि हमें तपस्वी और अपने को राजर्षि

जानकर तथा शकुन्तला और तुझ में जो आप ही प्रीति उत्पन्न हुई है, उसे सोचकर शकुन्तला को रानी की ही भाँति रखना।

शारंगरव—मैंने संदेश गाँठ बाँध लिया।

कण्व—बेटी, अब तू भी सीख सुन, हम वनवासी तो हैं, फिर भी लौकिक व्यवहार जानते हैं। वहाँ जाकर बड़ों का आदर करना, सौतों से ईर्षा मत करना, पति क्रुद्ध भी हो, तो तू कठोर वचन मत कहना। दासियों से कृपा-भाव रखना, और किसी तरह अभिमान मत करना। इसी में तेरा कल्याण होगा।

दोनों सखी—(मिलकर) सखी, कदाचित् राजा तुझे भूल जाय, तो यह अंगूठी उसे दिखा देना।

शकुन्तला—तुमने तो मेरे मन में शंका उत्पन्न कर दी।

दोनों सखी—शंका की बात कुछ नहीं है।

शारंगरव—अब धूप बढ़ रही है। जल्दी चलो।

कण्व—अच्छा अब जाओ, तुम्हारा मार्ग सुखकर हो।

(सब जाते हैं।)

सातवाँ दृश्य

(हस्तिनापुर का राजप्रासाद। राजा राजकाज से निश्चिन्त होकर विदूषक माढव्य से बातें कर रहा है। संगीत-शाला से रानी हंसपदी के संगीत की मधुर ध्वनि आ रही है। राजा ध्यान से संगीत सुन रहा है।)

(कंचुकी आता है।)

कंचुकी—(स्वगत) महाराज धर्मासन से उठ कर अभी अन्त:पुर में गये हैं। इसलिए अभी उचित नहीं कि मैं उनसे निवेदन करूँ कि कण्व ऋषि के बटुक आये हैं। इससे स्वामी के विश्राम में विघ्न तो

पड़ेगा पर जिनके ऊपर पृथ्वी का भार है, उनका विश्राम कैसा ? तो फिर कह ही दूँ (देखकर) वह महाराज बैठे हैं। (आगे बढ़कर) महाराज की जय हो। हिमाचल के अंचल में बसने वाले मुनि कण्व के आश्रम के तपस्वी स्त्रियों सहित कण्व मुनि का सन्देश लेकर आये हैं। द्वार पर उपस्थित हैं। आगे जैसी महाराज की आज्ञा हो।

राजा—(आदर से) अच्छा, तुम सोमरात पुरोहित से कह दो कि उन लोगों को यथोचित सत्कार के साथ यज्ञशाला में ले जायँ। मैं भी वहीं आता हूँ।

कंचुकी—जो आज्ञा।

राजा—(उठकर) अरी प्रतिहारी, यज्ञशाला की राह बता।

प्रतिहारी—इधर से महाराज। यज्ञशाला की वेदी लिपी-पुती स्वच्छ पड़ी है। तथा निकट ही यज्ञधेनु बँधी है। पधारिए।

(राजा सेवकों के कन्धे का सहारा लेकर जाता है।)

आठवाँ दृश्य

(राजा यज्ञशाला में बैठा है।)

राजा—प्रतिहारी, कण्व मुनि ने ये ऋषि हमारे पास किस निमित्त भेजे हैं ?

प्रतिहारी—कदाचित् महाराज के सत्कृत्यों से संतुष्ट हो धन्यवाद देने आये हों।

(शकुन्तला को साथ लिये, गौतमी सहित मुनि आते हैं।)

शारंगरव—अरे शारद्वत, यह बड़ा प्रतापी राजा है। कभी मर्यादा से नहीं डिगता। पर मुझे एकान्त वन में रहने का अभ्यास है। इसलिए इतने मनुष्यों से भरा हुआ आँगन मुझे ऐसा लगता है जैसे आग से भरा हुआ घर।

शारद्वत—यही दशा मेरी भी है।

शकुन्तला—मेरी दाहिनी आँख क्यों फड़कने लगी ?

गौतमी—दैव कुशल करे। तेरे पति के कुलदेव अमंगल दूर करें।

प्रतिहारी—इधर से महात्मन्, महाराज यहाँ विराजमान हैं।

पुरोहित—हे तपस्वियो, वर्णाश्रम-प्रतिपालक श्री महाराज आसन से उठकर आपकी बाट देख रहे हैं।

शारंगरव—यह तो बड़ों की बड़ाई की बात है। वैभव पाकर सज्जन झुकते ही हैं।

प्रतिहारी—महाराज, ये ऋषि लोग उपस्थित हैं।

राजा—(शकुन्तला की ओर देखकर) तो यह भगवती कौन है? आंचल की ओट से खड़ी होने के कारण पूरा सौन्दर्य तो नहीं दीखता—परन्तु तपस्वियों से घिरी ऐसी लगती है, जैसे पुराने पत्तों से ढकी हुई नई कोंपल।

शकुन्तला—(स्वगत) अरे हृदय, धीरज धर।

पुरोहित—महाराज, इन तपस्वियों का यथाविधि सत्कार हो चुका, अब ये मुनि कण्व का संदेश सुनायें।

राजा—लोक-हितकारी मुनि कण्व प्रसन्न तो हैं?

मुनि—महाराज, गुरु जी ने आपकी कुशल पूछ कर कहा है कि आपने मेरी इस कन्या का गान्धर्व रीति से जो विवाह कर लिया, सो मैं प्रसन्नता से स्वीकार करता हूँ; क्योंकि दोनों का समान जोड़ा है।

गौतमी—महाराज, आप दोनों ने अपने आप ही विवाह कर लिया। न आपने बन्धु-बान्धवों से पूछा, न इसी ने बड़ों की आज्ञा की बाट जोही। अब आप अपनी इस गर्भवती आर्या को धर्माचरण के निमित्त ग्रहण कीजिए।

राजा—यह क्या बात है? कभी इसके साथ मेरा विवाह हुआ था? मुझे तो याद नहीं।

शकुन्तला—(स्वगत) अरे, महाराज का यह वचन तो अग्नि के समान है। जो डर था, वह आगे आ गया।

गौतमी—(शकुन्तला से) अरी पुत्री, अब लाज करने से क्या लाभ ? ला, तेरा घूंघट खोल दूं, जिससे तेरा पति तुझे पहचान ले।

(घूंघट हटाती है।)

राजा—(शकुन्तला को देखकर स्वगत) मुझे तो कुछ भी याद नहीं आता कि मैंने कभी इसके साथ विवाह किया था, फिर मैं कैसे इसे ग्रहण कर सकता हूं ?

शारंगरव—महाराज, आप क्या कह रहे हैं ?

राजा—इस गर्भवती को मैं कैसे स्वीकार कर सकता हूं ? मैं ऐसा करूँ, तो लोग मुझे दोषी न कहेंगे ?

शकुन्तला—(स्वगत) हे दैव, अब तो सब आस टूट गई।

शारंगरव—हे राजा, जिस मुनि की निर्दोष कन्या को तुमने छल से दूषित किया और फिर भी उन्होंने तुम्हें क्षमा करके कन्या तुम्हारी विवाहिता स्वीकार कर ली; और तुम्हारे पास ऐसे भेज दी, जैसे चोरी की वस्तु कोई चोर को ही फेर दे; सो क्या ऐसे अपमान के पात्र हैं ?

शारद्वत—शारंगरव, तुम तनिक ठहरो। शकुन्तले, हमें जो कहना था, कह चुके। अब तुझे जो कहना है, कह ले।

शकुन्तला—(स्वगत) जब वह स्नेह ही न रहा, तो कहना-सुनना क्या ? (प्रकट) आर्यपुत्र (रुककर) जब विवाह में ही संदेह है, तो यह शब्द ही अनुचित है। तो हे पुरुवंशी ! तुमको यह उचित न था कि तपोवन में मुझ सीधी-सादी कलिकाओं को प्रतिज्ञाओं से फुसलाकर अब ऐसे निष्ठुर बन गये। यह आपके योग्य व्यवहार नहीं है।

राजा—(कान पर हाथ धर के) शान्तं पापम्। यह सब पाप-कथा असत्य है। देवी, तुम तो मुझे कलंकित और मेरे प्रतिष्ठित वंश को दूषित करना चाहती हो।

शकुन्तला—खैर, जो आप मुझे परनारी ही समझते हैं, तो यह अंगूठी देखिए, जो आपने दी थी। उससे आपकी शंका मिट जायगी।

राजा--यह अच्छी बात बताई। देखूँ अंगूठी।

शकुन्तला--(देखकर) हाय, अंगूठी कहाँ गई ?

(व्याकुलता से गौतमी की ओर देखती है।)

गौतमी--तूने शचीतीर्थ में जल पिया था ! कहीं तभी तो अंगूठी नहीं गिर गई ?

दुष्यन्त--(मुस्कराकर) इसे कहते हैं--स्त्री की बुद्धि।

गौतमी--राजन्, यह तपस्वी-कन्या है। यह छल-बल क्या जाने ?

राजा--तपस्विनी, सुनो, स्त्री-जाति तो स्वभाव ही से चालाक होती है।

शकुन्तला--(क्रोध से) हे अनार्य, तुम स्वयं जैसे कुटिल हो, वैसा ही औरों को समझते हो।

पुरोहित--भगवति, महाराज के सब काम हम पर विदित हैं। पर यह हमने नहीं सुना कि तुम्हारा इनसे कभी विवाह हुआ था।

शकुन्तला--ठीक है--इस विषकुम्भं पयोमुखं पुरुवंशी पर विश्वास करके मैंने अपनी लाज खोई। (रोती है।)

शारंगरव--बिना सोचे-विचारे जो काम किया जाय, उससे ऐसा ही दुःख मिलता है।

शारद्वत--शारंगरव, इस थोथी बकवास से क्या लाभ ? हम तो गुरु का सन्देश दे चुके। अब हमें यहाँ से चलना चाहिए। (राजा से) यह आपकी पत्नी है। आप चाहे इसे रक्खें, चाहे निकाल दें। (जाते हैं।)

शकुन्तला--हाय, इस शठ छलिया ने तो त्याग ही दिया। अब तुम भी मुझे छोड़ चले। (उनके पीछे जाती है।)

राजा--अरे तपस्वियो, इस बेचारी को झूठी आशा मत दिलाओ।

शारंगरव--महाराज, आपको धर्म का भय नहीं।

राजा--(पुरोहित से) तो अब आप ही बताइये, मैं क्या करूँ ?

पुरोहित--महाराज, ज्योतिषियों का कथन है--आपका पुत्र चक्र-

वर्ती होगा। यह स्त्री गर्भवती है। यदि जन्म लेने पर बालक में चक्रवर्ती के लक्षण दिखाई दें, तो समझना चाहिए कि वह आप ही का पुत्र है, तब इस स्त्री को अन्तःपुर में स्थान दीजिए, अन्यथा आश्रम को लौटा दीजिए। तब तक यह मेरे घर में रहेगी।

राजा—जो तुम बड़ों को अच्छा लगे, वही करो।

पुरोहित—(शकुन्तला से) आ पुत्री, मेरे साथ आ।

शकुन्तला—(रोती हुई) अरी वसुन्धरे, तू फट जा और मैं तुझमें समा जाऊं। (पुरोहित के पीछे जाती है।)

नौवाँ दृश्य

(राजा चिन्ता की मुद्रा में बैठा है।)

(नेपथ्य में।)

—आश्चर्य, आश्चर्य !

राजा—(चौकन्ना होकर) क्या हुआ ?

(पुरोहित आता है।)

पुरोहित—महाराज, बड़ी अद्भुत घटना घटी।

राजा—क्या हुआ ?

पुरोहित—जब ऋषि कण्व के शिष्य चले गये तो वह स्त्री रोती और अपने भाग्य को कोसती हुई उनके पीछे कुछ दूर चली।

राजा—अच्छा, फिर !

पुरोहित—जब वह व्याकुल होकर हाथ पसारे रोती हुई अप्सरा-तीर्थ के निकट पहुँची, तब एक चमत्कार हुआ।

राजा—क्या हुआ ?

पुरोहित—एक ज्योति स्त्री-रूप में आकर उसे आकाश में उड़ा ले गई।

राजा—अरे, बड़ी अद्भुत घटना हो गई।

(सब आश्चर्य करते हैं।)

पुरोहित—महाराज, कदाचित् उसका कथन सत्य ही हो।

राजा—(उठकर) यद्यपि मुझे विवाह की याद नहीं है। इससे मैंने उस मुनि-कन्या को अंगीकार नहीं किया। पर अब मेरा हृदय कहता है—कदाचित् उसका कथन सत्य ही होगा।

(सोचता हुआ जाता है।)

दसवाँ दृश्य

(स्थान—नगर की राजगली)

(राजा का साला, कोतवाल और दो प्यादे एक आदमी को बाँध कर ला रहे हैं।)

पहला प्यादा—(बँधुए को पीटते हुए) अरे कुम्भलिक, बता, यह अंगूठी तुझे कहाँ मिली? इस पर तो राजा का नाम खुदा है।

कुम्भलिक—(काँपता हुआ) दया कीजिए, महाराज, मैं अपराधी नहीं हूँ, न मैं चोर हूँ।

पहला प्यादा—तो तू क्या कोई श्रेष्ठ ब्राह्मण है? कि सुपात्र जान कर राजा ने अंगूठी तुझे दक्षिणा में दे दी हो।

कुम्भलिक—अजी, मैं मछली पकड़ने का धन्धा करता हूँ। एक दिन एक रोहू मछली मैंने पकड़ी, उसे जब काटा तो उसके पेट में से यह अंगूठी निकली। इसे बेचने को मैं यहाँ आया था कि आपने मुझे पकड़ लिया। बस, जो सच्ची बात थी, मैंने कह दी, अब आप मारिए, चाहे छोड़िए।

कोतवाल—अरे जानुक, इसकी देह से कच्चे मांस की गन्ध आती है। इससे जान पड़ता है कि यह निश्चय ही गोह खाने वाला धीवर है। परन्तु अँगूठी के सम्बन्ध में उससे और पूछ-ताछ होनी चाहिए। चलो, इसे राजा के पास ले चलें।

दोनों प्यादे—बहुत अच्छा, अरे चल चोर।

(सब चलते हैं।)

ग्यारहवाँ दृश्य

(स्थान—राजोद्यान)

(नेपथ्य में)

—'महाराज, इधर से पधारिए, इधर से।'

राजा—(इधर उधर देखकर) मुझ भाग्यहीन को प्रिया शकुन्तला ने बहुत याद दिलाई, पर सुध न आई। अब पछताने से क्या ?

विदूषक—(स्वगत) अब राजा को तो शकुन्तला का भूत लग गया। अब मैं क्या उपाय करूँ ?

कंचुकी—(आगे बढ़कर) महाराज की जय हो। महाराज की आज्ञा से मैं प्रमदवन को भली-भाँति देख आया। आप चलकर जहाँ इच्छा हो, वहीं विश्राम करें।

दुष्यन्त—अरी प्रतिहारी, मन्त्री से कह, जागने के कारण हम में धर्मासन पर बैठने की सामर्थ्य नहीं है। इससे जो कुछ काम-काज हो, यहीं भेज दो।

प्रतिहारी—जो आज्ञा।

विदूषक—चलो पातक कटा। अब इस प्रमदवन की कुंज में बैठकर मन बहलाओ।

राजा—अरे मित्र, यह कामदेव फूलों के धनुप पर आम की मंजरी का बाण चढ़ाकर मुझे मारने आया है।

विदूषक—तो ठहरो, मैं अभी इस लाठी से उसके धनुपबाण को तोड़ डालता हूं।

(लाठी से आम की मंजरी तोड़ता है।)

दुष्यन्त—अरे मूर्ख, देख लिया तेरा ब्रह्मतेज। ठहर। बता, कहाँ बैठकर अब प्यारी के समान कोमल लताओं से आँखें शीतल करूँ ?

विदूषक—आपने तो दासी चतुरिका को आज्ञा दी है कि माधवी-मण्डप में देवी शकुन्तला का चित्र ले आ। हम उसी से मन बहलायेंगे।

दुष्यन्त—तो मित्र, मार्ग बता।

विदूषक—इधर से महाराज।

(दोनों जाते हैं।)

(दोनों माधवी मण्डप में शिला पर बैठते हैं।)

दुष्यन्त—अरे मित्र, अब तो मुझे शकुन्तला की सब बातें याद आ रही हैं। मित्र, अब तक तूने भी तो सुध न दिलाई।

विदूषक—अजी, तुमने ही तो कहा था कि यह सब कहानी मन-गढंत हैं।

राजा—हाय, मैंने कैसी निठुराई की; पर वह गई कहां?

विदूषक—कोई देवता उसे उठा ले गया।

राजा—हाय, मेरे तो मनोरथ ही सब डूब गये।

विदूषक—अजी ऐसा मत कहो। देखो, अंगूठी ही का मिल जाना इस बात का प्रमाण है कि खोई वस्तु फिर मिल जाती है।

राजा—यह अंगूठी भी मेरी ही भांति अभागी है, जो उन हाथों तक पहुंचकर भी बिछुड़ गई।

(दासी शकुन्तला का चित्र लाती है।)

दासी—महाराज, यह महारानी का चित्र है? (दिखाती है।)

विदूषक—(देखकर) चित्र तो ठीक बना है पर इसमें तीन स्त्रियां हैं। इसमें शकुन्तला कौन-सी होगी। समझ गया। जिसका केश-बन्धन ढीला होकर बालों से फूल गिर रहे हैं, शरीर कुछ थका हुआ-सा दीखता है। पसीने की बूंदें मुंह पर ढलक रही हैं और जो इस सींचे हुए नए कोंपल वाले आम के पेड़ के पास खड़ी है। वही देवी शकुन्तला है।

राजा—हां, जब वह आई, तो मैंने निरादर करके कठोरता से त्याग दिया। अब चित्र को आदर देता हूँ। मेरी दशा ऐसी है, जैसे कोई बहती नदी को उतर कर मृगतृष्णा के पीछे दौड़े। हे मित्र, अब मैं यह दुःख कैसे सहूँ? (विलाप करता है।)

बारहवां दृश्य

(राजप्रासाद । राजा चिन्तित बैठा है।)

(इन्द्र-सारथी मातलि आता है।)

मातलि—महाराज, देवराज इन्द्र ने मुझे आपकी सेवा में इसलिए भेजा है कि दानव कालनेमि बहुत प्रबल हो रहा है। महाराज, देवराज इन्द्र भी उस पर विजय नहीं पा रहे हैं। सो महाराज, देवराज ने आपको सहायतार्थ याद किया है।

राजा—यह देवराज का हम पर स्नेह है। सखा माढव्य, देवराज इन्द्र की आज्ञा उल्लंघन करना योग्य नहीं है। तुम जाकर मन्त्री पिशुन से कह दो कि जब तक हमारा धनुष परकाज में प्रवृत्त है, वह धर्मबुद्धि से प्रजा का रक्षण करें।

विदूषक—बहुत अच्छा। (जाता है।)

मातलि—महाराज, यह रथ है। रथ पर चढ़िए।

(राजा रथ पर चढ़कर जाता है।)

तेरहवाँ दृश्य

(दुष्यन्त और मातलि रथ पर बैठे आकाश से उतरते हैं।)

दुष्यन्त—मातलि मैंने देवराज की आज्ञा पालन कर दी। देवराज ने चन्दन लगी मन्दार की माला अपने अंग से उतार कर मेरे कण्ठ में डाल कर मेरा सत्कार किया और देवताओं के समक्ष आधी गद्दी पर बैठाया।

मातलि—महाराज, आपने भी देवराज का बड़ा उपकार किया। जिससे कृत-कृत्य हो देवगण स्त्रियों के अंगराग से बचे महावर, कस्तूरी और चन्दन से आपके चरित्र के गीतों को कल्पवृक्ष के पत्तों पर लिख रहे हैं।

दुष्यन्त—मातलि, हमने दानवों के युद्ध के उत्साह के कारण इधर

से जाते हुए स्वर्गमार्ग भली-भाँति नहीं देखा। अब तुम कहो—हम पवनों के किस मार्ग पर चल रहे हैं ?.

मातलि—महाराज, यह मार्ग विष्णु के अवतार वामन के दूसरे पग से पवित्र किया हुआ है। इसमें आकाशगंगा को प्रवाहित करने वाली और ग्रहों तथा नक्षत्रों को चलाने वाली परिवह पवन चलती है।

दुष्यन्त—अहा, यहाँ आकर शरीर और मन प्रसन्न हो गया। कदाचित् अब हम मेघों से नीचे उतर आये। मातलि, यह पूर्व से पश्चिम की ओर समुद्र तक विस्तीर्ण कौन-सा पर्वत है।

मातलि—महाराज, यह तपस्या का सिद्धक्षेत्र, किन्नरों का हेमकूट पर्वत है। ब्रह्मा के पौत्र और मरीचि के पुत्र प्रजापति कश्यप अपनी पत्नी के साथ इसी स्थान पर तपस्या करते हैं।

दुष्यन्त—तब तो यह शुभ अवसर चूकना नहीं चाहिए। चल कर प्रजापति के दर्शन करने चाहिएँ।

मातलि—आपका विचार उत्तम है। (रथ रोककर) महाराज अब उतरिए ।

दुष्यन्त—मातलि, मुनियों के पास अवसर देखकर जाना चाहिए।

मातलि—तो आप इस अशोक वृक्ष की छाया में बैठिए, जब तक मैं आपके आने का सन्देश जाकर दे आऊँ। (जाता है।)

दुष्यन्त—(बैठकर) अरे, यहाँ मनोरथ-सिद्धि की तो कोई आशा नहीं है फिर दाहिनी भुजा क्यों फड़कने लगी ?

(नेपथ्य में)

—बेटा, चपलता मत कर।

दुष्यन्त—(शब्द पर कान देकर) अहा, यह किसका पराक्रमी बालक है, जिसे दो तपस्विनी रोक रही हैं ?

(बालक सिंह के बच्चे को खींचता हुआ लाता है, दो तपस्विनी उसे रोक रही हैं।)

एक स्त्री—अरे, तू इस सिंह के बच्चे को क्यों सताता है ? छोड़ दे।

बालक—मैं इसका मुँह खोलकर इसके दाँत गिनूँगा।

दूसरी स्त्री—इसी साहस के कारण तो ऋषियों ने तेरा नाम सर्वदमन रखा है।

दुष्यन्त—(स्वगत) अरे, इस बालक के प्रति तो मेरे मन में पुत्र का-सा स्नेह उदय हो रहा है।

तपस्विनी—अरे, छोड़। नहीं तो सिंहनी तुझ पर झपट पड़ेगी।

बालक—(हँसकर) मैं सिंहनी से नहीं डरता।

राजा—यह बालक तो ऐसा प्रतापी दीख पड़ता है, जैसे प्रज्वलित अग्नि।

तपस्विनी—उस सिंह के छौने को छोड़ दे, मैं तुझे और खिलौने दूँगी।

बालक—(हाथ पसार कर) ला, दे।

दुष्यन्त—(हाथ देखकर) इसके तो लक्षण चक्रवर्तियों के-से हैं।

तपस्विनी—(दूसरी से) अरी सुव्रता, जा मेरी कुटी से मिट्टी का मोर ले आ।

पहिली तपस्विनी—अभी लाती हूँ। (जाती है।)

बालक—(हँसकर) तब तक मैं इसी से खेलूँगा।

दुष्यन्त—इस बालक को तो गोद में लेकर खिलाने को मन होता है।

तपस्विनी—(राजा को देखकर) अजी, महात्मन्, तनिक तुम्हीं आकर इस हठी बालक के हाथ से इस सिंह-शावक को छुड़ा दो।

दुष्यन्त—(बालक के पास जाकर हँसता हुआ) अरे बेटा, यह तेरा काम तो ऋषिकुमार के योग्य नहीं। आश्रमवासी तो पशुओं की रक्षा करते हैं।

तपस्विनी—आर्य, यह बालक ऋषिकुमार नहीं।

राजा—यह तो इसके आकार से ही प्रकट है। मैंने तो तपोवन का वास देखकर ऋषिकुमार कहा।

दूसरी तपस्विनी—बेटे, यह सुन्दर मोर ले।

बालक—(मोर लेकर) यह मोर बहुत अच्छा है।

पहली तपस्विनी—अरे, इसकी बाँह से रक्षा-कवच कहाँ गिर गया।

दुष्यन्त—घबराओ मत। यह नीचे गिर गया है; लो। (उठाता है।)

दोनों तपस्विनी—उसे मत छूना। हाय, इन्होंने उठा लिया। अब क्या करूँ ?

राजा—क्यों, उठाने में क्या दोष है ?

तपस्विनी—आर्य, इस रक्षा-कवच का नाम अपराजित है। जब इस बालक का जातकर्म हुआ था, तो महात्मा मरीचि के पुत्र कश्यप ने यह दिया था। इसमें यह गुण है कि यदि यह भूमि पर गिर जाय, तो इस बालक के माता-पिता को छोड़ और कोई न उठाये।

राजा—और यदि कोई उठा ले, तो ?

तपस्विनी—तो यह तुरन्त साँप बनकर डस लेगा।

राजा—(आनन्दित होकर आप ही आप) तब तो मेरा मनोरथ पूरा होता दीखता है। (बालक को गोद में उठा लेता है।)

तपस्विनी—यह कवच तो महात्मा के छूने से सर्प नहीं बना। चलो, यह समाचार शकुन्तला को सुना दें।

(दोनों जाती हैं।)

बालक—मुझे छोड़ दो, मैं माता के पास जाऊँगा।

राजा—पुत्र, तू मेरे साथ चल। मैं तेरा पिता हूँ।

बालक—नहीं, मेरे पिता महाराज दुष्यन्त हैं।

(एक वेणी धारण किये शकुन्तला आती है।)

शकुन्तला—(स्वगत) यह सुनकर भी कि सर्वदमन के रक्षा-कवच ने अपना रूप नहीं बदला, मुझे अपने भाग्य का भरोसा नहीं।

राजा—(देखकर) अहा, यह तो मेरी प्यारी शकुन्तला आ रही है। शरीर दुर्बल हो गया है, सिर पर एक वेणी है और वस्त्र मलिन हैं। यह सब सुख छोड़कर यह मेरे लिए अपने शील के कारण विरह का दुःख सह रही है।

शकुन्तला—(राजा को न पहिचान कर) यह कौन है, जिसने रक्षा-कवच पहने हुए मेरे पुत्र को छूकर अपवित्र कर दिया ?

बालक—अम्ब, यह पुरुष मुझे पुत्र कहता है।

राजा—प्रिये, मेरी निष्ठुरता तो बहुत है, परन्तु तुमने क्षमा किया कि कहीं ?

शकुन्तला—(स्वगत) अरे, मन धीरज धर। (प्रकट) तो आर्य-पुत्र ही हैं ?

राजा—प्रिये, धन्य है वह घड़ी कि मेरा भ्रम दूर हो गया। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे ग्रहण हटने पर चन्द्रमा से रोहिणी का मिलाप हो रहा हो !

शकुन्तला—आर्यपुत्र की ज··· (कण्ठ रुकता है, आँसू बहते हैं।)

बालक—अम्ब, यह पुरुष कौन है ?

शकुन्तला—पुत्र, मेरे भाग्य से पूछ।

राजा—(शकुन्तला के पैरों पर गिरकर) प्रिये, अब तुम अपमान के पछतावे को भूल जाओ। मनुष्य अज्ञानवश सम्मुख आये सुख का अनादर कर देते हैं। जैसे अन्धे को हार पहनाया जाय, तो वह उसे सर्प समझ कर फेंक दे।

शकुन्तला—उठो, आर्यपुत्र, मुझे जो माँगना था माँगा। वह मेरे ही पूर्व जन्म के पापों का फल था। अब यह कहो कि तुम्हें मुझ दुखिया की सुध कैसे आई ?

राजा—(उठकर) प्रिये, उस दिन तेरे होंठ पर गिरी आँसू की बूँद भी मैंने भ्रमवश देखी अनदेखी कर दी। आज तेरे पलक पर छाये

हुए आँसुओं को पोंछकर उसका प्रतिहार करूँगा।

शकुन्तला—(राजा की उँगली में अँगूठी देख कर) क्या वही अँगूठी है ?

राजा—हाँ, इसी को देखकर मुझे तुम्हारी सुध आ गई। अब तुम इसे फिर पहनो, जैसे ऋतु आने पर लता फिर फूल धारण करती है।

शकुन्तला—तुम्हीं पहने रहो। मुझे इसका भरोसा नहीं रहा।

(मातलि आता है।)

मातलि—महाराज, आज का दिन धन्य है कि आपको पत्नी और पुत्र की प्राप्ति हुई।

राजा—हाँ, आज मेरा मनोरथ सफल हुआ।

मातलि—तो आइए, महात्मा कश्यप के दर्शन कर लीजिए।

राजा—प्रिये, तुम पुत्र का हाथ थाम लो। मैं तुम्हें आगे करके ही महात्मा के दर्शन करना चाहता हूँ।

शकुन्तला—आर्यपुत्र, आपके संग गुरुजनों के सामने जाने में मुझे लाज आती है।

राजा—ऐसे शुभ अवसर पर ऐसा ही करना उचित है। आओ।

(सब जाते हैं।)

पन्द्रहवाँ दृश्य

(आसन पर कश्यप और अदिति बैठे हैं।)

(राजा आता है।)

कश्यप—यह मृत्यु लोक का राजा दुष्यन्त आ रहा है, जिसके धनुष के प्रताप से इन्द्र का वज्र अधिक शोभायमान हुआ है।

अदिति—इसकी आकृति से ही बड़प्पन प्रकट हो रहा है।

मातलि—(राजा से) महाराज, ये देवताओं के माता-पिता यहाँ विराजमान हैं, जो आपके प्रति पुत्रभाव रखते हैं। आइए, और निकट आइए।

राजा—क्या यही महापुरुष कश्यप और अदिति हैं ?—जो बारह आदित्यों के पिता-माता हैं तथा देवराज इन्द्र के भी पिता हैं। यही वे धर्मात्मा मरीचिपुत्र कश्यप और भगवती दक्ष-पुत्री अदिति हैं।

मातलि—यही हैं।

राजा—(आगे बढ़ कर बद्धाञ्जलि) महात्माओ, अभिवादन करता हूँ।

कश्यप—पुत्र, तू चिरंजीव होकर पृथ्वी का पालन कर।

अदिति—तू युद्ध में अजेय हो।

शकुन्तला—पूज्यवरो, मैं भी आपके चरणों में पुत्र सहित वन्दना करती हूँ।

कश्यप—पुत्री, तेरा पति इन्द्र के समान, तेरा पुत्र जयन्त के समान और तू शची के समान हो।

अदिति—तू सदा सुहागिन हो। तेरा पुत्र दीर्घायु होकर दोनों कुलों का दीपक हो।

(सब प्रजापति के सामने बैठते हैं।)

कश्यप—(राजा से) राजन्, तेरी स्त्री पतिव्रता और पुत्र शुद्ध है। तुम तीनों का संयोग श्रद्धा, वित्त और विधि का संयोग है।

राजा—पिता, यह आप ही का अनुग्रह है।

मातलि—सब प्रजापतियों की कृपा का प्रभाव है।

राजा—भगवन्, आपकी इस दासी का विवाह मेरे साथ गान्धर्व-रीति से हुआ था। फिर कुछ काल बाद इसके मायके वाले इसे मेरे पास लाये। उस समय मेरी बुद्धि ऐसी भ्रष्ट हुई कि इसे न पहचान सका और इसे त्याग कर मैं आपके सगोत्री महात्मा कण्व का अपराधी बन बैठा। बाद में अंगूठी देखकर मुझे याद आई। यह बड़ी आश्चर्य की बात हुई।

कश्यप—पुत्र, जो हुआ, सो हुआ। जब अप्सरा-तीर्थ पर जाकर मेनका ने शकुन्तला को व्याकुल देखा, तो उसे लेकर अदिति के पास

आई। तब मैंने इसे ध्यान से जाना कि आपने इसे दुर्वासा के शापवश छोड़ा है और उसकी अवधि अंगूठी के दर्शन तक रहेगी।

राजा—(स्वगत) तब तो मैं अपवाद से बच गया।

शकुन्तला—(स्वगत) तो आर्यपुत्र ने मुझे जानबूझ कर नहीं त्यागा। तब तो वह निर्दोष हैं।

कश्यप—पुत्री, अब तू कृतार्थ हुई। तेरा पति निर्दोष है।

राजा—इससे तो मेरे वंश की प्रतिष्ठा हुई।

(बालक का हाथ पकड़ता है।)

कश्यप—यह बालक चक्रवर्ती होगा।

राजा—जिसके संस्कार आपने किये हैं, उससे हम किस बड़प्पन की आशा न करें।

अदिति—तो शकुन्तला का यह समाचार महात्मा कण्व को भी पहुँचना चाहिए। मैं मेनका से भी कह दूंगी।

कश्यप—कण्व तो अपने तप के प्रभाव से सब बातें जानते हैं।

राजा—(स्वगत) तभी तो उन्होंने मुझ पर कोप नहीं किया।

कश्यप—तो भी हम कण्व को यह मंगल-समाचार भेजेंगे। अरे गालव, जा, और कण्व को यह मंगल-समाचार सुना आ कि राजा ने शकुन्तला को अंगीकार कर लिया है।

गालव—जो आज्ञा। (जाता है।)

कश्यप—राजन्, अब तुम भी स्त्री पुत्र सहित इन्द्र के रथ पर चढ़ कर आनन्द से अपनी राजधानी को जाओ।

राजा—जैसी आज्ञा।

कश्यप—और सुनो। इन्द्र तुम्हारे राज्य में वर्षा करे, जिससे राज्य में धन-धान्य की वृद्धि हो। तुम बृहत् यज्ञ करो, जिससे स्वर्ग के देवता तृप्त हों। तथा तुम दोनों दीर्घायु रहो एवं तुम्हारा पुत्र चक्रवर्ती राजा हो।

सब—तथास्तु।

(सब जाते हैं।)

श्रीहर्ष (सम्राट् हर्षवर्द्धन)

(ईस्वी सन् ६१२)

नागानन्द

(अहिंसा और करुण रस का अद्वितीय रूपक)

जीवन-परिचय

श्रीहर्ष के सम्बन्ध में विवाद है। इतिहास में श्रीहर्ष नाम के पाँच व्यक्ति मिलते हैं। एक हैं—काव्यप्रदीप के रचयिता श्री गोविन्द ठक्कुर के छोटे भाई, दूसरे प्रसिद्ध महाकाव्य 'नैषध-चरित' के निर्माता, तीसरे काश्मीर के राजा, जिनकी रानी के मनोरंजन के लिए सोमदेव ने कथासरित्सागर रचा था। चौथे धारानगरी के राजा मुंज के पिता तथा भोज के दादा और पांचवें थानेश्वर के महाराज, जिनके सम्बन्ध में वाण भट्ट ने हर्षचरित लिखा है। इन पाँचों में थानेश्वर के महाराज ही इस ग्रन्थ के रचयिता हैं। श्रीहर्ष-लिखित दो और नाटिकाएँ भी नागानन्द के अतिरिक्त हैं—प्रियदर्शिका और रत्नावली। इन तीनों का उल्लेख धनञ्जय-कृत दशरूपक में है। धनञ्जय राजा मुंज के सभा-पण्डित थे। इनका काल ईस्वी ६६५ है। आनन्दवर्धनाचार्य ने अपने ग्रन्थ ध्वन्यालोक में नागानन्द और रत्नावली का नामोल्लेख किया है। आनन्दवर्द्धनाचार्य काश्मीर के राजा अवन्तिवर्मन् के राज्य-काल में थे जो ८५५-८८३ ईस्वी है। काश्मीर के महाराज जयापीड़ के मन्त्री दामोदर गुप्त ने अपने ग्रन्थ 'कुट्टनीमंत' में रत्नावली का एक श्लोक उद्धृत किया है, जो आठवीं शताब्दी में थे। इन प्रमाणों के

आधार पर नागानन्द आदि के रचयिता आठवीं शताब्दी के पूर्ववर्ती प्रमाणित हैं।

काव्यप्रदीप के रचयिता के छोटे भाई श्रीहर्ष का काल १५वीं शताब्दी, नैषध-रचयिता श्रीहर्ष का काल १२वीं शताब्दी, काश्मीर के महाराज श्रीहर्ष का ग्यारहवीं शताब्दी और मुंज के पिता का काल दसवीं शताब्दी है। इसलिए ये चारों ही नागानन्द आदि रूपकों के रचयिता नहीं है। थानेश्वर के महाराज हर्षवर्द्धन ही नागानन्द के रचयिता हैं, इसका स्पष्ट उल्लेख चीनी यात्री इत्सिंग की चीनी भाषा में ई० सन् ६९१ में प्रकाशित उनकी अपनी भारत-यात्रा के विवरण में है। इत्सिंग श्रीहर्ष के निधन के बाद सन् ६७१ में भारत आये तथा १० वर्ष नालन्दा विश्वविद्यालय में रहे थे।

नागानन्द और प्रियदर्शिका तथा रत्नावली तीनों ही रूपक सम्राट् हर्षवर्द्धन की रचना हैं। इसका पता इन रूपकों की भाषा-व्यंजना, शब्दशैली और समान वाक्यों के प्रयोग से लगता है। तीनों में केवल गद्य-पद्यों की समानता ही नहीं—वस्तु, भाव और विचारों का भी साम्य है।

कुछ पाश्चात्त्य आलोचकों का विचार है कि प्रियदर्शिका और रत्नावली तो एक लेखक की हैं, परन्तु नागानन्द किसी दूसरे की कृति है। उनका कहना है कि नागानन्द में बौद्ध धर्म की छाप है, जबकि पूर्वार्द्ध दोनों रूपकों में सारा वातावरण ही हिन्दुओं का है। परन्तु ध्यान से देखने पर नागानन्द के पात्र पूर्णरूपेण हिन्दू-धर्म में आस्था रखने वाले प्रतीत होते हैं। वास्तव में नागानन्द में हिन्दू-धर्म में बौद्ध-भावना का समन्वय है। महाराज हर्षवर्द्धन की धार्मिक सहिष्णुता इतिहास-प्रसिद्ध है। जीवन के उत्तर-काल में उनका झुकाव बौद्ध धर्म के प्रति हो गया था। इस कारण नागानन्द में बौद्ध धर्म की छाप है। कुछ विद्वान् मानते हैं कि महाराज हर्षवर्द्धन ने धन देकर अपने सभा-

नर्मदा-तट तक अक्षुण्ण बनी रही। ईस्वी सन् ६४७ में इनकी मृत्यु हुई।

श्री हर्षवर्द्धन एक परिष्कृत मनोवृत्ति तथा संस्कृत रुचि के सम्राट् थे। उन्होंने अपनी प्रजा को पूरी धार्मिक स्वतन्त्रता दी और राज्य व्यवस्था का भली भाँति पालन किया। इन्हें सातवीं शताब्दी का अशोक या अकबर कहा जाता है। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेन्त्सांग इनके राज्य-काल में भारत आया तथा उसी के प्रभाव से इनका मन बौद्ध धर्म की ओर झुका, पर हिन्दू-धर्म पर भी श्रद्धा रही। इनके कुलदेव सूर्य थे। वे प्रकाण्ड विद्वान् और कवि तो थे ही, विद्वानों और कवियों के आश्रयदाता भी थे। बाण, मयूर, मातंग, दिवाकर तथा धावक इनके सभापण्डित थे। बाण, जयदेव, सोढल आदि कवियों ने इनके काव्य-नैपुण्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। ये बड़े दानी और धर्मात्मा थे। वे हर पाँचवें वर्ष प्रयाग में गंगा-जमुना के संगम पर जाकर एक महोत्सव करके अपना सर्वस्वदान कर दिया करते थे।

नागानन्द पाँच अंकों का नाटक है। नागानन्द में आदर्श पितृ-प्रेम तथा परोपकारार्थ आत्म-बलिदान की उदात्त भावना का प्रतिपादन है, शृंगार रस गौण है। नागानन्द में शुद्ध सात्विक मनोवृत्ति है। नागानन्द की मूल-कथा गुणाढ्य की बृहत्कथा में थी। श्रीहर्ष ने व्यंग्य रूप से उसमें अपने व्यक्तिगत जीवन को अंकित किया है।

कथासार

विद्याधरों के सम्राट् जीमूतकेतु वृद्धावस्था में राज्यभार अपने पुत्र जीमूतवाहन को सौंप वानप्रस्थ हो गये। परन्तु जीमूतवाहन मन्त्रियों पर राज्य का भार सौंप माता-पिता की सेवा में वन में रहने लगा। कुछ दिन बाद अपने पिता की आज्ञा से उन्होंने मलयगिरि पर आश्रम बनाया। वहाँ सिद्धों के राजा विश्वावसु रहते थे। उनकी पुत्री मलया-वती से उनका साक्षात् गौरी के मन्दिर में हुआ और बाद में मलयावती

के भाई मित्रावसु मलयावती के साथ जीमूतवाहन के विवाह का प्रस्ताव लेकर आये और अन्त में दोनों के पिता की स्वीकृति से मलयावती का विवाह जीमूतवाहन से हो गया।

अभी विवाह के मंगलकृत्य समाप्त ही नहीं हुए थे कि मित्रावसु ने उन्हें सूचित किया कि उनके शत्रु मातंग ने उनके राज्य पर आक्रमण किया है। अतः उसने सिद्धों से सेना लेकर शत्रु के विनाश करने की आज्ञा माँगी ; परन्तु जीमूतवाहन ने मित्रावसु को समझा-बुझाकर शान्ति और अहिंसा का मार्ग अपनाने का परामर्श दिया।

एक दिन जीमूतवाहन और मित्रावसु समुद्र-तट पर ज्वारभाटा देखने गये। वहाँ उन्हें समुद्र-तीर पर हड्डियों का बड़ा ढेर दीख पड़ा। पूछने पर मित्रावसु ने बताया कि गरुड़ यहाँ आकर प्रतिदिन एक-एक नाग को खाता है। ये उन नागों ही की हड्डियाँ हैं। यह सुन कर जीमूतवाहन को दुःख हुआ। इतने ही में किसी आवश्यक काम से बुलावा आने पर मित्रावसु तो वापस चले गये। जीमूतवाहन वापस आ ही रहे थे कि सहसा उनके कान में किसी स्त्री के रोने की आवाज सुनाई दी। वे आगे बढ़े, तो क्या देखते हैं कि शंखचूड़ नाम का नाग लाल वस्त्र पहिने गरुड़ की बलि बनने को आ रहा है और उस नाग की वृद्धा माता छाती पीट-पीट कर रो रही है। जीमूतवाहन को बड़ी दया आई और उसने शंखचूड़ के स्थान पर स्वयं अपनी बलि देने का निश्चय किया। परन्तु शंखचूड़ ऊँचे चरित्र का युवक था ; उसने अपने लिए दूसरे का बलिदान स्वीकार नहीं किया। इससे जीमूतवाहन को बहुत दुःख हुआ। इतने में शंखचूड़ गरुड़ के आने में कुछ देरी समझ पास में स्थित दक्षिण गोकर्ण महादेव के दर्शनार्थ चला गया। संयोगवश इसी समय जीमूत-वाहन के ससुराल से विवाह की प्रथानुसार दस दिन तक पहने जाने वाले लाल वस्त्रों का जोड़ा लेकर प्रतीहार आया। जीमूतवाहन उस लाल वस्त्र को पहन कर वध्यशिला पर जा बैठे। गरुड़ आया और

झपट्टा मारकर उन्हें उठाकर मलयपर्वत के शिखर पर ले जाकर खाने लगा।

जब बहुत देर हो जाने पर भी जीमूतवाहन नहीं लौटे, तो माता-पिता को चिन्ता हुई। ससुराल से पता लगा कि वहाँ भी नहीं हैं। इतने में खून में लथपथ जीमूतवाहन के सिर की चूड़ामणि वृद्ध पिता के पैरों में आकर गिरी। यह देख सभी शोकार्त हो गये। इसी समय शंखचूड़ रोता हुआ आया और उसने कहा कि कोई विद्याधर उसके स्थान में गरुड़ की बलि बन गया है। इस पर जीमूतवाहन के माता-पिता और मलयावती का हाहाकार करते हुए अग्नि-प्रवेश करने को तैयार हो गये। परन्तु शंखचूड़ के समझाने से उन्होंने गरुड़ का पता लगाने की ठानी कि कदाचित् गरुड़ ने यह जानकर कि यह नाग नहीं है, उसे न खाया हो। वे सब ढूँढ़ते-ढूँढ़ते गरुड़ वाले पर्वत-शिखर पर पहुँचे।

गरुड़ उस बलि-जीव को पाकर आश्चर्य-चकित था कि यह कौन है, जो बुरी तरह नोचकर खाये जाने पर भी प्रसन्न मुद्रा में है। सहसा शंखचूड़ ने वहाँ पहुँचकर कहा—गरुड़देव, तुम्हारा बलि नाग तो मैं हूँ, यह तो तुम विद्याधर युवराज जीमूतवाहन को खा रहे हो। यह क्या अनर्थ कर रहे हो? गरुड़ को बड़ा पश्चात्ताप हुआ कि उनके द्वारा एक बोधिसत्व मारा गया। अभी जीमूतवाहन जीवित थे। उन्होंने माता-पिता को प्रणाम किया। गरुड़ ने बड़ा पश्चात्ताप किया। वे आत्मघात तक करने को तैयार हो गये, पर जीमूतवाहन के कहने से सदा के लिए जीव-हिंसा त्याग दी। उसी समय जीमूतवाहन के प्राण निकल गये।

गरुड़ स्वर्ग से अमृत लाने को उड़ गये। इसी बीच मलयावती की प्रार्थना पर गौरी ने प्रकट होकर जीमूतवाहन को पुनः जीवित कर दिया। इसी समय आकाश से गरुड़ ने भी अमृतवृष्टि की, जिससे मरे हुए सब नाग जी उठे।

गौरी के आशीर्वाद से जीमूतवाहन विद्याधरों के चक्रवर्ती

सम्राट् बने ।

नागानन्द की मूल कथा गुणाढ्यकृत पैशाची प्राकृत ग्रन्थ बृहत्कथा में थी, जिसमें नाटक के निर्माता ने थोड़ा परिवर्तन कर दिया है। संस्कृत-साहित्य में नागानन्द नाटक का उच्च स्थान है। उसका विषय भी निराला है। नागानन्द वीर रस का नाटक है। यह एक दयावीर का आदर्श उपस्थित करना है, परन्तु कला की दृष्टि से यह सफल नाटक नहीं है ।

पात्र-सूची

पुरुष-पात्र—

जीमूतवाहन	विद्याधरों का युवराज
जीमूतकेतु	जीमूतवाहन का पिता
आत्रेय	जीमूतवाहन का मित्र, विदूषक
मित्रावसु	मलयावती का भाई
शंखचूड़	एक नाग
वैताल	एक भाट
प्रतिहार	द्वारपाल
कंचुकी	रनिवास का सेवक, वसुभद्र
दास	जीमूतवाहन का भृत्य
गरुड़	पक्षिराज

स्त्री-पात्र—

मलयावती	जीमूतवाहन की पत्नी
दासी	जीमूतवाहन की भृत्या
वृद्धा	शंखचूड़ नाग की माता
गौरी	भगवती पार्वती

नागानन्द

पहला दृश्य

(मलय पर्वत पर जीमूतवाहन और विदूषक आत्रेय आते हैं।)

जीमूतवाहन—बहुत दिन तक निरन्तर उपभोग करने के कारण तपोवन में फल-मूल, कन्द, समिधा और धन-धान्य की कमी हो गई थी। इससे पिता जी की आज्ञा से हमने यहाँ मलयपर्वत पर अपना आश्रम बनाया है। यह सिद्धों की भूमि है। देखो, चन्दन के समान वृक्षों से यह पर्वत कैसा सुशोभित है! स्वच्छ शीतल जल के झरने झर रहे हैं। शीतल, मन्द समीर बह रही है।

(मित्रावसु आता है।)

मित्रावसु—पिता की आज्ञा है कि कुमार जीमूतवाहन योग्य वर है, इससे उसका मलयावती से पाणिग्रहण कर दो। परन्तु मैं दुविधा में हूँ। न जाने, वह विद्याधर राजवंशतिलक कैसे स्वभाव का होगा।

आत्रेय—मित्र, यह तो सिद्ध युवराज मित्रावसु इधर ही आ रहे हैं।

मित्रावसु—कुमार, मैं मित्रावसु प्रणाम करता हूँ।

जीमूतवाहन—स्वागत मित्रावसु, आओ बैठो। सिद्धराज विश्वावसु प्रसन्न तो हैं?

मित्रावसु—कुशल से हैं। उन्हीं का संदेश लेकर मैं आपके पास आया हूँ।

जीमूतवाहन—सिद्धराज की क्या आज्ञा है?

मित्रावसु—कुमार, हमारी प्राणाधिक प्रिय बहिन मलयावती है। उसे मैं पिता की आज्ञा से आपको देता हूँ। ग्रहण कीजिए।

जीमूतवाहन—मित्र, मैं तो असमंजस में पड़ गया। आपके प्रशंसनीय कुल में सम्बन्ध होने की किसे कामना न होगी ? परन्तु मैं स्वीकार नहीं कर सकता।

आत्रेय—अजी, ये विना पिता की आज्ञा के स्वीकार नहीं कर सकते। आप उन्हीं से कहिए।

मित्रावसु—यह तो उचित ही है। मैं उनकी सेवा में जाकर निवेदन करता हूँ। (जाता है।)

दूसरा दृश्य

(विदूषक आत्रेय आता है।)

आत्रेय—(स्वगत) सिद्धराजपुत्री मलयावती और जीमूतवाहन का विवाह सम्पन्न हो गया। सबके मनोरथ पूर्ण हुए। इस ब्राह्मण का भी भोजन से अच्छा सत्कार हुआ।

(वैताल आता है।)

वैताल—लोगों पर कुंकुम अवीर बखेरा जा रहा है, जिससे वे लाल बन गये हैं। स्त्रियाँ गहनों से सजी मंगल गीत गा रही हैं। इधर से उधर जाती हुई सुन्दरियों के नूपुर शब्दों से यह सिद्धलोक गूँज रहा है। मौज ही मौज है। वह देखो, विट मदिरापान से मस्त और विह्वल हो मद्यभाण्ड कन्धे पर धरे झूमता हुआ जा रहा है। विवाह का मंगल-कृत्य समाप्त हो गया। इस विवाह-महोत्सव में आये हुए सब सिद्ध विद्याधर अपनी-अपनी प्रियतमाओं के साथ कुसुमाकर उद्यान में पान-गोष्ठी कर रहे हैं।

आत्रेय—(देखकर) यही कुसुमाकरोद्यान है। वहीं चलूँ। मलयावती के वन्धु-जनों ने मुझे दामाद का मित्र जानकर आदर से जो मुझे

नाना प्रकार से पोत कर कल्प-वृक्ष के फूलों का हार पहना दिया है। यही अनर्थ बन गया। इसी से ये दासी-पुत्र भौंरे मुझे तंग कर रहे हैं।

(दासी आती है।)

दासी—अरी नवमालिके, कुसुमाकर की उद्यान-पालिका पल्लविका से कह—आज अच्छी तरह तमाल-वीथी को सजा दे। मलयावती सहित जामाता उधर ही जा रहे हैं।

(जीमूतवाहन मलयावती सहित आते हैं।)

जीमूतवाहन—जब मैं इसे देखता हूँ, तो यह आँख नीची कर लेती है; बात का उत्तर नहीं देती है। आलिंगन से काँपती है। सखियों के चले जाने पर उन्हीं के साथ जाना चाहती है। नवोढ़ा प्रिया का यह वामाचरण भी मुझे कितना प्रिय लग रहा है। (दासी से) अरी चतुरिके, कुसुमाकर उद्यान का मार्ग बता।

चतुरिका—स्वामी, इधर से आइए।

जीमूतवाहन—अहा, इस कुसुमाकर उद्यान की शोभा तो अपूर्व है। चन्दन के वृक्षों से बहता हुआ रस लता-मण्डपों को कितना शीतल बना रहा है। नीलकण्ठ, मयूर धारा-गृहों के जल-प्रपात का शब्द सुनकर कूक रहे हैं। जलयन्त्रों से निकला हुआ जल फूलों की धूल से पीला होकर वृक्षों के थाँवलों को भरता हुआ तेजी से बह रहा है।

आत्रेय—(आगे बढ़कर) आपकी जय हो।

जीमूतवाहन—मित्र, कहाँ रहे?

आत्रेय—अजी, विवाह-महोत्सव में एकत्रित सिद्ध विद्याधरों के मदिरापान को देखने के कौतुक से इधर-उधर घूमता रहा। (देखकर) यही तमालवीथी है। आओ, यहीं स्फटिक-शिला पर बैठें।

(सब बैठते हैं।)

(दासी आती है।)

दासी—आपकी जय हो, आर्य मित्रावसु किसी कार्यवश आपसे

मिलने आ रहे हैं।

जीमूतवाहन—तो प्रिये, तुम अन्तःपुर में जाओ। मैं भी प्रिय मित्रावसु से पूछूं कि वह किस आवश्यक कार्य से आये हैं।

(मलयावती दासियों सहित जाती है।)

(मित्रावसु आते हैं।)

मित्रावसु—कुमार जीमूतवाहन, तुम्हारे शत्रु मातंग ने तुम्हारे राज्य पर आक्रमण किया है। पर तुम्हें इस समय युद्ध में जाने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारी आज्ञा होने पर सिद्धगण आकाशगामी विमानों पर चढ़कर अभी ससैन्य मातंग को मार डालेंगे। वे तुम्हारे राज्य और तुम्हारे अधीन राजाओं की भी रक्षा करेंगे। मैं सिद्धजनों के साथ जाता हूँ।

जीमूतवाहन—कुमार मित्रावसु, तुम वीर हो और मातंग के मारने में समर्थ हो। परन्तु मैं ऐसी निष्ठुर हत्या की आज्ञा नहीं दे सकता। इस संसार में मेरा कोई शत्रु नहीं है। मैं राज्य के लिए रक्तपात करना नहीं चाहता। मातंग राज्य चाहता है, तो ले ले।

मित्रावसु—(क्रोध से) नहीं, मैं उस पर दया नहीं करूंगा।

जीमूतवाहन—देखो मित्र, ये सूर्यदेव पर-हित के लिए उदय होते और अस्त होते हैं। इसीसे सिद्धगण उनकी स्तुति करते हैं, तुम भी सिद्ध हो; इसलिए परपीड़न और परहिंसा त्याग दो।

तीसरा दृश्य

(मलयपर्वत के नीचे महासमुद्रतट पर मित्रावसु और जीमूतवाहन टहल रहे हैं।)

जीमूतवाहन—अहा, इस मलय पर्वत की सफेद बादलों से आवृत हिमालय जैसी शोभा है।

मित्रावसु—कुमार, वह पर्वत नहीं, मरे हुए नागों की हड्डियां हैं।

जीमूतवाहन—इतने नाग कैसे मरे ?

मित्रावसु—यहां गरुड़ नित्य एक नाग खाता है। उन्हींकी हड्डियां एकत्र हो गई हैं।

जीमूतवाहन—ओह, कैसी निष्ठुरता है !

मित्रावसु—पहले गरुड़ एक नाग खाता था, पर उसके लिए समुद्र में ऐसी उथल-पुथल मचती थी कि बहुत नाग मारे जाते थे। इससे नागराज वासुकी ने यह व्यवस्था कर दी कि ठीक समय पर एक नाग भेज देते हैं।

जीमूतवाहन—क्या मैं अपना शरीर देकर एक नाग की रक्षा नहीं कर सकता ?

(प्रतीहार आता है।)

प्रतीहार—(मित्रावसु से) आर्य, महाराज आपको बुला रहे हैं।

जीमूतवाहन—कुमार, तुम जाओ, मैं ठहर कर आऊँगा।

(मित्रावसु जाता है।)

(कंचुकी आता है।)

कंचुकी—आर्य वसुभद्र ने कहा था कि जामाता समुद्र-तट पर वायु-सेवनार्थ गये हैं। (देखकर) वह सामने जामाता बैठे हैं। (आगे बढ़कर) आपकी जय हो। सिद्धों की माता ने आपके लिए यह मांगलिक लाल जोड़ा भेजा है। आपको और पुत्री मलयावती को दस रात्रि-पर्यन्त यही लाल वस्त्र पहनना होगा।

जीमूतवाहन—(वस्त्र लेकर) जैसी माता की आज्ञा।

(कंचुकी जाता है। सहसा रोने की आवाज सुनकर जीमूतवाहन उस ओर जाकर देखते हैं कि एक नाग चला आ रहा है। और एक दास दो लाल वस्त्र लिये उसके साथ चल रहा है। उसके पीछे नाग की वृद्धा माता रोती आ रही है।)

वृद्धा—(रोते-रोते) शंखचूड़, मेरे पुत्र, निष्ठुर गरुड़ तेरा कोमल शरीर नोच-नोच कर खायगा। मैं अपनी आंखों से यह कैसे देखूंगी ?

शंखचूड़—माता, रोने-धोने से क्या होगा ? मरना तो एक दिन सभी को है।

दास—अजी शंखचूड़, तुम आओ। ये तो पुत्रशोक से पागल हो रही हैं। वध का चिन्ह यह लाल वस्त्र पहन लो और इस वध्य-शिला पर बैठ कर गरुड़ की प्रतीक्षा करो।

(लाल वस्त्र शंखचूड़ को देकर जाता है। शंखचूड़ की माता पछाड़ खाकर रोती है।)

जीमूतवाहन—(स्वगत) हाय, वासुकी द्वारा परित्यक्त यही हत-भाग्य है।

शंखचूड़—(माता को उठा कर) माता, उठो मन स्थिर करो और मुझे विदा करो।

वृद्धा—(रोते-रोते) हाय, जब नाग-कुल के रक्षक वासुकी ने ही तुझे त्याग दिया तो, अब कौन तेरी रक्षा करेगा ?

जीमूतवाहन—(आगे आकर) मैं रक्षा करूंगा।

वृद्धा —(जीमूतवाहन को गरुड़ समझ कर) हे गरुड़, तुम्हारे भोजन के लिए नागराज ने मुझे भेजा है। मुझे खालो।

शंखचूड़—मां, ये सौम्य महापुरुष गरुड़ नहीं हैं।

जीमूतवाहन—माता, मैं तुम्हारे पुत्र की रक्षा करूंगा।

वृद्धा—(जीमूतवाहन के सिर पर हाथ रखकर) पुत्र, चिरंजीवी हो।

जीमूतवाहन—माता, यह वध का चिन्ह लाल वस्त्र मुझे दे दो। मैं इससे शरीर ढककर वध्य-शिला पर बैठूंगा। गरुड़ मुझे ही नाग समझ कर खायेंगे।

वृद्धा—(दोनों हाथों से कान ढक कर) अरे पुत्र, ऐसा अधर्म भी कभी हो सकता है, तुम भी मेरे पुत्र हो। भला, तुम मेरे अभागे परित्यक्त पुत्र की रक्षा अपने प्राण देकर करोगे।

शंखचूड़—यह तो असाधारण महत्ता है। महोदय, आपने तो आत्म-

दान का आदर्श उपस्थित कर दिया, कि आप यह संकल्प त्याग दें। मुझे ही मरने दें।

जीमूतवाहन—शंखचूड़, आत्मदान के अवसर से मुझे वंचित मत करो। अपनी शोक-विह्वल माता की ओर तो देखो। लाओ, वध-चिन्ह मुझे दो।

शंखचूड़—आर्य, मैं ऐसा महापाप करके अपने पितृकुल को कलंकित नहीं कर सकता। (माता से) मां, अब गरुड़ के आने का समय हो गया है। (पैरों पर गिर कर) अब तुम जाओ। मैं भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि जन्म-जन्म में तुम्हारी ही कोख में जन्म लूँ।

वृद्धा—पुत्र, तुझे छोड़ कर मेरे पैर नहीं उठते। मैं भी तेरे ही साथ जाऊँगी।

(वहीं बैठ जाती है।)

शंखचूड़—(उठकर) चलो मां, एक बार भगवान् दक्षिण गोकर्ण की प्रदक्षिणा कर आयें।

जीमूतवाहन—यदि इसी समय गरुड़ आ जाय, तो अच्छा। परन्तु वध-चिन्ह लाल वस्त्र कहाँ पाऊँ। (याद करके) अहा, खूब याद आया। सिद्धों की रानी ने यह मांगलिक लाल जोड़ा भेजा है। इसे ही लपेट लूँ। आज मलयावती का पाणिग्रहण सफल हुआ। अपने शरीर-दान से मैंने एक नाग को बचा लिया। बड़ा पुण्य लाभ हुआ। कामना करता हूँ, जन्म-जन्म में मुझे ऐसे ही अवसर मिलें।

(लाल मांगलिक वस्त्र लपेट कर वध्य-शिला पर बैठता है। गरुड़ आता है और बिजली की भाँति झपट कर जीमूतवाहन को लेकर मलयपर्वत की ऊँची चोटी पर जा बैठता है।)

चौथा दृश्य

जीमूतकेतु—यौवन में राज-वैभव भोगा, यज्ञ-याग व्रत भी किये। मेरा पुत्र प्रशंसा के योग्य है और पुत्रवधू भी अनुरूप वंश की मिली।

अब तो बस सब भाँति कृतार्थ हो मैं मृत्यु की कामना करता हूँ।

(प्रतिहार आता है।)

प्रतिहार—जीमूतवाहन की कुशल पूछने महाराज ने मुझे भेजा है। वे समुद्र-तीर से अभी नहीं लौटे ? वहाँ इस समय गरुड़ आते हैं उनका भय है।

जीमूतकेतु—(शंका से) नहीं, यहाँ तो नहीं आये। क्या वहाँ भी नहीं पहुँचे ?

मलयावती—मेरा हृदय धड़कने लगा।

जीमूतकेतु—भगवान् शिव उसका मंगल करें।

(सहसा चूड़ामणि आकाश से गिरता है।)

—अरे, यह रक्त-मांस से लथपथ चूड़ामणि किसका गिरा ?

(वृद्धा रोती है।)

प्रतिहार—आप घबराइये मत। यह गरुड़ के भोजन का समय है। यह उनके नाखून से नोची गई किसी नाग की चूड़ामणि गिरी होगी।

(शंखचूड़ रोता हुआ आता है।)

शंखचूड़—हाय, हाय, अनर्थ हो गया।

जीमूतकेतु—भद्र, तुम कौन हो और तुम्हारे विलाप का क्या कारण है ?

शंखचूड़—आर्य, मैं शंखचूड़ नाग हूँ। आज गरुड़ के आहार की मेरी वारी थी। परन्तु महात्मा जीमूतवाहन ने मेरे प्राण बचाने को अपना शरीर गरुड़ को दे दिया। मैं धूल में खून के दाग देखता हुआ जाता हूँ।

सब—हा, हा। हा, हा।

शंखचूड़—आर्य, आप ही कदाचित् उस महासत्व के माता पिता हैं। मुझ भाग्यहीन के कारण ही आपको यह दुःख हुआ।

वृद्धा—अब हम भी पुत्र के विना जीवित न रहेंगे।

मलयावती—(रोती हुई) माता, यह चूड़ामणि मुझे दो। मैं इसे गोद में रख कर अग्नि-प्रवेश करूँगी।

जीमूतकेतु—अरी पतिव्रते, हम सभी अग्नि-प्रवेश करेंगे।

शंखचूड़—(स्वगत) हा, कष्ट, एक मेरे ही लिए विद्याधरों का सारा घर नष्ट हुआ। (प्रकट) आर्य, ऐसा दुःसाहस मत कीजिए। कदाचित् यह देखकर कि यह नाग नहीं है, गरुड़ ने उन्हें न खाया हो। चलिए वहीं चलें।

वृद्धा—देवताओं की कृपा से मैं जीवित पुत्र का मुँह देखूँ!

मलयावती—मुझ मन्द-भाग्या को क्या आशा है?

जीमूतकेतु—पुत्र, तेरा वचन फले। अन्त में तो हमें अग्नि की शरण लेना ही है। पर चलो, पहले वहीं चलें। जल्दी करो।

शंखचूड़—जल्दी करो, जल्दी करो। (आगे भाग जाता है।)

पांचवां दृश्य

(मलयपर्वत की चोटी पर जीमूतवाहन के तुचे-खुचे शरीर के सामने गरुड़ बैठे हैं।)

गरुड़—आश्चर्य है। मैंने कितने नाग खा डाले; परन्तु ऐसा तो कभी नहीं हुआ। मैं इसका मांस नोच-नोच कर खा रहा हूँ; पर इसे कष्ट नहीं होता। उल्टे यह हर्षित है।

जीमूतवाहन—गरुड़, खाओ, और खाओ। तृप्त होकर खाओ। अभी मेरे शरीर में मांस है।

गरुड़—महासत्व, तुम कौन हो। मैंने तुम्हारे हृदय का रक्त निकाल लिया, पर अपने धैर्य से तुम मेरे हृदय का रक्त खींच रहे हो।

जीमूतवाहन—अभी तुम भूखे हो। पहले तृप्त होकर खा लो, तब परिचय सुनना।

(दौड़ता हुआ शंखचूड़ आता है।)

शंखचूड़—गरुड़, अब साहस न करो। यह नाग नहीं है। इसे छोड़

दो, मुझे भक्षण करो। वासुकी ने मुझे ही तुम्हारे भोजन के लिए भेजा था। (छाती खोल देता है।)

गरुड़—तो यह कौन है ?

शंखचूड़—यह तो विद्याधरकुमार जीमूतवाहन हैं। तुमने अनर्थ कर डाला।

गरुड़—यह तो बड़ा अनर्थ हो गया। इस महात्मा ने नाग की प्राण-रक्षा के निमित्त अपनी देह मुझे खिला दी। मैंने बोधिसत्व को मार कर बुरा किया। इस पाप के लिए मैं अग्नि-प्रवेश करूँगा। (इधर उधर देखकर) वे अग्नि के लिए कोई इधर ही आ रहे हैं। मैं उनकी प्रतीक्षा करूँगा।

(जीमूतकेतु, उनकी पत्नी और मलयावती हैं, रोते-पीटते अग्नि लिये आते हैं।)

शंखचूड़—कुमार, तुम्हारे माता-पिता आ रहे हैं।

जीमूतवाहन—तो शंखचूड़, तुम मेरे क्षत-विक्षत शरीर को उत्तरीय से ढक दो। वे मुझे इस दशा में देखेंगे, तो प्राण तज देंगे।

(शंखचूड़ उसका शरीर ढकता है।)

जीमूतकेतु—हा, पुत्र ! हा हा, पुत्र !

वृद्धा—अरे पुत्र, क्षण भर ठहर। (रोती हुई पछाड़ खाकर गिरती है।)

गरुड़—यही इसके माता-पिता हैं। इन्हें कैसे मुँह दिखाऊँ ? अग्नि की प्रतीक्षा क्यों करूँ ? सामने समुद्र है, इसी में डूब मरूँ। (उठता है।)

जीमूतवाहन—अजी गरुड़, यह इस दोष का प्रतीकार नहीं है।

गरुड़—(हाथ जोड़कर) तो महात्मा, तुम्हीं कहो, क्या करूँ ?

जीमूतकेतु—(हर्ष से) देवी, हमारा पुत्र अभी जीवित है।

वृद्धा—मैं कृतार्थ हुई।

जीमूतकेतु—पुत्र, आओ, मुझे आलिंगन करो।

(जीमूतवाहन उठना चाहता है, पर गिर कर मूर्छित हो जाता है। उत्तरीय गिर जाने से उसकी आधी खाई हुई देह उघड़ जाती है।)

शंखचूड़—कुमार, सावधान हो, सावधान हो।

जीमूतकेतु—अरे पुत्र, मुझे देख कर भी चल दिये ?

वृद्धा—अरे पुत्र ! एक बार बोलो तो।

मलयावती—आर्यपुत्र, तुम तो गुरुजनों को भी नहीं देखते।

(सब मूर्छित हो जाते हैं।)

शंखचूड़—हाय, मैं गर्भ ही में क्यों न नष्ट हो गया।

गरुड़—(पंखों से हवा करके) महात्मा, सावधान हो, सावधान हो।

जीमूतवाहन—(सचेत होकर) शंखचूड़, गुरुजनों को धैर्य बँधाओ।

शंखचूड़—तात, धीरज धरिए। देखिए, जीमूतवाहन होश में आ गये हैं।

(दोनों होश में आते हैं।)

वृद्धा—पुत्र, हमारे देखते ही तुम्हें कृतान्त डस लेगा ?

जीमूतकेतु—देवी, ऐसी अमंगल-वार्ता मत कहो। बहू को सम्हालो।

वृद्धा—मलयावति, सम्हलो।

मलयावती—हा, आर्यपुत्र ! मैं पापिनी, तुम्हें इस अवस्था में देखकर भी जीवित हूँ।

वृद्धा—हाय, मेरे पुत्र के दिव्य शरीर की यह दुर्दशा हो गई।

जीमूतवाहन—माता केवल परमार्थ के लिए।

गरुड़—महात्मन् ! मैं नरक-यन्त्रणा से जला जा रहा हूँ। कहो, मेरे लिए कौन-सा पातक है ? कैसे इस पातक से मेरा उद्धार होगा ?

जीमूतवाहन—तो गरुड़, तुम जीव-हिंसा छोड़ दो और अन्तस्ताप द्वारा हिंसा से पहले किये हुए पापों का नाश करो। सब जीवों को अभय दो।

गरुड़—(रोकर) अवश्य करूँगा। आज शपथ करता हूँ कि किसी जीव को न मारूँगा।

जीमूतवाहन—साधु महासत्व, साधु ! मैं कृतार्थ हुआ (शंखचूड़ से) शंखचूड़, तुम भी अब अपने घर जाओ। (कष्ट से कराह कर) हाँ, परार्थ देहदान के इस आनन्द में इस मर्म-छेदी वेदना ने बाधा डाल दी।

(मरणावस्था प्रकट होती है।)

जीमूतकेतु—हा पुत्र, यह क्या ?

वृद्धा—(छाती पीटकर) अरे, कोई बचाओ, बचाओ। मेरा पुत्र मर रहा है।

मलयावती—आर्यपुत्र, मुझे छोड़ चले।

जीमूतकेतु—(हाथ जोड़ने की इच्छा से) शंखचूड़ मेरे हाथों को मिला दो।

शंखचूड़—हाय कष्ट, पृथ्वी अनाथ हो रही है।

जीमूतवाहन—(आधी आँखें खोलकर) तात, यह मेरा···अन्तिम···प्र···णा···

(मर जाता है।)

वृद्धा—हा पुत्र, हा वत्स ! तनिक तो बोलो।

जीमूतकेतु—हे गुण-निधान, क्या चले गये।

मलयावती—धिक्कार है, मैं यह देखने को जीवित हूँ !

शंखचूड़—हाय, कुमार, यह शंखचूड़ भी तुम्हारा अनुगमन करेगा।

गरुड़—हाय रे कष्ट ! यह महात्मा मर गया। अब मैं क्या करूँ ?

वृद्धा—अरे लोकपालो, अमृत देकर मेरे पुत्र को जीवन दान दो।

गरुड़—(हर्ष से) अहा, अमृत की खूब याद दिलाई। मैं देवपति इन्द्र से अमृत लाकर अभी जीमूतवाहन को जीवित करता हूँ।

(पंख फैलाकर उड़ जाता है।)

जीमूतकेतु—वत्स शंखचूड़, अब क्या देख रहे हो। चिता रचो, हम भी पुत्र के साथ अग्नि-प्रवेश करें।

(शंखचूड़ चिता रचता है।)

जीमूतकेतु—हाय, कष्ट, अरे पुत्र, तुम्हारे तो चक्रवर्ती के लक्षण थे; फिर कैसे चल बसे ? (चिता देखकर) देवी, अब विलाप से क्या, चलो चितारोहण करें।

(सब उठकर चिता के निकट जाते हैं।)

मलयावती—देवी गौरी, तुमने तो वर दिया था कि विद्याधर चक्रवर्ती पति मिलेगा—सो तुम भी झूठी हो गई। हा !

(चिता की ओर जाती है।)

(अकस्मात् देवी गौरी प्रकट होती हैं।)

गौरी—साहस मत करो। साहस मत करो। (कमण्डल से जल लेकर जीमूतवाहन पर छिड़कती हुई) अपने प्राणदान से जगत् के उपकार करने वाले जीमूतवाहन ! उठो, उठो।

(जीमूतवाहन जीवित होकर उठता है।)

जीमूतकेतु—(हर्षित होकर) अरे, देवी की कृपा से मरा पुत्र जी उठा। (ऊपर देखकर) अरे, यह विना बादलों के वर्षा कैसी ? देवी भगवति, यह क्या ?

गौरी—राजन्, पश्चात्ताप के कारण गरुड़ देव-लोक से अमृत लाकर मरे हुए नागों की अस्थियों पर अमृत-वर्षा कर रहे हैं। देखो, ये नाग, देह को ज्यों का त्यों प्राप्त करके फणों की मणियों को चमकाते हुए, और अमृत को जीभ से चाटते हुए मलयाचल की नदी के प्रवाह की भाँति वेग से टेढ़े-मेढ़े मार्ग से चलकर अब समुद्र में प्रवेश कर रहे हैं।

जीमूतवाहन—(घुटने टेककर) यह शंखचूड़ गरुड़ के भय से वच

गया। गरुड़ ने जीव-हिंसा त्याग दी। मेरे माता-पिता ने प्राण नहीं त्यागे। सब नाग पुनरुज्जीवित हो गये। चक्रवर्ती राज्य मिल गया और आपके साक्षात् दर्शन हो गये। अब और प्रिय क्या है, जो अब माँगूं? बस, सचराचर जगत् का कल्याण हो। प्राणी परोपकार-रत हों, सब सुखी हों।

भट्ट नारायण

(सातवीं शताब्दी)

वेणीसंहार

(वीर रस का अद्वितीय रूपक)

जीवन-परिचय

भट्ट नारायण का वंश, कुल, गोत्र आदि का ठीक-ठीक पता नहीं चलता। उनका एकमात्र यही नाटक 'वेणीसंहार' मिलता है, जो वीर रस का अद्वितीय नाटक है। इसी नाटक के प्रथम अंक में एक विशेषण उन्होंने अपने लिए दिया है—'मृगराज लक्ष्मणः' इसका अर्थ है—'सिंह जिसका उपनाम है'। दाक्षिणात्यों में 'सिंह' उपनाम वाले भट्ट नहीं मिलते। इससे यह तो निश्चित है कि वह दाक्षिणात्य नहीं हैं। कुछ लोग उन्हें पांचरात्र मतावलम्बी बताते हैं। परन्तु इसका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है। वेणीसंहार में अवश्य कुछ ऐसे वाक्य हैं—जिनके आधार पर उन्हें अद्वैतवादी वेदान्ती कहा जा सकता है। इनके समय का सूत्र हमें केवल वामनाचार्य की काव्यालंकार सूत्रवृत्ति में मिलता है। जहाँ वेणीसंहार के अनेक पदों का उद्धरण है। इससे हम केवल इतना ही जान सकते हैं कि वह वामन के पूर्ववर्ती कवि हैं। वामनाचार्य का काल ईसा की सातवीं शताब्दी है। इसलिए यह अनुमान होता है कि भट्ट नारायण छठी शताब्दी या इससे कुछ पूर्व थे।

वेणीसंहार नाटक में पाण्डवों के अज्ञात वनवास के बाद से लेकर युधिष्ठिर के राजतिलक तक की कथा है। यह वीररस-प्रधान नाटक है और रस गौण हैं। दूसरे अंक में शृंगार, तीसरे में करुण,

वीभत्स और रौद्ररस है। चौथे में भयानक, और छठे में अद्भुत रस का व्यक्तीकरण है।

कथासार

वारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास में रहकर पाण्डवों ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर दी। न्यायतः अव दुर्योधन को उनका राज्य लौटा देना चाहिए था, पर दुर्योधन ने ऐसा नहीं किया। कृष्ण सन्धि के दूत वनकर उसकी सभा में गये और केवल पाँच गांव मांगे; परन्तु दुर्योधन ने कहा—विना युद्ध के सुई की नोक के वरावर भी पृथ्वी नहीं दूँगा। उसने कृष्ण का अपमान भी किया। युधिष्ठिर सन्धि कर रहे हैं, यह सुनकर भीम को वड़ा क्रोध आया। दुर्योधन के अत्याचार रह रह कर उसके हृदय को वेध रहे थे। सहदेव के शान्त करने पर भी उसकी क्रोधाग्नि शान्त नहीं हुई। वह कहने लगा कि मैं इस सन्धि को जरासन्ध की छाती की तरह विदीर्ण कर डालूंगा। द्रौपदी ने भी कहा कि मेरे केश खींचने की वात मत भूल जाना। भीम ने कहा—मैं दुःशासन के हृदय को चीर कर उसके रक्त से सने हाथों से तेरी वेणी वाधूंगा।

अन्ततः सन्धि नहीं हुई और महाभारत संग्राम छिड़ गया। दोनों पक्षों के धुरीण वीर वीरगति को प्राप्त होने लगे। भीष्म के निधन पर द्रोण सेनापति हुए और उन्होंने ऐसा व्यूह रचा जिसमें कोई प्रवेश नहीं कर सकता था। पर अभिमन्यु उसमें प्रवेश कर गया और जयद्रथ आदि महारथियों ने उसे घेर कर मार डाला। अभिमन्यु का वध सुनकर दुर्योधन वहुत प्रसन्न हुआ और अपनी पत्नी भानुमती के पास पहुँचा, जो स्वप्न देखने से भयभीत हो रही थी। इसी समय उसे सूचना मिली कि आँधी में उसके रथ की ध्वजा टूट गई है। और तभी जयद्रथ की माता और दुःशला ने आकर रोते हुए कहा कि अभिमन्यु के वध से क्रुद्ध अर्जुन ने प्रतिज्ञा की है कि जयद्रथ को सूर्यास्त से पहले ही

मार डालूँगा। आप रक्षा कीजिए। इस पर दुर्योधन उन्हें आश्वासन देकर युद्ध-क्षेत्र में चला गया।

परन्तु अर्जुन ने बहुत रक्षित होने पर भी जयद्रथ को मार डाला। फिर धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य का भी सिर काट लिया। इसी समय पिता के वध से क्रुद्ध अश्वत्थामा ने बहुत रोष प्रकट किया। इस समय कृपाचार्य ने दुर्योधन से कहा कि अश्वत्थामा को सेनापति बना दो। पर उसने कर्ण को सेनापति बना दिया। इस अवसर पर कर्ण को और अश्वत्थामा में कहा-सुनी भी हुई। और अश्वत्थामा क्रुद्ध हो बकता-झकता अस्त्र त्याग कर चला गया।

इधर यह कलह हो रहा था, उधर भीम ने दुःशासन को पकड़ कर उसका हृदय विदीर्ण कर उसका रक्त पान किया और गर्ज-गर्ज कर कौरवों को ललकारने लगा। इस समय दुर्योधन घायल और मूर्छित अपने रथ में पड़े थे। उन्हें सारथी रण-क्षेत्र से दूर ले गया और एक वट वृक्ष के नीचे रथ रोक दिया। मूर्छा टूटने पर दुर्योधन विलाप कर ही रहा था कि कर्ण का सेवक सुन्दरक आया और उसने कर्ण-पुत्र वृषसेन की मृत्यु की सूचना के साथ कर्ण का एक पत्र भी दिया, जो रक्त से एक वस्त्र के टुकड़े पर लिखा था—'दुःशासन के शत्रु भीम को मैं नहीं मार सका—अब आप इसका प्रतिकार या तो अपने भुजबल से कीजिए या आँसुओं से।' पत्र पढ़कर दुर्योधन बहुत क्षुब्ध हुआ। और युद्ध-क्षेत्र को जाने लगा, तभी गान्धारी और धृतराष्ट्र भी आ गये। साथ में संजय भी थे। माता पिता ने रो-रो कर बहुत समझाया कि अब भी सन्धि कर ले पर उसने न माना। उसने कहा, जब मेरे सौ भाई जीवित थे, तभी मैंने सन्धि नहीं की, तो अब सबका नाश करा कर कैसे सन्धि कर सकता हूँ ? यह आत्माभिमानी के लिए लज्जा की बात है। ये बातें हो ही रही थीं कि कर्ण का सारथी शल्य खाली रथ ले जाता दिखाई दिया। उससे जब दुर्योधन को कर्ण के मारे जाने की सूचना

मिली, तो वह मूर्छित हो गया। और स्वयं ही सेनापति बन युद्ध को चलने लगा। तभी भीम-अर्जुन रथ पर बैठ कर वहाँ आये और व्यंग्य वाक्यों से धृतराष्ट्र और गान्धारी को प्रणाम किया। इस समय भी भीम और दुर्योधन में झपट हो पड़ी। एक दूसरे दोनों को बुरा-भला कहने लगे। परन्तु तभी युधिष्ठिर ने युद्ध बन्द करने की घोषणा कर दी। और अर्जुन और भीम लौट गये।

इसी समय अश्वत्थामा ने आकर कहा—अब मैं धनुष लेकर आप की सेवा में उपस्थित हूँ। परन्तु दुर्योधन ने कटुवचन से उसका तिरस्कार कर दिया। इससे वह उठकर चला गया। धृतराष्ट्र ने अश्वत्थामा को मनाने के लिए संजय को भेजा।

उधर द्रौपदी और युधिष्ठिर चिन्तित बैठे थे। वे समझ रहे थे कि युद्ध समाप्त हो ही गया। पर भीम ने प्रतिज्ञा की कि मैं आज ही दुर्योधन को मारूंगा। यह सुनकर दुर्योधन छिप गया। इससे युधिष्ठिर को बड़ी चिन्ता हुई। परन्तु तभी पांचालक ने सूचना दी कि दुर्योधन सरोवर में छिपा हुआ मिल गया है और उसका भीमसेन से गदायुद्ध हो रहा है।

इसी समय चार्वाक नाम का एक राक्षस मुनि का वेश धारण करके आया, जो दुर्योधन का मित्र था। उसने पानी पीने के बहाने युधिष्ठिर के पास आकर कहा कि दुर्योधन ने भीम को मार डाला, और अब दुर्योधन और अर्जुन में गदायुद्ध हो रहा है। तथा अर्जुन की मृत्यु निश्चित जान कृष्ण को रथ में बैठा कर बलराम द्वारिका चले गये। यह सुनकर सब रोने-पीटने लगे, और द्रौपदी चिता में जल मरने को तैयार हो गई। युधिष्ठिर भी चिता-प्रवेश को तैयार हो गये। राक्षस ने भी उन्हें ऐसा ही करने का बढ़ावा दिया। जब युधिष्ठिर के कहने पर भी सेवकों ने चिता नहीं सजाई, तो युधिष्ठिर स्वयं ईंधन एकत्र कर चिता बनाने लगे।

यह देख अपने को कृतकार्य समझ राक्षस वहाँ से चला गया। इसी समय शंखध्वनि के साथ कोलाहल सुनाई पड़ा। कंचुकी ने आकर कहा—महाराज, रक्त में लथपथ एक दुष्ट कौरव द्रौपदी की खोज में इधर चला आ रहा है।

युधिष्ठिर समझ गये कि अर्जुन मारे गये। उस रक्तरंजित भयानक आदमी को निकट आते देख कंचुकी ने भयभीत होकर कहा—रानी, तुम झटपट अग्निप्रवेश कर अपनी प्रतिष्ठा बचाओ।

इसी समय—पांचाली कहाँ है? पांचाली कहाँ है—कहता हुआ वह व्यक्ति आ गया। वास्तव में वह भीमसेन था। जिसका रौद्र रूप देख किसी ने नहीं पहचाना था। द्रौपदी तो जल्दी-जल्दी चिता की ओर जाने लगी और युधिष्ठिर अपना धनुषबाण माँगने लगे। इसी समय भीमसेन उनके पैरों पर गिर कर जय-जयकार करने लगे।

सब की शंका जाती रही। युधिष्ठिर ने पूछा—अर्जुन कुशल से तो है। भीम ने कहा—सब शत्रुओं का संहार करके अर्जुन सकुशल है। इस पर युधिष्ठिर और द्रौपदी को अपार हर्ष हुआ। भीमसेन ने रुधिर से सने हाथों से द्रौपदी की वेणी गूंथी। कृष्णार्जुन भी आ पहुँचे। कृष्ण ने कहा—इस समय व्यास, वाल्मीकि, परशुराम आदि महर्षि धृष्टद्युम्न आदि सेनापति, नकुल सहदेव सहित मागध, मत्स्य, यादव पवित्र जल के कलश कन्धों पर धरे आपके राज्याभिषेक को तैयार हैं। नकुल ने दुष्ट चार्वाक को दण्ड दे दिया है।

इसके बाद सबने मिल कर युधिष्ठिर का अभिषेक किया।

पात्र-सूची

पुरुष-पात्र—

युधिष्ठिर, भीम	पांच पांडव
अर्जुन, सहदेव (नकुल)	,, ,,
दुर्योधन	कौरवराज
धृतराष्ट्र	दुर्योधन का पिता
कर्ण	अंगराज, दुर्योधन का मित्र
अश्वत्थामा	गुरु द्रोणाचार्य का पुत्र
कृपाचार्य	अश्वत्थामा का मामा
संजय	व्यास का शिष्य, राजमन्त्री
कंचुकी	अन्त:पुर का रक्षक, वृद्ध ब्राह्मण
पांचालक	पांडवों का संदेशवाहक, धृष्टद्युम्न
राक्षस	दुर्योधन का मित्र चार्वाक
सारथी	दुर्योधन का मित्र रथवाहक
सुन्दरक	कर्ण का सन्देशवाहक

स्त्री-पात्र—

द्रौपदी (पांचाली)	पांच पांडवों की पत्नी
भानुमती	दुर्योधन की पत्नी, राजरानी
गांधारी	दुर्योधन की माता
माता	जयद्रथ की माता
राक्षसी	पांडव-पक्षपातिनी राक्षसी
प्रतिहारी	द्वारपालिका, सेविका

वेणीसंहार

पहला दृश्य

(सहदेव सहित क्रुद्ध भीमसेन आते हैं ।)

भीमसेन—अरे, जिन्होंने लाक्षागृह में हमें जलाना चाहा, भोजन में विष दिया, कपट-द्यूत से जिन्होंने हमारा सर्वस्व हरण किया, और द्रौपदी का चीर खींच कर अपमानित किया, वे मद-मत्त कौरव भीमसेन के रहते अभी जीवित हैं ?

सहदेव—(विनयपूर्वक) आर्य, सहन कीजिए । कृष्ण ने सन्धि की इच्छा से दूत का स्थान ग्रहण किया है ।

भीमसेन—सहदेव, कृष्ण किन शर्तों पर संधि करने गये हैं ?

सहदेव—आर्य, पांच गाँवों की शर्त पर ।

भीमसेन—(कानों पर हाथ धर कर) छी-छी । महाराज युधिष्ठिर का तेज नष्ट हो गया । महाराज भले ही सन्धि कर लें पर मैं दुःशासन की छाती का रक्त पान न करूँ, और दुर्योधन की जांघ इसी गदा से न तोड़ूँ, तो मैं भीमसेन नहीं । हां, भला महाराज ने कौन से पाँच गाँव माँगे हैं ?

सहदेव—इन्द्रप्रस्थ ।

भीमसेन—वह तो हमारा है ही ।

सहदेव—वृकप्रस्थ ।

भीमसेन—जहाँ मुझे विष दिया गया ।

सहदेव—जयन्त ।

भीमसेन—जहाँ हमें जुआ खेल कर ठगा गया ।

भानुमती—क्या आर्यपुत्र हैं ?

(नेपथ्य में कोलाहल होता है।)

(कंचुकी आता है।)

कंचुकी—महाराज, तोड़ दिया, तोड़ दिया। झंझावात ने आपके रथ वैजन्ती की पताका को तोड़ दिया।

(प्रतिहारी आती है।)

प्रतीहारी— (दुःख से) महाराज की जय हो। महाराज, जयद्रथ की माता और आर्या दुःशला द्वार पर खड़ी हैं।

दुर्योधन—(स्वगत) क्या अभिमन्यु के मरने से पाण्डवों ने कुछ अनर्थ किया है ? (प्रकट) उन्हें ले आओ।

(प्रतिहारी जाती है और उन्हें साथ लेकर आती है।)

जयद्रथ की माता—महाराज रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए।

दुर्योधन—क्यों ? क्या हुआ ?

माता—महाराज, गाण्डीवधारी अर्जुन, यह प्रतिज्ञा करके कि आज सूर्यास्त से प्रथम ही पुत्रहन्ता जयद्रथ का वध करूँगा, गाण्डीव-हस्त युद्ध भूमि में गये हैं।

दुर्योधन—तो क्या चिंता है ? महाराज जयद्रथ दुर्योधन की विशाल भुजाओं में सुरक्षित है। तुम चिन्ता न करो। कृप, कर्ण, द्रोण जैसे महारथी उसकी रक्षा कर रहे हैं।

भानुमती—आर्यपुत्र, फिर भी प्रतीकार करना आवश्यक है।

दुर्योधन—तो यहाँ कौन है। मेरा जैत्र रथ तैयार करें। मैं स्वयं अभी-अभी उस पार्थ की प्रतिज्ञा झूठी करके उसे उसके पुत्र के पास पहुँचाता हूँ।

कंचुकी—महाराज का रथ आ गया।

दुर्योधन—तो मैं चला।

(जाता है।)

तीसरा दृश्य

(राक्षस और राक्षसी आते हैं ।)

राक्षसी—(हँसकर) जयद्रथ-वध वाले दिन की तरह अर्जुन नित्य युद्ध करे तो मांस और रक्त से मेरे घर की कोठी भर जाय ।

राक्षस—(प्रसन्नता से) अरे वाह री सच्ची घर वाली ! तू निर्भय हो और घड़े भर ले । पर मैं तो आर्य भीमसेन के पीछे जा रहा हूँ ।

राक्षसी—किसलिए ?

राक्षस—अरी, उन्होंने दुःशासन के रक्तपान करने की कसम खाई है । मैं भी उसका रक्त चखूंगा ।

(नेपथ्य में कोलाहल)

राक्षसी—अरे रुधिर-प्रिय, यह कैसा कोलाहल है ?

राक्षस—(देखकर) अहा, यह तो धृष्टद्युम्न द्रोण के बाल पकड़कर उसका तलवार से सिर काट रहे हैं ।

राक्षसी—(प्रसन्न होकर) अरे, तो चल, द्रोण का रक्तपान करें ।

राक्षस—अरी, वह तो ब्राह्मण का रक्त है ।

(नेपथ्य में कोलाहल)

—अरी, भाग भाग । ये तो अश्वत्थामा खड्गहस्त इधर ही आ रहे हैं । (दोनों भाग जाते हैं)

(अश्वत्थामा खड्गहस्त आता है ।)

अश्वत्थामा—मालूम पड़ता है, अर्जुन, सात्यकि या भीमसेन ने गर्व-मद से मर्यादा का उल्लंघन करके पितृचरण को क्रुद्ध कर दिया है । जिससे वे शिष्यप्रेम त्याग भीषण युद्ध कर रहे हैं । (पुकार कर) अरे, कौन है ? मेरा रथ लाओ । अथवा रथ की प्रतीक्षा क्यों करूँ ? यह खड्ग मेरे हाथ में है । (घूम कर) यह क्या ? रणभूमि से सेना भागी क्यों आ रही है ? गजचारी, अश्वचारी, पदचारी सभी भाग रहे हैं । धिक्कार है, धिक्कार है । महारथी कर्ण भी भागे आ रहे हैं । अरे, पितृचरण के रहते

कौरवदल की यह दशा ? अरे नरपतियो, ठहरो। ठहरो। अपनी कीर्ति में बट्टा मत लगाओ।

(घायल सारथी आता है।)

सारथी--(रोता हुआ चरणों पर गिर कर) कुमार, रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए।

अश्वत्थामा--अश्वसेन, तुम तो त्रिलोकी के रक्षक के सारथी हो।

सारथी—हाय, हाय, कैसे कहूँ ?

अश्वत्थामा--तो पितृचरण अब नहीं रहे। (अचेत हो जाता है।)

(कृपाचार्य आते हैं।)

कृपाचार्य--हम जैसे झूठे धनुर्धारियों को धिक्कार है। उस दिन हमने द्रौपदी के केश खींचे जाते देखे और आज आचार्य द्रोण के केश खींचे गये। (पास आकर) वत्स, धीरज धरो।

अश्वत्थामा--हा पितृचरण, हा तात, हा सकल विश्व के गुरु। (खड्ग देख कर) अब इस शस्त्र धारण की विडम्बना से क्या ? (शस्त्र त्यागता है।)

(नेपथ्य में)

— अरे राजाओ, इस नरपिशाच धृष्टद्युम्न ने गुरु भारद्वाज को केश खींचकर मार डाला और तुम देखते रहे।

अश्वत्थामा—(क्रोध से थर-थर कांपते हुए) क्या यह सत्य है ?

कृपाचार्य—वत्स, ऐसा ही सुना है।

अश्वत्थामा—क्या धृष्टद्युम्न ने पितृचरण का सिर छुआ ? आः दुष्ट पांचाल, अरे, सत्यवादी युधिष्ठिर, अर्जुन, सत्यकि, भीमसेन, कृष्ण, तुम्हारे देखते सुर असुर और नरों के एकमात्र धनुर्धर आचार्य का सिर द्रुपद-कुल-कलंक ने छुआ ? उनके केश खींचे। अरे कुटिल कृष्ण, अरे पाण्डवो, मत्स्य, सोमक, मागध प्रभृति नीच क्षत्रियो, ठहरो। सारथी, संग्राम के साज सजा कर मेरा रथ ले आओ। (खड्ग उठाता है।)

सारथी—जो आज्ञा। (जाता है।)

कृपाचार्य—वत्स, सम्मुख समर में त्रैलोक्य में तुम्हारा कोई सामना नहीं कर सकता। तुम्हें सेनापति पद पर अभिषिक्त करने को कौरवेश्वर दुर्योधन अभिषेक सामग्री लिये बैठे हैं।

सारथी—मैं भी परिभव की भयंकर आग में जल रहा हूँ। मैं कुरुराज को सेनापति बनकर सुखी करूँगा।

(कर्ण और दुर्योधन आते हैं।)

कर्ण—द्रोणपुत्र, सब के परित्राता, उन्होंने शस्त्र त्याग कर अपनी दुर्दशा कराई।

अश्वत्थामा—महाराज, अब विचार क्या? मैं आज कृष्ण सहित पाण्डवों को मारूँगा। आप निश्चिन्त रहें।

कर्ण—(हँसकर) द्रोणपुत्र, कौरव सैन्य में और भी वीर हैं।

अश्वत्थामा—कर्ण, मैं वीरों का अपमान नहीं करता। मैं शोकाविष्ट हूँ।

कर्ण—वीर पुरुष शोकाविष्ट नहीं होते।

अश्वत्थामा—(क्रोध से) अरे राधा के पुत्र, सूत, तू मुझ गुरुपुत्र को भी प्रबोध कराता है?

कर्ण—अरे वाचाल, अधकचरे ब्रह्मचारी, क्यों गाल बजाता है।

अश्वत्थामा—अरे नीच, यह मैं तेरे सिर पर चरण रखता हूँ।

(वैसा करना चाहता हूँ।)

दुर्योधन—गुरुपुत्र, सहन करो, सहन करो।

कर्ण—(खड्ग खींचकर) अरे दुष्ट ब्राह्मण, ठहर तो। (रुककर) जा ब्राह्मण जानकर छोड़ता हूँ।

अश्वत्थामा—(जनेऊ तोड़कर) ले, मैंने ब्राह्मणत्व भी त्यागा। शस्त्र ले।

(दोनों शस्त्र लेकर भिड़ जाते हैं।)

(नेपथ्य में)

—अरे, द्रौपदी के केश खींचने वाले पातकी, नीच कौरव, ठहर, अब बचकर तू नहीं जा सकता। अरे, कर्ण, सुबल, सुयोधन आदि अभिमानियो, सुनो। जिस नीच दुःशासन ने भरी सभा में द्रौपदी के केश खींचे थे उसकी छाती का रक्तपान करके मैं भीमसेन आज अपनी प्रतिज्ञा पूरी करता हूँ।

अश्वत्थामा—(हँसी उड़ाकर) अरे सेनापति, द्रोण का उपहास करने वाले, ले अब भीम के पंजे से दुःशासन को बचा।

कर्ण—आः, वृकोदर की क्या सामर्थ्य, जो मेरे रहते दुःशासन का बाल भी बाँका कर सके। (जाता है।)

अश्वत्थामा—(व्यंग्य से) महाराज, कौरवेश्वर, जाइए आप भी भाई की रक्षा कीजिए।

दुर्योधन—आः दुरात्मा भीम, ठहर मैं आया। लाओ मेरा रथ।

(जाता है।)

चौथा दृश्य

(रथ में अचेत दुर्योधन को लिए सारथी का प्रवेश)

(नेपथ्य में)

—अरे कौरव सेना के महारथियो, दुःशासन को मार कर उसके रक्त को पीकर वृकोदर ने जो उसके रक्त में स्नान किया है, उसे देखकर सभी कौरव-सेना डर कर भाग रही है। उसे रोको।

सारथी—अहा, यह कृपाचार्य, सफेद तथा चंचल चंवरों से युक्त सुवर्ण-कमण्डल वाली पताका फहराते, मरे हुए हाथी घोड़ों और मनुष्यों के हजारों शवों के जमघट से ऊँचे नीचे प्रदेशों में रथ को उछालते हुए और बाण-वर्षा से शत्रु-दल को दहलाते हुए कर्ण की सहायता को बढ़े चले जा रहे हैं।

(नेपथ्य में)

—अरे कौरव योद्धाओ, डर के मारे तुम्हारे हाथ से शस्त्र छूटे

पड़ते हैं। डरो मत, डरो मत। मैं कौरवेश्वर का जुए में जीता हुआ दास, मध्यम पाण्डव भीमसेन हूँ। मैंने दुःशासन की छाती फाड़कर उसका रक्तपान कर उसी के रक्त में स्नान किया है, पर अभी मेरी प्रतिज्ञा-महोत्सव के पूरा होने में तनिक कसर है।

सारथी—अरे, यह तो दुरात्मा वृकोदर इधर ही आ रहा है। और रथ में कुरुराज दुर्योधन अचेत पड़े हैं। क्या करूँ? (देखकर) सामने बड़ का वृक्ष है। उसी की ओट में रथ खड़ा कर दूँ। (रथ ले जाता है।)

दुर्योधन—(होश में आकर) दुरात्मा वृकोदर की क्या सामर्थ्य है, जो मेरे रहते दुःशासन का बाल बाँका कर सके। वत्स दुःशासन, डरो मत, मैं आया। सारथी, मेरा रथ वहाँ ले चलो, जहाँ दुःशासन है।

सारथी—महाराज, घोड़े बहुत थक गये हैं।

दुर्योधन—(रथ से उतर कर) मैं विलम्ब नहीं सहन कर सकता।

(पैदल चलता है।)

सारथी—ठहरिए, महाराज। (पैरों पर गिरकर) महाराज, दुरात्मा वृकोदर अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर चुका।

दुर्योधन—अरे, तो मेरे आज्ञाकारी छोटे भाई ने अपने प्राण मुझे उपहार में दे दिये। (भूमि पर गिर कर विलाप करता है।)

(घायल सुन्दरक आता है।)

सुन्दरक—अरे भाग्य, ग्यारह अक्षौहिणी सेना के अधिराज, सौ भाइयों के ज्येष्ठ, भीष्म—कर्ण—द्रोण—शल्य—कृतकर्मा—कृप—अश्वत्थामा आदि प्रधान राजमण्डल के स्वामी, सकल पृथ्वीतल के अधिराज कुरुनाथ महाराज दुर्योधन कहाँ हैं? (इधर उधर देख कर) अहा, यह अनेक रत्नों की कांति से जगमगाता हुआ, टूटी पताका वाला रथ महाराज का ही है। (निकट जाकर) अरे, ग्यारह अक्षौहिणी के

अधिपति महाराज दुर्योधन साधारण पुरुष की भाँति अपवित्र भूमि पर बैठे हैं। हाय रे भाग्य, जय हो, जय हो महाराज की।

दुर्योधन—क्या सुन्दरक है? सुन्दरक, अंगराज कर्ण कुशल से तो हैं।

सुन्दरक—महाराज, कैसे कहूँ? कुमार दुःशासन...

दुर्योधन—हम सुन चुके और...

सुन्दरक—हाय, कुमार वृषसेन मारा गया। महाराज मैंने स्वर्ग से गिरे हुए नक्षत्र की भाँति पार्थ के बाणों से मर्मस्थलों में विद्ध रक्त से लथपथ उस कुमार के कोमल शरीर को भूमि पर पड़ा देखा।

दुर्योधन—हा, वत्स वृषसेन! हा, कर्णकुलांकुर!

सारथी—महाराज, अधिक दुखी मत हूजिए।

दुर्योधन—दुःख भी पुण्यशालियों ही को मिलता है। (सुन्दरक से) फिर क्या हुआ?

सुन्दरक—महाराज, पुत्र को इस प्रकार समरांगण में पतित देख अंगराज आँसू रोक आगे बढ़ अमित पराक्रम दिखाने लगे। यह देख नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न आदि ने चारों ओर से अर्जुन को घेर कर अदृश्य कर दिया। तब महाराज शल्य ने कहा—अंगराज, तुम्हारे रथ के घोड़े मर चुके हैं, उसका युगंधर भी टूट गया है। ऐसी दशा में तुम भीम, अर्जुन से नहीं लड़ सकते। मैं दूसरा रथ बदलता हूँ। इस प्रकार शल्य महाराज ने दूसरा रथ बदल उस पर कर्ण को चढ़ाया। तब मेरे स्वामी ने लम्बी-लम्बी साँस भरते हुए मेरी ओर देखा। और मुझे निकट बुलाकर अपने सिर से एक पट्टी फाड़ देह से टपकते रुधिर से बाण के अग्र भाग को भिगोकर यह पत्र लिखकर आपकी सेवा में भेजा है।

(पत्र दुर्योधन को देता है।)

दुर्योधन—(पढ़ता है) स्वस्ति महाराज दुर्योधन को कर्ण का अंतिम प्रणाम। दुःशासन के शत्रु भीम को मैं नहीं मार सका, अब आप इसका

प्रतीकार अपने भुजबल से कीजिए या आँसुओं से। (घबरा कर) आह, सारथी, मेरा रथ लाओ। सुन्दरक, अंगराज से जाकर कहो। हम दोनों का एक ही संकल्प है। पार्थ को मारकर और अपने मृत बान्धवों को अश्रु-अञ्जलि देकर तुम्हारे ही आलिंगन में देह त्यागूंगा।

(सुन्दरक रोता हुआ जाता है।)

सारथी—महाराज, ये तात और अम्ब संजय सहित रथ पर सवार महाराज के समीप आ रहे हैं।

दुर्योधन—क्या तात और अम्ब ? हा कष्ट ! अब मैं कहाँ छिपूं ?

सारथी—महाराज, अब तो आप अकेले ही इन्हें धीरज बंधाने वाले रह गये हैं।

दुर्योधन—सारथी, जब भाग्य ही प्रतिकूल है तब क्या ? हा, हा।

(रथ सहित गांधारी, संजय, धृतराष्ट्र आते हैं।)

धृतराष्ट्र—संजय, कहां है कौरव-वंश का एकमात्र बचा हुआ मेरा प्रिय पुत्र दुर्योधन।

गांधारी—बताओ, बताओ। वह कुशल से तो है ?

संजय—महाराज, वह अकेले ही उस वट वृक्ष के नीचे बैठे हैं।

गांधारी—अकेले ? ऐसा कहा तुमने। उसके सौ भाई उसके पास नहीं हैं ?

संजय—तात, अम्ब, रथ से उतरिए। (दुर्योधन के निकट जाकर) महाराज की जय हो। ये तात और अम्ब आप ही के पास आये हैं। आप उत्तर दीजिए।

धृतराष्ट्र—पुत्र, आज युद्ध से लौटकर तुम मुझसे नहीं मिले।

गांधारी—पुत्र, बोलते क्यों नहीं ? क्या घावों की पीड़ा के कारण ? अब तुम न बोलोगे तो क्या दुःशासन, दुर्मर्षण या और कोई पुत्र बोलेगा ?

दुर्योधन—अम्ब, पुत्र-घाती को पुत्र क्यों कहती हो ?

धृतराष्ट्र—अरे पुत्र, अब तो तुम्हीं हम अन्धों के सहारे हो।

संजय—महाराज, घड़ा यदि कुएं में गिर जाय तो क्या रस्सी को भी कुएं में डाल देना चाहिए।

धृतराष्ट्र—पुत्र, धीरज धरो। और हमें भी धीरज दो।

दुर्योधन—पिताजी, अब धीरज क्या ?

गांधारी—पुत्र, अब यही यथेष्ट है कि एकमात्र बचे हुए तुम हमारे दुःख का कारण मत बनो। युद्ध बन्द करो।

दुर्योधन—क्या युद्ध छोड़ दूं ?

संजय—महाराज, यही उचित है।

दुर्योधन—क्या उपदेश दे रहे हो ?

धृतराष्ट्र—पुत्र, क्रोध मत करो। सुनो। उचित शर्तों पर युधिष्ठिर से सन्धि कर लो। वह मेरी प्रार्थना अस्वीकार न करेगा।

दुर्योधन—क्या दुःशासन के हृदय को विदीर्ण करने वाले को जीवित छोड़ दूं ?

गांधारी—हाय, पुत्र, ऐसी मौत तो किसी की नहीं सुनी गई। हत-भागिनी गान्धारी, तूने सौ दुःख पैदा किए।

(सब रोते हैं।)

धृतराष्ट्र—पुत्र, जब दैव विपरीत है, तो अब हम तुम्हें छोड़ किसका सहारा लें। यह भी तो सोचो।

(नेपथ्य में कोलाहल सुनाई देता है।)

गान्धारी—अरे, ये दुन्दुभी कैसी गड़गड़ा रही है।

धृतराष्ट्र—संजय, देखो, क्या है ?

दुर्योधन—भाव तात प्रसन्न हूजिए। कोई बुरी खबर सुनने से प्रथम ही मुझे युद्ध में जाने की आज्ञा दीजिए।

गान्धारी—अरे, पुत्र, मुझ हतभागिनी का थोड़ी देर तो धीरज बंधाओ।

(नेपथ्य में)

—अरे योद्धाओ ! कौरवेश्वर को सूचित कर दो, अप्रिय सुनने से मुँह मोड़ना व्यर्थ है। वह शल्य कर्ण के सूने और छिन्न-भिन्न रथ को भगाये लिये जा रहे हैं।

दुर्योधन—आह, यह हृदयविदारक वज्रपात-सी घोषणा कैसी। कौन, कौन है यहाँ ?

(सारथी आता है।)

सारथी—महाराज, हमारे मनोरथों की तरह शून्य रथ पर अकेले शल्य ही बैठे जा रहे हैं।

दुर्योधन—हा मित्र कर्ण !

धृतराष्ट्र—अरे महाकष्ट है। भीष्म और द्रोण के बाद हमें कर्ण ही का अवलम्ब था।

दुर्योधन—अरे अंगराज, तुम मुझ से मुँह मोड़ कर अपने पुत्र वृष-सेन के पास जा रहे हो। ऐसा तो न करो।

(अचेत हो जाता है, फिर होश में आकर)

—अरे, किसने यह दुःस्साहस किया ?

सारथी—महाराज, अर्जुन ने।

दुर्योधन—तो क्रोधाग्नि में भस्म होने से तो रण में मरना ही अच्छा। सारथी, रथ लाओ। बस, केवल गदा लेकर ही समर करूँगा।

धृतराष्ट्र—तो पुत्र, पहले सेनापति चुन लो।

दुर्योधन—चुन लिया।

धृतराष्ट्र—कौन।

दुर्योधन—शल्य या अश्वत्थामा।

संजय—हन्त, भीष्म, द्रोण और कर्ण के गिरने पर अब शल्य पाण्डवों को जय करेगा ?

दुर्योधन—तो मैं अपने ही को अपने अश्रुजल से अभिषिक्त करके सेनापति नियत करता हूँ।

(नेपथ्य में)

—अरे, कौरव सेना के प्रधानो, बताओ दुर्योधन कहाँ छिपा है ?

सारथी—(घबड़ा कर) अरे, ये तो अर्जुन और भीम रथ पर चढ़े इधर ही को आ रहे हैं।

गान्धारी—(भयभीत होकर) पुत्र, अब क्या होगा ?

दुर्योधन—अम्ब, यह गदा मेरे पास है।

गान्धारी—हाय, मैं मन्दभागिनी मर गई।

दुर्योधन—संजय, अम्ब और तात को रथ पर बैठा कर शिविर में ले जाओ। हमारे दुःख दूर करने वाले आ गये हैं।

धृतराष्ट्र—पुत्र, तनिक ठहरो। मैं इनका अभिप्राय जान लूँ।

दुर्योधन—पिता जी, यह जानकर क्या होगा ?

(भीम अर्जुन आते हैं।)

भीम—अरे दुर्योधन के वेतनभोगियो, तुम डर कर क्यों भाग रहे हो। जो जुआ खेलने में बड़ा वीर है, लाक्षागृह में हमें जलाने में भी जो पटु है, जिसकी आज्ञा से द्रौपदी का चीर खींचा गया था। उसी कर्ण के प्रिय मित्र और दुःशासन आदि के बड़े भ्राता कौरवों के अधिपति दुर्योधन के दर्शन करने की इच्छा से हम दास पाण्डव आये हैं।

धृतराष्ट्र—यह दुष्ट तो बड़े व्यंग्य वचन बोल रहा है।

दुर्योधन—सारथी, कह दो, यहाँ बैठे हैं।

सारथी—जो आज्ञा (जाकर) अजी, भीमार्जुन, महाराज कौरवेश्वर तात और अम्ब सहित यहाँ वट वृक्ष की छाया में बैठे हैं।

अर्जुन—(भीमसेन से) आर्य, पुत्रशोक से पीड़ित माता पिता के सामने जाकर उन्हें अधिक पीड़ा पहुँचाना ठीक नहीं। चलो लौट चलें।

भीम—(हँसकर) वाह, गुरुजनों को विना अभिवादन किये हमें नहीं जाना चाहिए। संजय, तात और अम्ब से हमारा प्रणाम कह दो। अथवा ठहरो, हम ही चलते हैं।

(दोनों रथ से उतरते हैं ।)

भीम—अपने कार्य और नाम बताकर गुरुजनों को अभिवादन करना चाहिए।

अर्जुन—जिस कर्ण पर दुर्योधन शत्रुओं को तृणसम समझता था उसे संमुख युद्ध में मारने वाला यह पार्थ—माता पिता के चरणों में वन्दना करता है।

भीम—जिसने सम्पूर्ण कौरववंश को विध्वंस किया और दुःशासन का हृदय चीर कर रक्त पान किया, वह भीम भी आपको प्रणाम करता है।

धृतराष्ट्र—अरे भीमसेन, सभी क्षत्रिय शत्रु को मारते हैं। तू इतनी श्लाघा क्यों करता है ?

भीम—तात, बालक जो कार्य करते हैं वह माता पिता को बना देते हैं, इसीलिए।

दुर्योधन—अरे पेटू, बूढ़े नृपति के सामने क्या डींग हाँकता है ? जिसने तुम सभी के सामने द्रौपदी का चीर खिंचवाया था और सब राजाओं के सामने उसे दासी बनाया था, वह कौरवों का राजा मैं तो अभी जीवित हूँ।

भीमसेन—अरे भरत-कुलकलंक !

दुर्योधन—अरे पाण्डव-पशु !

(नेपथ्य में)

—अरे सुनो सुनो, ये श्रीमान् अजातशत्रु महाराज युधिष्ठिर सब शत्रुओं को मार कर, और निज प्रताप से सब दिशाओं को जीत कर और उनमें अपने सामन्त नियत कर आज्ञा करते हैं कि जो वीर युद्ध में मारे गये हैं, उनके बान्धव उनकी अन्त्येष्टि करें, और सेना को युद्ध से रोक दें।

अर्जुन—(भीमसेन से) आर्य, आओ, अब चलें।

(दोनों जाते हैं।)

(नेपथ्य में)

—अरे गाण्डीवधारी, ठहर, कहाँ भागा जाता है ? कर्ण पर कुपित होकर मैंने शस्त्र त्यागा था। अब मैं अपने पिता के बाल खींचने का बदला लेने आ गया हूँ।

धृतराष्ट्र—(हर्ष से) दुर्योधन, द्रोणवध से संतप्त यह महाबली अश्वत्थामा आ रहा है। इसकी सम्मान से अगवानी करो।

अश्वत्थामा—(आकर) कौरवेश्वर की जय हो।

दुर्योधन—(उठकर) गुरुपुत्र, यहाँ बैठो।

अश्वत्थामा—महाराज, अब चिन्ता त्याग दीजिए। मैं खड्गहस्त आ गया।

दुर्योधन—(तिरस्कारपूर्वक) गुरुपुत्र, कर्ण के मरने पर तुमने शस्त्र ग्रहण किया, पर अभी और ठहरो, मुझे भी मर जाने दो।

अश्वत्थामा—(क्रोध से) महाराज, ऐसा ही सही। (जाता है।)

धृतराष्ट्र—अरे पुत्र, इस विपत्काल में तूने गुरुपुत्र को रुष्ट कर दिया।

दुर्योधन—पिता, यह तो अर्जुन के समान ही मित्र कर्ण का शत्रु है।

धृतराष्ट्र—पुत्र, तुम्हारा दोष नहीं। यह भरतकुल का विनाशकाल आ गया। (संजय से) संजय, तुम मेरी ओर से गुरुपुत्र से जाकर कहो। राजा बन्धुजन के निधन से दुःखी हैं। उसके कठोर वचनों का विचार न करें।

संजय—जैसी तात की आज्ञा। (जाता है।)

दुर्योधन—मेरा रथ लाओ।

सारथी—जो आज्ञा। (जाता है।)

धृतराष्ट्र—गान्धारी—चलो हम मद्राधिप शल्य के शिविर को चलें। पुत्र तुम, भी अपनी बात पूरी करो।

(जाते हैं।)

पाँचवाँ दृश्य

(द्रौपदी, युधिष्ठिर आदि बैठे हैं ।)

युधिष्ठिर—पूर्ण विजय में सहसा क्रुद्ध भीमसेन की इस प्रतिज्ञा ने संशय उत्पन्न कर दिया कि आज ही वह दुर्योधन को मारेगा । भीमसेन की प्रतिज्ञा सुन कर वह कहीं छिप गया है ।

पांचालक—(आकर) महाराज की जय हो । प्रिय सन्देश है ।

युधिष्ठिर—क्या पता चल गया ?

पांचालक—अजी, युद्ध छिड़ गया ।

युधिष्ठिर—(घबराकर) क्या अकेले भीमसेन लड़ रहे हैं ।

पांचाचक—हां, महाराज ।

युधिष्ठिर—कहां, कहां ?

पांचालक—महाराज, सरोवर पर पहुँच कर वासुदेव कृष्ण ने दुर्योधन के पैर का चिन्ह पहिचान कर कहा—वीर भीमसेन, यह दुर्योधन जलस्तम्भनी विद्या जानता है । इसलिए वह अवश्य ही इस सरोवर में होगा । यह सुनकर वृकोदर ने तालाब के पानी को मथ डाला । और गर्ज कर कहा—अरे, व्यर्थ ही अपने पराक्रम का ढिंढोरा पीटने वाले ! द्रौपदी के चीर और बालों को खींचने वाले पातकी, ! निकल आ ।

युधिष्ठिर—फिर क्या हुआ ?

पांचालक—तब, दुर्योधन अपनी भयानक गदा लिये बाहर निकल आया और कहने लगा कि अरे वायुपुत्र, मैं तो तनिक विश्राम ले रहा था । परन्तु पाण्डवों को मारे बिना मुझे चैन कहां ? तब भीमसेन ने कहा—अरे कौरवों के अधिराज, पाण्डव समर्थ हैं, और मैं अकेला हूँ यह समझ कर खिन्न मत हो, तू हम पांचों में से जिसे चाहे, किसी एक से युद्ध कर । तब उसने भीम को ही ललकारा । तब दोनों गदा ले भयानक युद्ध करने लगे । मैं उन्हें युद्ध करते छोड़ श्रीकृष्ण की

आज्ञा से आपको सूचना देने आया हूँ।

(नेपथ्य में)

—अजी, मैं प्यासा हूँ। कोई जल और छायादान करे, तो बड़ा उपकार हो।

युधिष्ठिर—(सुनकर) कौन है ? कौन है यहां। देखो, कोई अतिथि है। उसे सादर ले आओ।

(कंचुकी के साथ कपट-मुनि का वेष धारण किए दुर्योधन का मित्र चार्वाक राक्षस आता है।)

युधिष्ठिर—(उठकर) मुनिवर, अभिवादन करता हूँ।

राक्षस—अजी, शिष्टाचार रहने दीजिए, मुझे जल से तृप्त कीजिए।

युधिष्ठिर—कौन है ? पानी लाओ।

सेवक—(जल-पात्र लाकर) महाराज यह जल है।

राक्षस—आप तो क्षत्रिय मालूम देते हैं।

युधिष्ठिर—हाँ, हम क्षत्रिय हैं।

राक्षस—तो आपका जल मैं नहीं लूँगा। अभी मैं समन्त पंचक से आ रहा हूँ। वहाँ अर्जुन और सुयोधन का गदायुद्ध हो रहा है।

कंचुकी—अजी, भीमसेन और दुर्योधन का कहो।

राक्षस—वह हो चुका।

युधिष्ठिर—(उद्विग्न होकर) अरे यह क्या कहा ?

राक्षस—अजी, वीर भीमसेन के मारे जाते ही अर्जुन आँसू पोंछ रुधिर से सनी अपने भाई की गदा लेकर 'इधर आ, इधर आ' कह कर कौरवराज से लड़ने लगा। उसकी मृत्यु निश्चित समझ कर बलराम कृष्ण को रथ पर बैठा कर द्वारिका चले गये।

युधिष्ठिर—अरे, मेरी जय पराजय हो गई !

द्रौपदी—आर्यपुत्र, आपने तो मेरी वेणी बाँधने की प्रतिज्ञा की थी, सो वह झूठी हो गई। (युधिष्ठिर से) आर्यपुत्र, मेरे लिए चिता तैयार

करा दो।

युधिष्ठिर—कंचुकी, ऐसा ही करो। और मेरा धनुष लाओ। अथवा मैं भी उसी गदा से काम लूँ, जिसे भीमार्जुन ने गौरव दिया।

(नेपथ्य में)

—अरे रे, समन्त पंचक में घूमने वालो! रक्त मद्य पीकर उन्मत्त राक्षस, यक्ष, पिशाचो, गृद्ध, शृगालो, हमें देखकर मत डरो। कहो—पांचाली कहाँ है?

कंचुकी—यह दुरात्मा कौरव कालदण्ड हाथ में लिये इधर ही आ रहा है। हा देवी याज्ञसेनी, अब कौन तुम्हारी रक्षा करेगा?

युधिष्ठिर—पांचाली, अभी मैं जीवित हूँ। लाओ मेरा धनुष। आ रे दुरात्मा दुर्योधन, आ कुरुकुलनाशी।

(खून में लथपथ गदा लिये भीमसेन आते हैं)

भीमसेन—कहाँ है, पांचाली कहाँ है?

द्रौपदी—(डरकर) बचाओ, बचाओ। महाराज, आर्यपुत्र।

युधिष्ठिर—कौन है यहाँ, अरे मेरा धनुषबाण लाओ। या फिर बाहुयुद्ध ही से इस दुरात्मा को पकड़कर आग में फेंक दूँ।

(कमर कसता है।)

कंचुकी—पाण्डुवधू! जल्दी करो। अब कोई आशा नहीं। चलो, चिता में कूद पड़ो।

भीमसेन—(आकर) पांचाली ठहरो, मैं तुम्हारी वेणी बाँधता हूँ।

द्रौपदी—(भय से पीछे हट कर) अजी, नहीं, नहीं?

भीमसेन—ठहरो, भीरु अब कहाँ भागती हो?

(केश पकड़ना चाहता है।)

युधिष्ठिर—(भीम को पकड़ कर) अरे ठहर दुरात्मा।

भीमसेन—आर्य, यह क्या?

कंचुकी—(देखकर) अरे, भाग्यवृद्धि हो महाराज, ये तो कुमार भीमसेन हैं।

युधिष्ठिर—(देखकर) क्या कहा, क्या कहा ?

भीमसेन—(युधिष्ठिर के पैरों पर गिरकर) जय हो महाराज।

युधिष्ठिर—(गाढ़ालिंगन करके) प्रिय भीम !

भीमसेन—तनिक ठहरिए महाराज, दुर्योधन के रक्त से सने इन हाथों से पांचाली की वेणी बाँध दूँ।

पांचाली—भाग्य से तुम्हारे शत्रुओं का नाश हुआ और सौभाग्य का उदय हुआ। दु:शासन से खोली गई वेणी को अब बाँधो।

(वेणी बाँधता है।)

भवभूति

(आठवीं शताब्दी)

उत्तररामचरित

जीवन-परिचय

महाकवि भवभूति विदर्भ के पद्मपुर नगर के निवासी नीलकण्ठ नामक औदुम्बर ब्राह्मण के पुत्र थे। इनका वास्तविक नाम श्रीकण्ठ था। राजतरंगिणी में लिखा है कि कान्यकुब्ज के राजा यशोवर्मन् जिस समय काश्मीर के राजा मुक्तापीड़ से युद्ध करने गये थे, तब भवभूति उनके साथ थे। वाक्पतिराज ने अपने प्राकृत काव्य 'गौड़वह' में भवभूति को अपना गुरु माना है। उसी से यह भी प्रमाणित होता है कि महाकवि भवभूति ७४० ईस्वी में विद्यमान थे। इन्होंने उत्तररामचरित के अतिरिक्त मालती-माधव, महावीर-चरित और तापस-वत्सराज नामक तीन नाटक और लिखे हैं। परन्तु उत्तररामचरित में उनका प्रसाद गुण अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गया है।

कथासार

बहुत दिन हुए, अयोध्या में एक राजा राज्य करता था। उसका नाम दशरथ था। वह महाप्रतापी इक्ष्वाकुवंश का था। वह स्वयं भी बड़ा वीर था। देवराज इन्द्र तक उसके मित्र थे। देवासुर-संग्राम में उसने बड़ी वीरता दिखाई थी।

उसकी तीन रानियाँ थीं, जिनसे वृद्धावस्था में उसके चार पुत्र हुए। छोटी रानी बहुत सुन्दरी थी। उसका नाम कैकेई था। उपयुक्त समय

होने पर चारों पुत्र युवा अवस्था को प्राप्त हुए और उनके विवाह भी हुए। बड़े पुत्र का नाम 'राम' था। उनकी स्त्री का नाम सीता था, जो मिथिला के राजा जनक की पुत्री थी। जब राम युवा हुए, तब महाराज दशरथ ने राम को युवराज बनाकर वानप्रस्थ होने की ठानी। अभिषेक की सब तैयारियाँ कर ली गईं। परन्तु ठीक अभिषेक के समय कैकेई ने अपने पुराने वरदान माँगकर राम को वनवास करा दिया और अपने पुत्र भरत को राजगद्दी दिलवा दी। राम माता-पिता की आज्ञा मानकर वन को चले गये और उनके साथ ही उनकी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मण भी चले गये। दशरथ को इस बात से इतना दुःख हुआ कि उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये। भरत ने राजा होना अन्यायपूर्ण समझकर राजा होने से इन्कार कर दिया। पहले तो उन्होंने राम को मनाने की चेष्टा की। जब वे नहीं माने, तो राम की खड़ाऊँ सिंहासन पर रखकर राज-प्रवन्ध करना स्वीकार कर लिया। उधर १४ वर्ष तक राम, सीता और लक्ष्मण को साथ लेकर इस वन से उस वन तक भटकते रहे। वन में उनको बड़ा कष्ट हुआ। विशेषकर सीता को, जो वहुत ही कोमल और भीरु थीं। उन्होंने कब जंगल देखा था। उन्हें भी नंगे पैर पति के साथ भूखे-प्यासे घूमना पड़ा। रास्ते में बड़े-बड़े भयानक जंगली पशुओं और राक्षसों के हाथों कष्ट भोगना पड़ा।

परन्तु सबसे बड़ी जो विपत्ति उन पर आई, वह यह थी कि बनवास के अन्तिम दिनों में रावण सीता को हर ले गया। रावण लंका का परम प्रतापी और महावीर राजा था। उसके पास बड़े-बड़े भयानक राक्षसों की भारी सेना थी। उसका भाई कुम्भकर्ण ही एक ऐसा भारी योद्धा था कि जिसका कोई सामना नहीं कर सकता था और उसके पुत्र इन्द्रजित् से तो देव और दानव भी भय खाते थे। उधर बनवासी राम अकेले थे, करें तो क्या करें। परन्तु उन्होंने हिम्मत नहीं हारी और वानरों की सेना को लेकर बड़ी वीरता और साहस से शत्रु का सामना

किया और उसको जड़मूल से नष्ट करके सीता का उद्धार किया। वनवास की अवधि पूरी होने पर जब वे अयोध्या लौटे और राजा हुए, तब एक दिन उन्होंने सुना कि एक धोबी अपनी धोबिन से, जो कि बिना उससे पूछे बाप के घर चली गई थी, नाराज़ हो रहा था और कह रहा था कि मैं क्या रामचन्द्र हूँ कि राक्षस के घर गई हुई सीता को अपने घर रख लिया। इस बात को दूत से सुनकर राम को बड़ी चिन्ता हुई और उन्होंने सोचा कि जब प्रजा के मन में ऐसा अपवाद है, तो ऐसा न हो कि प्रजा में बुरा आदर्श स्थापित हो ; क्योंकि प्रजा को प्रसन्न रखना ही राजा का धर्म है। ऐसा विचार कर उन्होंने गर्भवती सीता को वन में भिजवा दिया। वहाँ वह १८ वर्ष तक बालमीकि जी के आश्रम में रही। वहीं उनके दो पुत्रों का जन्म हुआ, जिनका नाम लव और कुश रक्खा गया। १८ वर्ष बाद रामचन्द्र जी ने अश्वमेध यज्ञ करने की ठानी, तब अश्वमेध का घोड़ा छोड़ा गया और उसकी रक्षा का भार कुमार चन्द्रकेतु को सौंपा गया। जब वह घोड़ा बालमीकि जी के आश्रम में पहुँचा तो लव और कुश ने बाँध लिया। ये लव और कुश सीता जी के पुत्र थे, और बालमीकि जी ने उनको सब प्रकार के अस्त्रों की शिक्षा दी थी।

अश्वमेध यज्ञ का यह नियम होता है कि एक श्यामवर्ण घोड़ा छोड़ा जाता है। वह चाहे जिधर जाये, उसके पीछे चतुरंगिणी सेना रहती है। जो कोई उसको पकड़ता है, उसी से यह सेना लड़ती है ; उसको विजय करती है और उसे बाँधकर यज्ञ में ले आती है। यज्ञ में आकर उसे सेवा करनी पड़ती है। लव, कुश ने जब घोड़े को बाँध लिया, तो कुमार चन्द्रकेतु ने उनसे युद्ध किया ; परन्तु जब उन्होंने देखा कि ऋषि-कुमारों ने बड़े कौशल से युद्ध किया है, तो वे दंग रह गये। इतने ही में महाराज रामचन्द्र जी ने आकर युद्ध रोक दिया और जब उनको ज्ञात हुआ कि ये मेरे ही पुत्र हैं, तो उनका प्रेम उमड़ आया

और उन्होंने उनको छाती से लगाया। इसके पश्चात् सीता जी से भी उनकी भेंट हुई और जैसा कि स्वाभाविक था दोनों प्रेमी अपनी मूक वेदनाओं को लिये हुए एक दूसरे से मिले ; परन्तु भाग्य ने उन्हें फिर पृथक् कर दिया, सदा के लिए।

यह एकांकी भवभूति के प्रसिद्ध उत्तररामचरित नाटक पर आधारित है। भवभूति का उत्तररामचरित सात अंकों का नाटक है। संस्कृत साहित्य में नाटक और कविता दोनों ही दृष्टियों से यह नाटक बहुत श्रेष्ठ माना जाता है। इसमें सुन्दर और कोमल भावों का जो प्राबल्य है और करुणा तथा वात्सल्य रस का जो प्रवाह है तथा राम सीता की विरह-वेदना एवं जनक कौशल्या का मनःक्षोभ और लव, कुश का वीरोचित दर्प जिस प्रभावशाली ढंग से प्रकट किया हैं, वह इतना अप्रतिम है कि संस्कृत तथा दूसरी किसी भी भाषा के साहित्य में वह बेजोड़ है। विचारों की गम्भीरता, भावों की नैसर्गिकता, तथा प्रौढ़ता, भाषा का साहित्य सभी दृष्टियों से भवभूति की यह रचना अद्भुत है। एकांकी में यथा-सम्भव चरित्र भाव और भाषा का वही स्तर कायम रखने की चेष्टा की गई है। जो संदर्भ बढ़ाये गये हैं वे भी वैसी ही भाषा में हैं—जैसी भाषा में मूल नाटक है।

पात्र-सूची

पुरुष-पात्र—

राम	अयोध्या के राजा, दशरथपुत्र
लक्ष्मण	राम के छोटे भाई
कंचुकी	अन्तःपुर का सेवक ब्राह्मण
दुर्मुख	गुप्तचर
ऋषिकुमार	वाल्मीकि आश्रम के ब्रह्मचारी
वाल्मीकि	रामायण के निर्माता महर्षि
वसिष्ठ	रघुकुल के राजगुरु
लव	राम का पुत्र
कुश	राम का पुत्र
सिपाही	अश्वसंरक्षक
चन्द्रकेतु	लक्ष्मण का पुत्र
सुमन्त	सारथी
जनक	सीता का पिता, मिथिला का राजा

स्त्री-पात्र—

सीता	राम की धर्मपत्नी
वासन्ती	वनदेवी, सीता की सखी
कौशल्या	राम की माता
अरुन्धती	वसिष्ठ की पत्नी

उत्तररामचरित

पहला दृश्य

(सीता और राम अपने महल में बातें कर रहे हैं ।)

सीता—महाराज, आज मैं आपसे न बोलूंगी । दिन भर यह दासी आँखें बिछाये बैठी महाराज की बाट देखती रही और महाराज ने अब दर्शन दिये हैं ।

राम—देवी सीता, राज-काज के झंझट तो ऐसे ही हैं पर इस दास के प्राण तो सदा तुम्हीं में अटके रहते हैं ।

सीता—बातें बनाना तो महाराज खूब जानते हैं, पर आज बातों से पीछा नहीं छूटेगा । कहिये, शुभ समाचार सुनने पर आप किसी को क्या देते हैं ?

राम—दान और भेंट तो पात्र को देखकर ही दिया जाता है तुम्हारा शुभ समाचार कैसा है प्रिये ?

सीता—बहुत ही शुभ है ।

राम—अच्छी बात है । कहो, वह शुभ समाचार क्या है ?

सीता—कैसे कहूँ ?

राम—कहो कहो । अरे ! तुम्हारा मुँह लाल हो गया । कहीं हमारी गोद तो भरने वाली नहीं है ।

सीता—बड़ों के पुण्य-प्रताप और ऋषियों के आशीर्वाद से ऐसा ही है ।

राम—प्यारी, तो हमारी जन्म भर की आस अब पूरी हुई ।

सीता—हाँ आर्यपुत्र ।

राम—अहा ! कब वह दिन आयेगा जब मैं अपने पुत्र को हाथों में खिलाऊँगा।

सीता—बहुत जल्द, आर्यपुत्र ।

राम—सीते, कहो, आज तुम्हें क्या दूं ?

सीता—महाराज, आपका प्यार दुनिया की सबसे बड़ी वस्तु है। वह मुझे पहले ही मिला हुआ है। अब मुझे और क्या चाहिए ।

राम—धन्य सीता देवी, क्यों न हो । इसी से तो तुम्हें लोग प्रियंवदा कहते हैं (देखकर) अरे लक्ष्मण आ रहे हैं ।

(लक्ष्मण हाथ में कुछ लिये आते हैं ।)

सीता—देवर जी, यह क्या लाये हो ?

लक्ष्मण—महाराज की जय हो। देखिये, भाभी जी, कैसे अच्छे चित्र बने हैं। इनमें हमारे सम्पूर्ण जीवन की कथा आ गई ।

राम—वत्स लक्ष्मण, देवी के मन को रिझाने के तुम्हें खूब ढंग आते हैं। देखो कैसे चित्र हैं। अरे यह तो जनकपुरी की छवि है।

सीता—अहा, नये फूले हुए कमल जैसे महाराज कैसे चुपचाप महात्मा विश्वामित्र के पास खड़े हैं। और देवर जी भी कैसे सलोने बने हैं। देखिए पिता जी अचरज में भर कर आपका रूप निहार रहे हैं।

लक्ष्मण—देखिए भाभीजी, वह गुरु वशिष्ठ की आपके पिता पूजा कर रहे हैं। विवाह का मण्डप सजा है। राजा, रानी, ऋषि, मुनि, देव, गन्धर्वों की भीड़ लगी है। यह आप हैं, यह भाभी माण्डवी हैं, यह बहू श्रुतिकीर्ति है।

सीता—अजी देवर जी, यह चौथी कौन हैं ?

लक्ष्मण—उसे जाने दीजिए। यह देखिए परशुराम जी हैं ।

सीता—मैं डर गई।

राम—(दूसरी ओर देखकर) अरे यह तो अयोध्या की उस समय

की छवि है, जब हम विवाह करके लौटे थे। कैसी आनन्द बधाइयाँ बज रही हैं।

लक्ष्मण—यह चित्रकूट की राह में वह बड़ का पेड़ है, जिसे भरद्वाज मुनि ने हमें बताया था। देखो यमुना के जल में इसकी परछाईं कैसी काँपती हुई-सी दीख रही है।

सीता—क्या आर्यपुत्र को इसकी स्मृति है ?

राम—भला, इसे मैं भूल सकता हूँ ? इसी के नीचे बैठकर मैंने तुम्हारे पैरों से काँटा निकाला था और तुमने अपने आँचल से मेरे मुँह का पसीना पोंछा था। अरे देवी, तुम रोने क्यों लगी ?

सीता—महाराज, उस दुःख में भी कैसा सुख था। राज्य का यह बोझ तो जैसे हमें दबाये डालता है। महाराज, मेरे मन में एक सधौरी हुई है।

राम—कैसी सधौरी देवी !

सीता—मैं चाहती हूँ कि एक बार फिर वन में विहार करूँ और जंगल में नदी के जल में किलोल करूँ।

राम—सीते, राजमहल के ये महाभोग पाकर भी आज तुम्हें इनकी याद आ रही है।

सीता—महाराज, यह राजमहल, गहने, हीरे, मोती, दास-दासी जैसे हमारे ऊपर बोझ हैं। तब हम और आप बिल्कुल पास-पास थे।

राम—और अब !

सीता—अब राजनीति हमारे आपके बीच आ गई है। महाराज, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि हम लोग पल-पल में दूर हो रहे हैं।

राम—प्रिये, ऐसा क्यों सोचती हो ?

सीता—आर्यपुत्र एक पल को आप से दूर रहने पर मेरा दिल धड़कने लगता है।

राम—सीते, मैंने तुम्हें बड़े कष्ट से पाया है। अब मैं तुम्हें सदा

हृदय में रखूंगा।

सीता—तो चलिए आर्यपुत्र, एक वार फिर वन का आनन्द उठाया जाय, ऋषियों का दर्शन करके उनका आशीर्वाद लिया जाय।

राम—(हंसकर) ऐसी ही इच्छा है तो लक्ष्मण कल ले जाकर तुम्हारा वन विहार करा लायेंगे प्रिये।

सीता—और आप।

राम—तुम तो कह चुकी हो। राजा को विश्राम कहाँ ? भाई लक्ष्मण, कल भोर होते ही रथ जोतकर देवी को गंगा तीर के ऋषियों का दर्शन करा लाओ।

लक्ष्मण—जो आज्ञा महाराज।

(कंचुकी आता है।)

कंचुकी—श्री महाराजाधिराज की जय हो।

राम—अरे भाई क्या समाचार है ?

कंचुकी—महाराज का चर दुर्मुख उपस्थित है ?

राम—अच्छा भाई, उसे यहीं भेज दो। (सीता से) सीते ! तुम जाओ, विश्राम करो। मैं थोड़ा राज-काज कर अभी आता हूँ भाई लक्ष्मण, तुम भी जाओ। रथ तैयार रखने की आज्ञा दे दो। भोर होते ही देवी को वन-विहार के लिए ले जाना।

लक्ष्मण—जैसी महाराज की आज्ञा। (जाते हैं।)

(सीता जाती है।)

(दुर्मुख आता है।)

दुर्मुख—महाराज की जय हो।

राम—कहो भाई, नगर का क्या समाचार है ?

दुर्मुख—सब नगर-निवासी सुखी हैं, वे महाराज की जयजयकार मनाते हैं।

राम—वे क्या कहते हैं, विस्तार से कहो !

दुर्मुख—महाराज !

राम—कहो, सब कुछ निर्भय कहो !

दुर्मुख—नगर का एक धोबी है।

राम—धोबी ? उसे क्या दुःख है ?

दुर्मुख—उसकी स्त्री बिना उससे कहे पीहर चली गई थी।

राम—उसे पति की आज्ञा लेनी चाहिए थी।

दुर्मुख—महाराज, जब वह लौटकर दूसरे दिन आई, तो धोबी ने उसे बहुत पीटा।

राम—बड़ा बुरा किया। स्त्री को पीटना……

दुर्मुख—और कहा……

राम—क्या कहा ?

दुर्मुख—कैसे कहूँ ?

राम—कहो, क्या कहा ?

दुर्मुख—कहा क्या……मुझे भी राम समझ लिया है कि जिसने राक्षस के घर में रही स्त्री को घर में रख लिया।

राम—आह ! यह कहा ?

दुर्मुख—महाराज, दास को क्षमा हो।

राम—तुम्हारा कोई दोष नहीं है ? अच्छा अब तुम जाओ !

(रोता हुआ जाता है।)

राम—(स्वगत) अरे, हृदय, तू फट जा। साध्वी सीता अब जन-जन की आलोचना की वस्तु हो गई। (सोचकर) मैंने अपनी सदा बलि दी और अब सबसे बड़ी बलि दूँगा। प्रजा के लिए गर्भवती सीता को त्याग दूँगा। हाय, वह राजप्रासाद में मेरी प्रतीक्षा कर रही होगी प्रातःकाल वह उमंग में भरी गंगातीर जायेगी। वह फिर वहाँ से लौट कर न आयेगी। सीते, अरी जनक की दुलारी, तेरा भाग्य कैसा है ? पापी राम की स्त्री बनने का फल पा। हाय रे राजधर्म ! (रोते हैं,

फिर आँसू पोंछकर) (पुकारकर) पहरे पर कौन है ?

(कंचुकी आता है ।)

कंचुकी—महाराजाधिराज की जय हो। सेवक उपस्थित है।

राम—देखो, भाई लक्ष्मण को अभी भेज दो।

कंचुकी—जो आज्ञा महाराज। (जाता है।)

राम—(स्वगत) राजा, राजा, यह राजपद सोने की बेड़ी है। यह सिंहासन विष का भरा प्याला है। राजा एक ऊँचे पहाड़ की चट्टान है, जिसकी ऊँचाई पर लोग डाह करते हैं। जो गर्मी में अकेला तपता है और जाड़ों में बर्फ में ठिठुरता है। (लक्ष्मण के आने की आहट पाकर) कौन है ? भाई लक्ष्मण यहाँ आओ, और निकट। मेरे सुख-दुःख के साथी भाई ! अरे वीर ! (फूट-फूट कर रोते हैं।)

लक्ष्मण—अरे, किसने महाराज को दुःखित किया ? देव, गन्धर्व, राक्षस और मनुष्य जो अपराधी होगा, उसे मैं जीता न छोड़ूँगा। अरे, महाराज मूर्छित हो गये ! दौड़ो।

राम—(होश में आकर) नहीं भैया, मैं अच्छा हूँ। वत्स लक्ष्मण, अधीर मत होना।

लक्ष्मण—महाराज, क्या कह रहे हैं ?

राम—वत्स लक्ष्मण, तुम मुझे सदा महाराज ही कहते हो, भैया नहीं कहते।

लक्ष्मण—आप महाराज तो हैं ही।

राम—अच्छी बात है। तो लक्ष्मण, एक राजाज्ञा है।

लक्ष्मण—कहिए।

राम—गंगा के उस पार······

लक्ष्मण—भगवान् वाल्मीकि के आश्रम में······

राम—नहीं, नहीं। आश्रम के पास, देवी सीता को छोड़ आओ।

लक्ष्मण—छोड़ आऊँ ?

राम—हाँ।

लक्ष्मण—क्यों महाराज ?

राम—यह राजाज्ञा है।

लक्ष्मण—महाराज !

राम—अब कुछ मत पूछो लक्ष्मण !

लक्ष्मण—क्या महाराज ने देवी सीता को त्याग दिया ?

राम—हाँ।

लक्ष्मण—उनका अपराध ?

राम—पूछो मत।

लक्ष्मण—महाराज, आप गर्भवती स्त्री को त्याग रहे हैं।

राम—मैं आज्ञा दे चुका।

लक्ष्मण—दुहाई महाराज की ! मैं विद्रोह करूँगा।

राम—राजाज्ञा हो चुकी; तुम्हें इसका पालन करना होगा।

लक्ष्मण—महाराज, मुझे मार डालिए।

राम—लक्ष्मण, राजाज्ञा का पालन करो।

लक्ष्मण—हाय, महाराज !

राम—जाओ वत्स ! सूरज निकलने से पहले। समझ गये ?

लक्ष्मण—(छाती में घूँसा मार कर) सूरज निकलने से पहले, मैं मर जाऊँ तो अच्छा।

(रोते हुए जाते हैं।)

दूसरा दृश्य

(समय—मध्याह्न। वन में गङ्गा के किनारे बाल्मीकि के आश्रम के पास सीता और लक्ष्मण).

सीता—लक्ष्मण, आज मैं कितनी प्रसन्न हूँ।

लक्ष्मण—हाँ, भाभी।

सीता—पर तुम बड़े उदास हो रहे हो !

लक्ष्मण—क्या मैं ? नहीं तो। अब उतरिए। महात्मा वाल्मीकि का आश्रम आगया।

सीता—क्या सच ? अहा ! ऋषि के दर्शन करके आज आँखें सफल होंगी। लक्ष्मण, महाराज कितने अच्छे हैं।

लक्ष्मण—हाँ भाभी।

सीता—ऋषियों की कुटी से होम का धुआँ कैसा उठ रहा है ! ब्रह्मचारी वेदपाठ कर रहे हैं। उनकी ध्वनि कैसी प्यारी लग रही है।

लक्ष्मण—हाँ, भाभी !

सीता—मैं आज गंगा में खूब विहार करूँगी। सुन रहे हो, न लक्ष्मण !

लक्ष्मण—हाँ, भाभी !

सीता—अरे ! तुम किस सोच में खड़े हो वत्स ? आओ, इस पत्थर पर थोड़ा बैठकर आराम कर लें।

लक्ष्मण—भाभी ! मैं अब जाऊँगा।

सीता—वाह ! देवर जी। आये देर न हुई, अभी जाओगे ! मैं तो आज दिन भर वन-विहार करूँगी।

लक्ष्मण—भाभी, महात्मा वाल्मीकि के आश्रम की सीधी राह यह है।

सीता—देख तो रही हूँ, परन्तु हम वहाँ गंगा-स्नान करने चलेंगे।

लक्ष्मण—भाभी, अब मैं जाऊँगा।

सीता—कहाँ ?

लक्ष्मण—अयोध्या को।

सीता—अब हम नहीं चलेंगे !

लक्ष्मण—पर मैं जाऊँगा, भाभी।

सीता—और मैं ?

लक्ष्मण—आप यहीं रहेंगी।

सीता—अकेली ?

लक्ष्मण—महात्मा वाल्मीकि का आश्रम तो पास ही है।

सीता—तुम्हारा अभिप्राय क्या है ?

लक्ष्मण—महाराज की आज्ञा है।

सीता—क्या आज्ञा है ?

लक्ष्मण—महाराज की यही आज्ञा है कि देवी सीता को वन में महात्मा वाल्मीकि के आश्रम के पास छोड़ आओ।

सीता—किस लिए ?

लक्ष्मण—मैं नहीं जानता।

सीता—तो तुम मुझे इस वन में अकेली छोड़कर चले जाओगे।

लक्ष्मण—महाराज की यही आज्ञा है।

सीता—अकेली वन में छोड़ जाने की ? मुझे ? गर्भिणी को ?

लक्ष्मण—देवि, विपत् में धैर्य ही रक्षा करता है।

सीता—तो आर्यपुत्र के दर्शन अब न हो सकेंगे ?

लक्ष्मण—भाभी मेरा, हृदय फटा जा रहा है।

सीता—रोते हो वत्स लक्ष्मण ? छिः !

लक्ष्मण—भाभी !

सीता—जाओ तुम अयोध्या को आर्यपुत्र से कहना—

लक्ष्मण—क्या ?

सीता—कहना—महाराज अभागिनी सीता ने कहा है कि जब पहले राजलक्ष्मी आपकी गोद में आई थी, तब मैं आपको वन में ले भागी थी। अब राजलक्ष्मी की बारी है कि उसने मुझे आपसे दूर करके वन में भगा दिया है। इसमें आपका दोष नहीं। मेरे भाग्य का दोष है। मैं आपके बिना कभी नहीं रहती, तुरन्त प्राण त्याग देती पर आपका तेज मेरे

शरीर में है। इसलिए पुत्र के जन्म लेने तक मैं सूर्य में दृष्टि लगा कर तप करूँगी कि जिससे फिर मुझे आप ही पति मिलें।

लक्ष्मण—भाभी ! (मूर्छित हो जाते हैं।)

सीता—अरे, मूर्छित होकर गिर गये। अब मैं क्या करूँ।

लक्ष्मण—(होश में आकर) नहीं भाभी। अब मैं ठीक हो गया। जाता हूँ।

सीता—जाओ, तुम्हारा मार्ग शुभ हो वत्स।

लक्ष्मण—अच्छा।

सीता—अब तुम जाओ वत्स लक्ष्मण।

लक्ष्मण—मैं चला भाभी। (जाते हैं।)

सीता—गये, तेज और विनय के अवतार, बड़े भाई की आज्ञा को ईश्वर की आज्ञा मानने वाले यति लक्ष्मण, लक्ष्मण, धन्य देवर। तुम-सा देवर, तुम-सा भाई जगत में न हुआ, न होगा। लो, वे गंगा-पार उतर गये, वे रथ पर बैठ गये। सपने की तरह अयोध्या के सब सुख खो गये। हाय रे सीता के भाग्य ! (मूर्छित हो जाती है।)

(दो ऋषिकुमार आते हैं।)

दोनों ऋषिकुमार—अरे ! यह कौन स्त्री यहाँ मूर्च्छित पड़ी है, अथवा मर गई है ? (झुककर देखते हैं।)

दूसरा—अब क्या किया जाय ? किसे पुकारें ? तुम जाकर गुरुजी को सूचना दे दो कि एक स्त्री गंगा के किनारे मूर्च्छित पड़ी है। (देखकर) लो, वे गुरुजी स्नान करने इधर ही आ रहे हैं।

(वाल्मीकि जी आते हैं।)

दोनों—गुरुजी, प्रणाम।

गुरु वाल्मीकि—चिरंजीव रहो पुत्रो। यहाँ तुम क्या कर रहे हो।

दोनों ऋषिकुमार—आर्य, यह स्त्री यहाँ मूर्च्छित पड़ी है ।

गुरु वाल्मीकि—(देखकर) अरे ! यह तो रघुकुल की राजरानी सीता है ।

दोनों ऋषिकुमार—महारानी सीता हैं ?

गुरु वाल्मीकि—पुत्रो, यत्न करो । कमंडलु से जल के छींटे दो । सचेत करो इन्हें ।

(छींटे देने से सीता सचेत हो जाती है ।)

सीता—आह ! वह सपना भी टूट गया । (देखकर) आप कौन हैं ऋषिकुमार ? (ऋषि को देखकर) और आप ?

दोनों ऋषिकुमार—भगवती, ये हमारे गुरु महर्षि वाल्मीकि हैं ।

सीता—ऋषिवर, प्रणाम । अभागिनी सीता को क्या आसरा मिलेगा ?

वाल्मीकि—पुत्री, तुम धैर्य धारण करके भाग्य के विधान को देखो । पुत्रो, देवी को आश्रम में ले जाकर भगवती आत्रेयी को सौंप दो । उनसे कह देना कि वह रघुकुल राजरानी सीता हैं, इनको कोई दुःख न हो ।

दोनों ऋषिकुमार—जो आज्ञा महाराज । चलिए महारानी ।

(जाते हैं ।)

तीसरा दृश्य

(अयोध्या में लक्ष्मण लौटकर महाराज राम को संदेश देते हैं ।)

लक्ष्मण—महाराज की जय हो ।

राम—आ गये भैया लक्ष्मण ?

लक्ष्मण—हाँ महाराज !

राम—सीता कहाँ छोड़ी भैया ?

लक्ष्मण—महात्मा वाल्मीकि के आश्रम के पास, वन में।

राम—वह आश्रम में पहुँच गई होंगी भया ?

लक्ष्मण—पहुँच गई होंगी महाराज !

राम—लक्ष्मण, क्या क्रुद्ध हो रहे हो भैया ?

लक्ष्मण—महाराज ! सेवक स्वामी पर कैसे क्रुद्ध हो सकता है ?

राम—भैया लक्ष्मण !

लक्ष्मण—अब महाराज की आज्ञा हो, तो मैं राज-परिवार की सब बधुओं को सरयू में डुबो आऊँ। आज्ञा दीजिए महाराज !

राम—भैया, शान्त हो।

लक्ष्मण—महाराज जो मुझे ज्ञात होता कि मुझे ऐसा निठुर काम करना पड़ेगा, तो मैं पहले ही प्राण त्याग देता।

राम—भाई, राजधर्म बड़ा कठोर है।

लक्ष्मण—यह दास उसे नहीं समझता महाराज। भगवती सीता को मैं गंगा के उस पार वन में असहाय धरती में मूर्च्छिता पड़ी छोड़ आया हूँ।

राम—मूर्च्छिता ?

लक्ष्मण—वे एकटक मेरा लौटना देखती रहीं। जब मैं इस पार आकर रथ पर चढ़ चलने लगा, तो वे कटे पेड़ की भाँति गिर पड़ीं।

राम—हाय ! देवी सीता।

लक्ष्मण—मैं कुछ भी न कर सका। महाराज ! आप मुझे मरवा डालिए। हाय रे राजधर्म !

राम—इस राजधर्म को धिक्कार है। भाई लक्ष्मण, धीरज धरो। हाय ! गुरु वसिष्ठ, भगवती अरुन्धती और सब माताएँ यह सब सुनेंगी, तो क्या कहेंगी ? उन्हें कैसे समझाया जायगा ?

लक्ष्मण—वे सब सुन चुकी हैं महाराज।

राम—सुन चुकी हैं ? तो उन्होंने इस निर्दयी राम पर क्रोध नहीं किया ? शाप नहीं दिया ?

लक्ष्मण—महाराज, वे सब अयोध्या छोड़कर चले गये हैं।

राम—अयोध्या छोड़ कर चले गये हैं ?

लक्ष्मण—हाँ, महाराज !

राम—क्यों भाई ?

लक्ष्मण—भगवती अरुन्धती ने कहा कि सीता के बिना हम अयोध्या में न रहेंगे।

राम—भगवती अरुन्धती ने ?

लक्ष्मण—जी, हाँ। और सब माताओं ने भी उन्हीं का साथ दिया।

राम—सब माताओं ने ?

लक्ष्मण—गुरु वसिष्ठ ने भी यही ठीक समझा।

राम—तो वे भी इस दास को त्याग गये ? तो अब केवल तुम ही इस पापी राजा की परछाईं की भाँति यहाँ बचे हो।

लक्ष्मण—आर्य, भरत भगवती मांडवी को साथ लेकर कहीं दूर चले गये हैं। इनके साथ सहस्रों पुरवासियों और राजकर्मचारियों ने भी अयोध्या छोड़ दी है। राजमहल में केवल बहुएँ और उनकी कुछ चेरियाँ रह गई हैं। आज्ञा हो तो उन्हें भी सरयू में डुबा दिया जाय ?

राम—हाय ! भाई सबने मुझे त्याग दिया। अब तुम भी ऐसी कठोर बात कहते हो। (रोते हैं।)

लक्ष्मण—अरे ! महाराज, यह आप बालक की भाँति रोने लगे।

राम—हाय ! सीता तुमने मेरे लिए राजभोग तजकर वन में दुःख सहा। फूलों पर डर कर पैर रखने वाली तुम भाग्यहीन इसके साथ नंगे

पैर वन में फिरीं। राक्षस रावण ने तुम्हें हर लिया, तो भी तुमने इस निर्दयी राम को न भुलाया। आज बिना अपराध मैंने तुम्हें त्याग दिया। जनकदुलारी ! अरी अयोध्या की आंखों की पुतली, उस निर्जन वन में मेरे रहते तू असहाय गर्भ का बोझ लिये पड़ी है। धिक्कार है ! मुझे धिक्कार ! धिक्कार !

(मूच्छित हो जाते हैं।)

लक्ष्मण—अरे ! दौड़ो। महाराज मूच्छित हो गये। हाय ! दास-दासी भी सब महाराज की सेवा से जी चुराने लगे। उठिए महाराज, हाय ! मैं अकेला क्या करूं ? अरे ! कोई आओ। कोई नहीं आता ! महाराज को सबने त्याग दिया। महाराज, सावधान हूजिए। हाय रे राजधर्म।

चौथा दृश्य

(गुरु वसिष्ठ और श्रीराम बातें कर रहे हैं।)

वसिष्ठ—रामभद्र, तुम किस लिए अब मेरे पास आये हो ?

राम—ऋषिवर, यह दास अब और कहां जाय ? आप कहिए, मैं क्या करूं ?

वसिष्ठ—कठिनाई क्या है, रामभद्र ?

राम—गुरुदेव, छोटे-छोटे राजाओं की मनमानी से प्रजा में शान्ति नहीं रहती है।

वसिष्ठ—तब ?

राम—एकछत्र राज्य की बड़ी आवश्यकता है।

वसिष्ठ—तुम प्रतापी राजा हो राम। एकछत्र राज्य की स्थापना करो।

राम—ऋषिवर, मैं अकारण किसी पर चढ़ाई नहीं करूंगा।

वसिष्ठ—तब एक बात है।

राम—कौन बात गुरुदेव ?

वसिष्ठ—अश्वमेध यज्ञ करो।

राम—अश्वमेध ?

वसिष्ठ—हाँ, रामभद्र ।

राम—गुरुदेव !

वसिष्ठ—क्यों राम, क्या हुआ ?

राम—आर्य, मैं भाग्यहीन, पत्नी और पुत्र रहित राजा हूँ। यज्ञ का अधिकारी नहीं।

वसिष्ठ—रामभद्र, तुम दूसरा विवाह करो। पत्नी और पुत्र तुम्हें प्राप्त होंगे ।

राम—हाय ! गुरुदेव। आप यह क्या कह रहे हैं। (रोते हैं।)

वसिष्ठ—रामभद्र, तुम तो बालक की भाँति अधीर हो गये वत्स !

राम—गुरुदेव, सीता को त्यागे आज अठारह वर्ष व्यतीत होते हैं।

वसिष्ठ—हुआ ऐसा ही है।

राम—मैंने ऐसी निठुराई करके अपने ही ऊपर अत्याचार किया है। दूसरा विवाह करना सीता पर अत्याचार है।

वसिष्ठ—धन्य रामभद्र ! धन्य हो तुम !! धन्य तुम्हारी निष्ठा धन्य तुम्हारा प्रेम !!!

राम—तो भगवन्, अश्वमेध नहीं हो सकेगा ?

वसिष्ठ—हो सकेगा राम। सीता की सोने की मूर्ति तुम्हारी अर्धाङ्गिनी होगी।

राम—मेरे अहोभाग्य, भगवन् ! मैं उस मूर्ति में पवित्रात्मा सीता को देख पाऊंगा तो !

वसिष्ठ—अवश्य। राम, तुम यज्ञ की तैयारी करो।

—जो आज्ञा ऋषिवर।

वसिष्ठ—और स्वयं महात्मा वाल्मीकि के आश्रम में जाकर उन्हें निमन्त्रण दे आओ।

राम—जो आज्ञा (संकोच सहित) परन्तु ऋषिवर, और सब माताएं भी जायें, तो अच्छा।

वसिष्ठ—रामभद्र ऐसा ही। मैं उनसे कह दूंगा।

राम—तो दास चला। माताओं को मुंह दिखाने की ढिठाई मुझसे न होगी।

वसिष्ठ—समय पर सब कुछ हो रहेगा, राम। जाओ, अपना कार्य करो। कुंठित न हो।

राम—अभिवादन करता हूं, गुरुदेव।

वसिष्ठ—तुम्हारा कल्याण हो रामभद्र। (जाते हैं।)

पांचवां दृश्य

(भगवान् वाल्मीकि के आश्रम में लव और कुश
सीता से बातें करते हैं।)

लव—माता, आज हम तुमसे वह भेद पूछ कर रहेंगे।

सीता—कौन-सा भेद पुत्र ?

कुश—नहीं बताओगी तो रूठ जायेंगे, बोलेंगे नहीं।

सीता—क्यों मेरे लाल, दुखिया मां से रूठोगे ?

लव—तो बता दो आज।

कुश—सब ऋषिकुमार हमें चिढ़ाते हैं।

लव—हंसी करते हैं। कहते हैं बताओ, तुम्हारे पिता कौन हैं ?

सीता—प्यारे पुत्रो, तुम्हारे पिता महात्मा वाल्मीकि ही तो हैं ?

कुश—नहीं, मां। वह तो हमारे गुरुपद है।

सीता—पुत्रो, गुरु ही पिता होता है।

लव—वाह ! गुरु तो सब के गुरु हैं, पर सबके पिता भी तो और हैं ? यह हम जानते हैं।

कुश—हमें वहकाओ मत अम्माँ ।

सीता—क्यों वेटा, अभागिनी माँ पर विश्वास नहीं करते ।

(आँसू पोंछती है ।)

लव—रोने क्यों लगी माता ? तुमसे जव पिता जी का नाम पूछते हैं, तभी तुम रोने लगती हो ।

कुश—रो मत अम्मा, अव हम कभी न पूछेंगे ।

सीता—मेरे नयनदुलारो, तुम्हीं मेरे जीवनधन और आँखों के उजाले हो । तुम जीते रहो पुत्रो ।

लव—तुम हमारी वड़ी अच्छी अम्माँ हो । हो न मां ?

सीता—अरे पुत्रो, मैं तो तुम्हारी धाय हूँ—दासी ।

कुश—ऐसा न कहो अम्माँ ।

सीता—लाल, तुम्हारी माँ वड़ी भारी महारानी थीं उनका वड़ा प्रताप था । उनके वड़े-वड़े महल थे । राजधानी थी । हाथी, घोड़े, रथ थे ।

(वहुत से ऋषिकुमार कोलाहल करते हैं ।)

एक ऋषिकुमार—कुमार, घोड़ा एक पशु होता है न ? ऐसा सुना था, वह आज यहाँ आया है ।

लव—घोड़ा एक पशु है और वह युद्ध में काम आता है । कहाँ देखा तुमने घोड़ा ?

दूसरा ऋषिकुमार—आश्रम के उस पार है । उसकी वड़ी-सी पूँछ है । उसे वह वार-वार हिला रहा है ।

तीसरा ऋषिकुमार—उसकी गर्दन वड़ी लम्वी है ।

चौथा ऋषिकुमार—पैर में चार खुर हैं ।

पांचवां ऋषिकुमार—भूख लगने पर घास खाता है ।

छठा ऋषिकुमार—आम के वरावर लीद करता है ।

सातवां ऋषिकुमार--चलो कुमार, इसे पकड़ लें। बड़ा मजा होगा।

लव--चलो फिर। देखें, कैसा वह घोड़ा है।

(सब जाकर घोड़े को देखते हैं।)

(घोड़ा हिनहिनाता है।)

लव--हां, यही है घोड़ा। ठहरो, मैं इसे बांधता हूं। तुम उसे ढेला मार कर रोको।

सब ऋषिकुमार--अहा-अहा, बड़ा मजा है।

(सब चिल्लाते हैं, घोड़ा हिनहिनाता है।)

(सिपाही आते हैं।)

एक सिपाही--अरे! किसे अपनी जान भारी हुई है, जिसने अश्वमेध का घोड़ा रोका है। तुमने क्या महाप्रतापी राजा राम का नाम नहीं सुना? जिन्होंने रावण के वंश का नाश कर दिया, उनसे जो वीर लोहा ले, वह यह घोड़ा रोके।

कुश--अरे यह तो बड़े घमंड की बातें करता है। सिपाहियो, क्या तुम्हारे महाराज-सा कोई शूर ही नहीं है?

दूसरा सिपाही--अरे ऋषिकुमार, क्यों गाल बजाते हो? कुमार चन्द्रकेतु इस घोड़े की रखवाली कर रहे हैं। वे जब तक आवें, तब तक घोड़े को छोड़ दो और यहां से खिसक जाओ। इसी में भला है।

सब ऋषिकुमार--छोड़ दो कुमार, इनके चमकीले शस्त्रों से हमें डर लगता है। चलो, हम सब छलांगें मारते हुए आश्रम को भाग चलें।

लव--(हँसकर) क्या चमकीले शस्त्रों से हम डरते हैं। ठहरो, तनिक। देखो--इस मेरे धनुष के खेल।

(धनुष पर डोरी चढ़ाता है।)

सब ऋषिकुमार--अरे कुमार को क्रोध आ गया।

दूसरे--और वे बाणों की वर्षा करने लगे।

(सिपाही घायल होकर चिल्लाते हैं; कोलाहल मचता है।)

(नेपथ्य में)

—सावधान रहो, रथ दौड़ाते हुए कुमार चन्द्रकेतु आ रहे हैं।

(कुमार चन्द्रकेतु आते हैं।)

चन्द्रकेतु—आर्य सुमन्त्र, हमारा रथ उसी वीर ऋषिकुमार के सामने ले चलिए। अरे यह तो रघुवंशियों की भाँति लड़ रहा है।

सुमन्त—क्या कहने हैं। वह ऋषिकुमार महावीर है।

चन्द्रकेतु—परन्तु उस अकेले पर इतनों का इकट्ठा होकर हल्ला बोलना तो ठीक नहीं।

सुमन्त—पर वे सब उसका कर ही क्या सकते हैं? वह तो सबको मारे डाल रहा है! देखो, वह हमारी सेना भागने लगी!

चन्द्रकेतु—तो शीघ्रता कीजिए आर्य! हमारा रथ जल्द वहाँ पहुँचाइये।

सुमन्त—अच्छा कुमार! लो, यह वीर तुम्हारी ललकार सुनकर यहीं आ गया।

लव—कुमार चन्द्रकेतु! लो, मैं आ गया।

(कोलाहल मचता है।)

लव—(हँसकर) अरे, देखो, यह हारे हुए सेनापति फिर मेरे सामने आने का साहस करते हैं।

चन्द्रकेतु—ठहरो ऋषिकुमार! उनकी चिन्ता मत करो। मैंने इन्हें रोक दिया। पर तुम पैदल और मैं रथ पर, यह ठीक नहीं, मैं भी नीचे आता हूँ। आर्य, रथ रोक दीजिए। मैं पैदल लड़ूँगा?

सुमन्त—किस लिए कुमार?

चन्द्रकेतु—इस वीर ऋषिकुमार का आदर करने के लिए। ऋषिकुमार, यह रघुवंशी चन्द्रकेतु आपको अभिवादन करता है!

लव—महाराज, बाल्मीकि-शिष्य लव आपको अभिवादन करता है।

राम—आयुष्मान् होओ। आओ कुमार, मेरी गोद में बैठो। तुम्हें देखकर तो जैसे प्राण हरे हो गये। तुम्हारा नाम क्या है ?

(अनुताप के ढंग पर)

लव—आर्य, दास का नाम 'लव' है। हाय ! श्री महाराज तो मुझसे इतना प्यार करते हैं और मैं लड़ बैठा।

राम—पुत्र, तुम्हारी वीरता तुम्हें ही सजती है। कुमार ! तुम किस भाग्यवान् के पुत्र हो ?

लव—महाराज, हम बाल्मीकि के पुत्र हैं।

राम—तो तुम अकेले हो ?

लव—नहीं महाराज, बड़े भाई आर्य कुश हैं। आर्य कुश ! स्वयं महाभाग महाराज रघुपति यहाँ विराजमान हैं। इन्हें अभिवादन कीजिए।

कुश—ये ही रामायण के नायक महाराज महाभाग राम हैं ! महाराज, यह बाल्मीकि-पुत्र कुश आपको अभिवादन करता है।

राम—आयुष्मान् होओ ! अरे ! मेरे दाहिने अंग फड़कने लगे। इन बालकों को देखकर तो इन्हें छाती से लगाने को जी चाहता है। आओ आयुष्मानो, मेरी गोद में बैठो।

कुश—महाराज, धूप बहुत तेज़ है। आइये, इस साल के पेड़ की छाँह में बैठिए।

राम—अच्छा पुत्रो, चलो। अहा ! इन बच्चों की मुखाकृति देवी सीता से कितनी मिलती है। हाय मेरे पुत्र भी इतने बड़े हुए होते ? अब इन बातों से क्या ? (ठण्डी साँस लेकर) हाय देवी सीता।

लव—महाराज क्या सोच रहे हैं। एँ ! यह क्या ? महाराज तो रो रहे हैं।

राम—(आँसू पोंछ कर) कुछ नहीं पुत्रो, कुछ नहीं। यह

अभागा मन तो यों ही अधीर हो जाता हैं। हाँ, यह तो कहो। सुना है, महात्मा वाल्मीकि एक काव्य रच रहे हैं, रामायण।

लव—हाँ, महाराज। उसमें श्रीमहाराज का ही तो वर्णन है।

राम—कैसा वर्णन है, सुनूँ तो।

लव—एक श्लोक तो आज ही पढ़ा है।

राम—सुनाओ पुत्रो, कैसा श्लोक है ?

लव कुश—

सीताजी श्रीराम की प्रिया रही अत्यन्त ॥
सीता जी के गुणों से राम में प्रेम अनन्त ॥

राम—हाय ! देवी सीते ! तुम ऐसी थीं।

(एक ऋषिकुमार आता है।)

ऋषिकुमार—(दूर से पुकारकर) अरे मित्रो, तुम नहीं जानते आज आश्रम में बड़े-बड़े अतिथि आये हैं इसी से गुरुजी ने हमें छुट्टी दे दी है।

लव—कौन-कौन आये हैं ?

कुश—(देखकर) अरे ! वे सब तो इधर ही आ रहे हैं।

लव—पर इन सबके आगे चीथड़ा लपेटे हुए यह कौन है ?

राम—(खड़े होकर) वे महात्मा वसिष्ठ हैं। इनके साथ भगवती अरुन्धती और माता कौशल्या भी हैं। (स्वगत) हाय ! मुझ पर तो विपत् का पहाड़ टूट पड़ा। अब कहाँ पापी मुँह छिपाऊँ ? (प्रकट) अरे पुत्रो, इन गुरुजनों के आगे बढ़कर सत्कार से प्रणाम करो।

(सब कुमार आगे बढ़ते हैं, राम एक ओर को जाते हैं।)

कौशल्या—अहा ! देखो, आज इन ऋषिकुमारों को छुट्टी हो गई है। बेचारे मग्न होकर खेल-कूद कर रहे हैं। अरे ! इनके बीच यह कौन देवता के जैसा बैठा था। कहीं मेरे राम तो नहीं। गुरुदेव, आप तो राम को पहचानते हैं। लो, वे हमें देखकर खिसक गये। हाय ! राम।

वसिष्ठ—रामभद्र ही हैं। महारानी, तुमने इन दोनों बालकों को भी देखा, जो उनके कन्धे पर हाथ धरे खड़े थे। लो, वे सब इधर ही आ रहे हैं।

कौशल्या—ऋषिवर, ये दोनों बालक कौन हैं? ये तो क्षत्रिय बालक दीख पड़ते हैं। पीठ पर तरकस, हाथ में धनुष, सिर पर जटा, मजीठ की रंगी धोती, मूँज की करधनी, पीपल का डंडा।

वसिष्ठ—ये क्षत्रियकुमार ही हैं महारानी।

कौशल्या—(आँखों में आँसू भर कर) राम जब इतने बड़े थे तो बिल्कुल ऐसे ही थे। हाय! राम।

वसिष्ठ—चलो महारानी, हम सब महात्मा वाल्मीकि के पास अपने सन्देह दूर करें।

कौशल्या—चलिए ऋषिवर।

(सब जाते हैं।)

छठा दृश्य

(वाल्मीकि का आश्रम। सीता और उसकी सखी वासन्ती)

सीता—अरी सखी, सुना है, वे आये हैं।

सखी—कौन देवी?

सीता—वही मेरे जीवनधन, प्राणों से प्रिय, महाराज रघुपति।

सखी—सुना तो मैंने भी है। तो देवी तुम गंगा में स्नान करके नई मृगछाला पहन लो। लाओ, मैं तुम्हारे उलझे हुए बालों को गूँथ दूँ। फूलों से सजा दूँ।

सीता—क्यों सखी? यह किस लिए?

सखी—देवी, एक बार आँख भरके तुम्हें मैं वनदेवी के रूप में देखना चाहती हूँ। हाय! मुरझाई हुई बेल की तरह तुम्हारी सोने की देह........

सीता—सखी, यह देह आज मैं गंगा में विसर्जन करूँगी।

सखी—ऐसी बात न कहो देवी। तुम्हारा यह पुण्य शरीर······

सीता—यह पापी शरीर।

सखी—नहीं, नहीं। पति और पुत्र के रहते ऐसा न कहो। पर महाराज को ऐसा नहीं करना चाहिए था।

सीता—प्यारी सखी, रघुकुल-कमल की निन्दा मत करो।

सखी—धन्य सती। आज भी तुम्हारे मन में उनका वैसा ही प्यार है।

सीता—प्यार की सुधाधारा पीकर अठारह वर्ष से रो रही हूँ सखी, पर आज मैं मरूँगी।

सखी—चुप रहो देवी। ऐसी बातें न करो।

सीता—मैं कैसे उन्हें पापी मुँह दिखाऊँगी ? मैं अनाथ हूँ।

सखी—महाराज के रहते ?

सीता—हाय रे मेरा भाग्य ! (रोती है।)

(राम आते हैं।)

राम—यहीं-तो देवी सीता को मैंने त्यागा था। हाय ! सीता, तुम कहाँ हो ?

सीता—अरे ! यह तो वही पुरानी पहचानी हुई बोली है। इतने दिनों बाद कानों में फिर आज अमृतवर्षा हुई।

सखी—देवी संभल जाओ। वे इधर ही आ रहे हैं।

सीता—हाँ, वे ही हैं। कितने दुर्बल हो गये हैं। मुँह पीला हो गया है, बाल पक गये हैं। सखी, मेरा सिर घूम रहा है।

राम—हाय ! सीता, प्यारी सीता।

सीता—हाय ! आर्यपुत्र।

राम—अरे ! मेरे दुख-सुख की संगिनी जनकदुलारी सीता······

(मूर्च्छित हो जाते हैं।)

सीता—अरी सखी, वे तो अभागिनी को पुकारते-पुकारते ही मूर्च्छित हो गये !

सखी—चलो, देवी। उनका कुछ यत्न करें।

सीता—सखी, मेरा हाथ पकड़कर चलो। मेरी आँखें आँसुओं से अन्धी हो रही हैं और मेरे पाँव लड़खड़ा रहे हैं।

(दोनों मूर्च्छित राम के पास जाती हैं।)

सखी—देवी, महाराज के शरीर पर धीरे-धीरे हाथ फेरो।

राम—(मूर्च्छा में) चन्द्रमा नहीं है। दूर तारे टिमटिमा रहे हैं। सन्नाटा छा रहा है। नगरवासी सो रहे हैं। पर उनके राजा की आँखों में नींद नहीं है। कितने दिन बीत गये। सीता, कहाँ हो? कहाँ हो? (पुकार कर) आओ सीते, आओ।

सीता—अरी सखी, आर्यपुत्र का यह विलाप तो सहा नहीं जाता। कैसे इन्हें चैतन्य करूँ?

सखी—देवी, धीरे-धीरे महाराज के शरीर पर हाथ फेरो।

राम—अहा! यह किसने छुआ? प्राण हरे हो गये। सूखते धान पर पानी पड़ा! बोलो सीते, बोलो, एक बार वह मीठा स्वर सुनने को तरस रहा हूँ, अरी प्रियंवदा सीते!

सीता—इतने दिन बाद सुध ली आर्यपुत्र, अभागिनी दासी तो चरणों ही में है।

राम—कौन बोला यह? कितना मधुर! कितना प्रिय!

सीता—यह अभागिनी आप की दासी सीता है।

राम—हाय! प्रिये, मेरे रहते तुम्हारी यह दशा हो गई। अरे! देवी का यह रूप देखने से पूर्व ही मेरी आँखें फूट जायँ।

सीता—महाराज, इस जन्म में दर्शन हो गये। जीवन सफल होगया। अरे! वे भगवती अरुन्धती और माता कौशल्या इधर ही आ रही हैं।

राम—उन्हें यह अधम राम कैसे मुँह दिखावेगा?

(कौशल्या आती है ।)

कौशल्या—भगवती, वह रामभद्र ही हैं न ? अब तो पहचाने भी नहीं जाते । अरे पुत्र राम !

अरुन्धती—महारानी, वहाँ सौभाग्यवती सीता भी हैं ।

कौशल्या—तो सचमुच पुत्र और बहू में मेल हो ही गया ।

अरुन्धती—हाँ, महारानी । आओ, रामभद्र का संकोच दूर करें ।

(आगे बढ़कर जाती हैं ।)

राम—माता, यह कुपुत्र राम आपके चरणों में अभिवादन करता है ।

कौशल्या—रामभद्र, मेरे पुत्र, आओ, मेरी छाती को ठंडी करो (सीता को देखकर) अरी बेटी सीता, मेरी सुलक्षणा बहू, अरी तपस्विनी, तू धन्य है ।

सीता—पूज्ये, आपकी दासी सीता अभिवादन करती है ।

अरुन्धती और कौशल्या—सौभाग्यवती रहो । रामभद्र, तो तुमने सीता को ग्रहण किया न पुत्र ?

(एक ऋषिकुमार आता है ।)

ऋषिकुमार—आप सब को प्रणाम । विदेहराज जनक आप लोगों से मिलने आ रहे हैं ।

कौशल्या—हाय ! मैं कैसे उन राजर्षि को मुँह दिखाऊँगी ?

राम—माता, अपराधी तो मैं हूँ । मैंने ही तो जनकदुलारी को अनाथ बनाया था ।

(जनक आते हैं ।)

जनक—भगवती अरुन्धती, मोरध्वज जनक आपको प्रणाम करता है । (कौशल्या को देखकर) अरे ! क्या प्रजा पालने वाले राजा की माता भी यहीं हैं ? और मेरी बेटी सीता भी ? हाय ! हाय ! मेरी प्यारी बच्ची !

अरुन्धती—महाराज, महारानी कौशल्या ने तो इसी क्रोध से अठारह वरस तक रामभद्र का मुँह नहीं देखा। रामभद्र ने भी अपवाद के डर से यह काम किया था।

कौशल्या—हाय ! (मूर्च्छित हो जाती हैं।)

अरुन्धती—(घबराकर) महारानी मूर्च्छित हो गई।

जनक—मैंने बहुत कठोर बात कह दी, बुरा किया। यह महात्मा दशरथ की पत्नी बड़ी सती है। अरे मित्र दशरथ, तुम्हीं स्वर्ग में अच्छे रहे। हम जीवित रह कर यहाँ दुःख भोग रहे हैं।

कौशल्या—(चैतन्य होकर) वेटी जानकी, जब तू नई बहू बनकर महल में आई थी, उस समय का तेरा हीरे-मोतियों से सजा हुआ हँसता मुख मुझे याद है। अरे स्वर्गवासी महाराज तो तुझे अपनी कन्या ही कहा करते थे। आज हमारे रहते तेरी यह दशा हो गई !

अरुन्धती—महारानी, धीरज धरो।

कौशल्या—भगवती, अब इसकी क्या आशा है ?

(ऋषिकुमार आते हैं।)

ऋषि०—सबको प्रणाम। आप सबको गुरुदेव वाल्मीकि स्मरण करते हैं। वहाँ महामुनि वसिष्ठ भी बैठे हैं।

अरुन्धती—चलो रामभद्र। महारानी और विदेहराज, चलो, बेटी सीता सब कोई वाल्मीकि के पास चलें।

राम—चलिए भगवती।

(सब जाते हैं।)

सातवाँ दृश्य

(महात्मा वाल्मीकि, वसिष्ठ और राम, जनक, कौशल्या आदि)

राम—ऋषिवर, आपके चरणों में यह अधम राम अभिवादन करता है।

वाल्मीकि—राजा राम, तुम्हारी जय हो! कहो, राज्य में सब कुशल तो है?

राम—आपकी दया से सब कुशल है।

वाल्मीकि—सुना है, राजन्, तुम अश्वमेध यज्ञ कर रहे हो?

राम—हाँ, भगवन्! मैं आपको निमन्त्रण देने ही आया हूँ।

वाल्मीकि—बहुत अच्छी बात है। हाँ महाराज, इस यज्ञ में राजा की रानी कौन है?

राम—सीता की सोने की मूर्ति।

वाल्मीकि—क्या कहा?

राम—सोने की सीता।

वाल्मीकि—धन्य हो रामभद्र!

राम—गुरुदेव, मैं पत्नी-द्रोही धन्य हूँ? मैं महापापी हूँ!

(लव-कुश आते हैं।)

लव—गुरुदेव, हमसे अपराध हो गया।

वाल्मीकि—कैसा अपराध पुत्रो?

लव—हमसे इन पूज्य अतिथियों का अपमान हो गया।

वाल्मीकि—कैसा अपमान बच्चो?

लव—हमने अनजाने में अश्वमेध का घोड़ा पकड़ लिया और कुमार चन्द्रकेतु से युद्ध ठान बैठे।

राम—बच्चो, मैंने तुम्हारा वह अपराध क्षमा कर दिया।

(वाल्मीकि से)

—ऋषिवर, ये दोनों कुमार किस कुल के हैं? इन्हें देखकर तो हृदय उछलता है।

वाल्मीकि—महाराज राम, ये तुम्हारे ही समान उच्च कुल के हैं।

राम—इनका भाग्यवान् पिता कौन है ऋषिवर?

वाल्मीकि—अयोध्यापति राम।

राम—(उत्तेजित होकर) क्या कहा गुरुदेव ?

वाल्मीकि—शान्त हो रामभद्र। ये दोनों तुम्हारी ही सन्तान है। पुत्र लव कुश ! अपने प्रतापी पिता को प्रणाम करो।

राम—मेरे पुत्र, मेरे पुत्र, आओ बेटो ! छाती से लग जाओ। हाय रे ! राजधर्म। जनता अपनी सन्तान और बच्चों पर अधिकार होता है, केवल राजा का नहीं।

वाल्मीकि—तो रामभद्र, तुमने अपने पुत्रों को तो ग्रहण किया न ?

राम—हाँ, गुरुदेव।

वाल्मीकि—और सीता को ?

राम—सीता, सीता, भगवती सीता, हाय ! (रोते हैं।)

वाल्मीकि—राम, तुम्हें संकोच क्या है ?

राम—ऋषिवर, जो कारण तब था, वही तो अब भी है।

वाल्मीकि—रामभद्र, सीता पर यह बड़ा अन्याय है।

राम—भगवन्, इस राजधर्म पर ही धिक्कार है।

वाल्मीकि—(क्रोध से) अरे राजा, यह सती अठारह वर्ष तक तुम्हारे लिए रोती रही है। चातक की भाँति तुम्हारे नाम की रट लगाये रही है। अरे ! इसके पीले और उदास मुख की ओर तो देखो।

जनक—हाय ! बेटी !

कौशल्या—इतने बड़े राजा की रानी, वीर पुत्रों की माता, रघुकुल की बहू की आज यह दुर्दशा !

राम—माता, मैं राजधर्म में बंधा हूँ। जब तक प्रजा को विश्वास......

जनक—क्या कहा ? विश्वास ? अरे ! मेरी बेटी पर अविश्वास।

सीता—पिताजी, ठहरिए। आर्यपुत्र को मैं फिर अपनी परीक्षा दूंगी।

राम—और वह परीक्षा यहाँ बैठे गुरुजनों की दृष्टि में ठीक हुई, तो मैं तुम्हें ग्रहण करूँगा।

सीता—सब सावधान होकर देखें, मैं परीक्षा देती हूँ।

(हाथ जोड़कर पृथ्वी से)

—माता वसुन्धरे, जो मैंने आज तक पति को छोड़ और किसी का ध्यान भी किया हो, कभी स्वप्न में भी पति पर क्रोध न किया हो, और मैं पवित्र सती हूँ तो वसुन्धरे माँ, तुम अभी फट जाओ और मुझे अपनी गोद में ले लो।

(बड़े जोर की गड़गड़ाहट होती है भूचाल आता है। सब चिल्लाते हैं। धरती फटती है। सीता धरती में समा जाती है।)

विशाखदत्त

(नवीं शताब्दी)

मुद्राराक्षस

जीवन-परिचय

विशाखदत्त सामन्त वटेश्वरदत्त का पौत्र और महाराज पृथु का पुत्र था। मुद्राराक्षस नाटक से पता लगता है कि वह अर्थशास्त्र, राजनीति और ज्योतिष का पण्डित था। उसका नाट्य-शास्त्र का अध्ययन भी काफी था। काव्य में गौड़ी रीति का आधिक्य होने से अनुमान होता है कि वह गौड़ देश का निवासी था। भारतेन्दु पृथु को पृथ्वीराज चौहान ही मानते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि विशाखदत्त एक कुलीन परिवार का व्यक्ति था। इसने कुसुमपुर का वर्णन किया है। वास्तव में पाटलिपुत्र का ही दूसरा नाम कुसुमपुर था। धनञ्जय के दशरूपक में मुद्राराक्षस का नाम है। सरस्वतीकंठाभरण के तीसरे परिच्छेद में भी यह नाम है। इससे स्पष्ट है कि ईसवी दसवीं शताब्दी में यह नाटक काफी प्रसिद्ध हो चुका था।

कथा-सार

मगध देश में कुसुमपुर नामक राजधानी थी। वहाँ महाराज नन्द राज्य करते थे। उसकी राजरानी ने नव पुत्रों को जन्म दिया। उसी के अन्तःपुर में 'मुरा' नाम की एक दासी भी रहती थी। उससे भी एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम चन्द्रगुप्त मौर्य था। यह बड़ा बुद्धिमान् था। राजा नन्द का एक मन्त्री था जिसका नाम सुबुद्धिशर्मा उपनाम 'राक्षस' था। पर्वतेश्वर का प्रधानमन्त्री शकटार था जो राक्षस से कभी अपमानित

हुआ था, वह भी महाराज नन्द के पास आ गया और उनकी तन मन से सेवा करने लगा। तथा अपने अपमान का बदला लेने का मौका देखने लगा, किन्तु सेवा-काल में राजा नन्द वन में मर गया और उसका उग्रधन्वा नामक बड़ा लड़का गद्दी पर बैठा। राजा की मृत्यु का भेदी शकटार को समझ कर उसे जेल में डाल दिया गया और उसके सारे परिवार की हत्या करा दी गई। फिर कुछ अरसे के बाद शकटार को भी छोड़ दिया गया। वह पुनः अपने परिवार के नाश का बदला लेने की फिक्र में रहने लगा।

एक दिन राजा उग्रधन्वा नन्द ने अपने पिता के श्राद्ध के दिन किसी ब्राह्मण को निमन्त्रण देने के लिए राक्षस से कहा। यह बात शकटार को पता चल गई। वह बदले की आग दिल में लिये ऐसे ब्राह्मण की खोज में निकला। उसने देखा कि एक काला स्याह ब्राह्मण एक वन-प्रान्त में कुशाओं की जड़ें उखाड़कर उनमें लस्सी डाल रहा है। पूछने पर ब्राह्मण ने कहा कि 'एक दिन मेरे पिता गंगास्नान करने जा रहे थे तो उनके पैर में कुशा का कांटा लग गया था। इसलिए मैंने निश्चय किया है कि इस सारे इलाके की कुशाओं को समूल नष्ट कर दूं— इसलिए ऐसा कर रहा हूं।' यह सुनकर शकटार ने सोचा कि 'इस व्यक्ति को राजा के विरुद्ध कुपित कर दिया जाय तभी यह मेरे अपमान का बदला ले सकता है।' यह सोचकर उसने उस ब्राह्मण से प्रार्थना की कि 'आप कल राजा के श्राद्ध में निमन्त्रण स्वीकार कीजिए।' उस ब्राह्मण ने बहुत कहने पर किसी-न-किसी तरह निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। किन्तु ठीक समय पर जब वह राजा के श्राद्धमण्डप में गया और एक आसन पर बैठ गया तो राजा ने उस काले ब्राह्मण को देखकर गालियाँ देते हुए लात मार कर निकल जाने को कहा। वहाँ उस ब्राह्मण ने प्रतिज्ञा की कि 'मैं जब तक नन्दकुल का नाश न कर लूंगा तब तक शिखा नहीं बांधूंगा।' उसने वहाँ कहा कि 'जो इस राज्य को

चाहता है वह मेरे साथ आये मैं उसे इस राजगद्दी पर बिठाकर ही दम लूँगा।' तब चन्द्रगुप्त मौर्य उसके साथ हो लिया। इसके पश्चात् चाणक्य ने अपने बुद्धिबल से पर्वतेश्वर की सहायता से नन्द के वंश का विनाश कर डाला। राजगद्दी पर चन्द्रगुप्त का अभिषेक किया और उसके मन्त्री पद पर नन्द के मन्त्री राक्षस को ही प्रतिष्ठापित किया तथा चाणक्य स्वयं अपने पर्णकुटीर में वास करते हुए नीति-शास्त्र की रचना करने में लग गये।

मुद्राराक्षस नाटक में कुछ विचित्रताएँ भी हैं। इससे इतिहास पर भी प्रकाश पड़ता है। इसमें चन्द्रगुप्त मौर्य का मुख्य पौरुष विदेशियों को भगा देना कहा गया है ; पर सिकन्दर के आक्रमण का कहीं उल्लेख नहीं है तथा पारसी राजा को भी विदेशी नहीं माना गया है। केवल गुस्से में राक्षस मलयकेतु को म्लेच्छ कहता है। कथा चाणक्य की कूटनीति पर ही बल देती है। निस्संदेह नाटक उस समय लिखा गया है जब चन्द्रगुप्त मौर्य की कथा काफी पुरानी पड़ चुकी थी। इसी से इसमें गड़बड़ी भी है। कथा का मुख्य पात्र चाणक्य है। नाटककार ने चाणक्य को धूर्त, क्रोधी और कुटिल दिखाया है। वह राक्षस को चतुर और प्रभावशाली समझकर चन्द्रगुप्त का मन्त्री बनाता है। चाणक्य त्यागी भी है और घमण्डी भी। वह राजा को वृपल कहता है, राक्षस चाणक्य की टक्कर का व्यक्ति नहीं है। वह बुरी तरह मात खाता है। और अन्त में पदलोलुप-सा दिखाई देता है। राक्षस का नाम भी विचित्र है, जो कहीं इतिहास में वह नाम नहीं है। चाणक्य की महत्ता यह है कि वह अन्त में बहुत नम्र है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से इस नाटक में दो ही पात्र मुख्य हैं—एक चाणक्य, दूसरा राक्षस। चन्दनदास का चरित्र बहुत ऊँचा दिखाया है। चन्द्रगुप्त धीरोदात्त नायक के रूप में आया है।

पात्र-सूची

पुरुष-पात्र—

पात्र	परिचय
चाणक्य	एक नीतिज्ञ ब्राह्मण
शिष्य	चाणक्य का शिष्य शार्ङ्गधर
गुप्तचर	चाणक्य का जासूस
सिद्धार्थक	चाणक्य का दूत
चन्दनदास	राक्षस का मित्र, सेठ
सपेरा	विराधगुप्त सपेरे के वेश में
कंचुकी	अन्तःपुर-रक्षक वृद्ध ब्राह्मण
राक्षस	राजा नन्द का प्रधान मन्त्री
विराधगुप्त	राक्षस का दूत
प्रियवदक	राक्षस का भृत्य
शकटदास	राक्षस का मित्र
चन्द्रगुप्त	कुसुमपुर का राजा
करभक	राक्षस का दूत
मलयकेतु	पर्वतीय राजा
भागुरायण	मलयकेतु का मित्र, चाणक्य का दूत
क्षपणक	चाणक्य का मित्र जीवसिद्धि
भासुरक	मलयकेतु का भृत्य
प्रियंवदक	राक्षस का सेवक
चाण्डाल	फांसी देने वाले नीच पुरुष

साधारण पुरुष, सेवक आदि।

स्त्री-पात्र—

पात्र	परिचय
प्रतिहारी	द्वारपालिका, सेविका
स्त्री	चन्दनदास की पत्नी

मुद्राराक्षस

पहला दृश्य

(चाणक्य की कुटी। खुली चोटी को हाथ से
फटकारते हुए चाणक्य आते हैं।)

चाणक्य—अब ऐसा कौन है जो मेरे रहते चन्द्रगुप्त का बाल भी बाँका कर सके। मेरी क्रोधाग्नि में नन्दवंश जलकर भस्म हो गया। अब कौन पतंगे की भाँति इसमें भस्म होना चाहेगा। नन्दकुल के लिए नागिन बनी हुई मेरी यह चोटी अभी खुली ही है। शार्ङ्गरव, शार्ङ्गरव।

(शिष्य आता है।)

शिष्य—उपाध्याय, क्या आज्ञा है ?

चाणक्य—बेटा, बैठना चाहता हूँ।

शिष्य—उपाध्याय, द्वार के पास पड़ी इस बेंत की चटाई पर बैठिए।

चाणक्य—वत्स, कार्य में व्यस्त रहने से ही तुम्हें कहा। (बैठकर स्वगत) नगर में यह बात कैसे फैल गई कि नन्दवंश के विनाश से क्षुब्ध राक्षस मन्त्री अब पिता की मृत्यु से क्रुद्ध और नन्द राज्य के लोभी पर्वतेश्वर के पुत्र मलयकेतु से मिलकर चन्द्रगुप्त पर आक्रमण करने की सांठ-गांठ कर रहा है। (सोचकर) परन्तु मैं भी सो नहीं रहा हूँ। मेरी चाल यह है कि सब जानते हैं कि चन्द्रगुप्त और पर्वतक मित्र हैं। इस लिए नगर-निवासियों में यह प्रचार किया है कि चाणक्य का बुरा करने को राक्षस ने विषकन्या द्वारा पर्वतक को मरवाया है। उधर मेरे चर भागुरायण ने पर्वतक के पुत्र मलयकेतु के ऐसे कान भरे हैं कि तुम्हारे

पिता को चाणक्य ने ही मरवाया है। इससे भयभीत हो वह भाग गया है। अब मैंने स्वपक्ष और परपक्ष के गुप्त शत्रु मित्रों को जानने के लिए विविध देशों की भाषा बोलने वाले नाना रूपधारी गुप्तचरों को नियुक्त किया है।

(यमपट हाथ में लिये गुप्तचर आता है।)

गुप्तचर—अजी, सब देवों को छोड़कर यम को प्रणाम करो। (देखकर) इस घर में यमपट दिखाऊँ।

शिष्य—अजी, भीतर मत आना।

गुप्तचर—अरे ब्राह्मण, यह घर किसका है ?

शिष्य—हमारे उपाध्याय आर्य चाणक्य का, जिनके नाम लेने ही से पुण्य होता है।

गुप्तचर—(हँसकर) तब तो यह हमारे गुरु-भाई ही का घर है।

चाणक्य—(देखकर) भद्र, भीतर आओ।

(गुप्तचर प्रणाम करके बैठता है।)

—निपुणक, कहो, क्या हाल-चाल है ? क्या प्रजा चन्द्रगुप्त को चाहती है ?

गुप्तचर—सब प्रजा अनुरक्त है। केवल तीन व्यक्ति नहीं चाहते।

चाणक्य—तो वे अपने जीवन को भी नहीं चाहते। उनके नाम कहो।

गुप्तचर—एक तो क्षपणक है। उसका नाम जीवसिद्धि है। उसी ने अमात्य राक्षस द्वारा नियुक्त विषकन्या का पर्वतेश्वर पर प्रयोग किया।

चाणक्य—(स्वगत) वह तो हमारा ही आदमी है। उसने हमारी ही इच्छा से ऐसा किया (प्रकट) दूसरा।

गुप्तचर—दूसरा अमात्य राक्षस का मित्र शकटदास कायस्थ।

चाणक्य—(हँसकर स्वगत) सिद्धार्थक उसका मित्र बनकर बैठा ही

है। (प्रकट) अच्छा तीसरा कौन ?

गुप्तचर—जौहरी चन्दनदास। जो राक्षस का अभिन्न मित्र है। राक्षस मन्त्री का कुटुम्ब उसी के यहाँ है।

चाणक्य—(स्वगत) तब तो वह राक्षस का अवश्य ही बड़ा विश्वास-भाजन है। (प्रकट) तुमने कैसे जाना कि चन्दनदास के घर राक्षस का कुटुम्ब है।

गुप्तचर—आर्य, इस अंगुली-मुद्रा के द्वारा।

(अंगूठी देता है।)

चाणक्य—(अंगूठी पर राक्षस नाम की मुहर देख प्रसन्न होकर) भद्र, यह मुद्रा तुम्हें कैसे मिली ?

गुप्तचर—आर्य, मैं यमपट दिखाता हुआ चन्दनदास जौहरी के घर में चला गया। जब मैंने यमपट बिछाकर गाना आरम्भ किया तो एक पाँच वर्ष का सुन्दर बालक बाहर निकल आया। तब एक स्त्री ने उसे द्वार के बाहर आ उसे भीतर खींच लिया। इसी पकड़-धकड़ में यह मुद्रा उसकी उंगली से गिर पड़ी। सो मैंने भी यह आर्य के चरणों में पहुँचा दी।

चाणक्य—भद्र, मैंने सुन लिया। अब तुम जाओ। शीघ्र तुम्हें इसका पुरस्कार मिलेगा।

(गुप्तचर प्रणाम करके जाता है।)

—शार्ङ्गरव ! शार्ङ्गरव !!

शिष्य—(आकर) उपाध्याय की क्या आज्ञा है ?

चाणक्य—वत्स, दवात कलम और पत्र लाओ।

शिष्य—जैसी आज्ञा। (जाता है और लेकर आता है।)

चाणक्य—(हाथ में लेकर) अब क्या लिखूँ ?

(प्रतिहारी आती है।)

प्रतिहारी—आर्य की जय हो।

चाणक्य—(प्रसन्न होकर) शोणोत्तरा, कैसे आई ?

प्रतिहारी—आर्य, बद्धांजलि देव चन्द्रगुप्त ने यह पूछा है कि आर्य आज्ञा दें, तो देव पर्वतेश्वर की श्राद्ध-क्रिया की जाय। और उनके पहिने हुए आभूषण ब्राह्मणों को दे दिये जायँ।

चाणक्य—(हर्ष से) शोणोत्तरा, चन्द्रगुप्त से कहो कि लोकव्यवहार के लिए ऐसा ही करो। परन्तु पर्वतेश्वर के आभूषण गुणवान ब्राह्मण को देने चाहिएँ। उन्हें मैं स्वयं गुण-परीक्षा करके भेजूंगा।

प्रतिहारी—जो आज्ञा। (जाती है।)

चाणक्य—बेटा शार्ङ्गरव ! विश्वावसु आदि तीनों भाइयों से कह दो कि वे चन्द्रगुप्त के पास जाकर आभूषण दान ले और आकर मुझ से मिले।

शिष्य—जो आज्ञा। (जाता है।)

चाणक्य—(लिखनी हाथ में लेकर) क्या लिखूं ? गुप्तचरों से मुझे यह पता लग गया है कि उस यवनराज की सेना के पाँच राजा राक्षस के अन्ध भक्त हैं। उनमें एक है—कुलूत का चित्रवर्मा, दूसरा मलयराज सिंहनाद, तीसरा काश्मीर-नरेश पुष्करान्त, चौथा सिन्धुराज सिन्धुषेण और पाँचवां पारसीक नृप मेघाक्ष। जिसके पास प्रबल अश्ववाहिनी है। इन्हें तो मरना ही होगा। (सोचकर) या अभी नहीं लिखूं। अभी सब अव्यक्त ही रहे। (लिखने की चेष्टा करके) बेटा शार्ङ्गरव।

शिष्य—उपाध्याय आज्ञा करें।

चाणक्य—बेटा, वैदिक लोग कितना ही सुधार कर लिखें, पर उनके अक्षर साफ नहीं होते। इसलिए जाकर सिद्धार्थक से कह—(कान में) यह बात किसी ने किसी को लिखी। लिखने वाले का नाम न लिखा जाय। वह शंकटदास से बिना सिरनामे का पत्र लिखा कर मेरे पास ले आये।

शिष्य—जो आज्ञा। (जाता है।)

दूसरा दृश्य

चाणक्य—(स्वगत) मैंने मलयकेतु को जीत लिया।

(लेख लेकर सिद्धार्थक आता है।)

सिद्धार्थक—आर्य की जय हो। यह शकटदास के हाथ का लेख है।

चाणक्य—(पढ़कर) कैसे सुन्दर अक्षर हैं। भद्र, इस पर यह मुहर लगा।

(राक्षस की मुहर देता है।)

सिद्धार्थक—जो आज्ञा। (मुहर लगाता है) लीजिए। अब और क्या आज्ञा है ?

चाणक्य—भद्र, तू पहले वध्यशाला पर जाकर घातकों को क्रोध-पूर्वक दाहिनी आँख बचाकर संकेत करना। उस संकेत से वे भयभीत से होकर भाग जायेंगे। तब तू शकटदास को वध्यशाला से हटा कर राक्षस के पास ले जाना। मित्र की प्राणरक्षा करने से वह तुझे पारि-तोषिक देगा, फिर तू कुछ समय तक राक्षस ही के पास रहने का ढंग निकाल लेना और अपना यह प्रयोजन सिद्ध करना। सुन (कान में कहता है।)

सिद्धार्थक—जैसी आज्ञा।

चाणक्य—बेटा शार्ङ्गरव।

शिष्य—उपाध्याय की क्या आज्ञा है ?

चाणक्य—कालपाशिक और दण्डपाशिक से जाकर मेरी ओर से कह दे कि महाराज चन्द्रगुप्त की आज्ञा है, कि जो वह जीवसिद्धि नाम का जैन साधु है, उसने राक्षस की आज्ञा से विष-कन्या का प्रयोग करके पर्वतेश्वर को मार डाला है। उसके इसी अपराध को प्रसिद्ध करके उसे

अनादरपूर्वक नगर से निकाल दें।

शिष्य—जो आज्ञा। (जाने लगता है।)

चाणक्य—बेटा ठहर, उनसे यह भी कहना कि शकटदास कायस्थ ने राक्षस के कहने से हमारी हत्या करने का प्रयत्न किया। उसके इस अपराध को प्रसिद्ध करके उसे सूली पर चढ़ा दें। और उसके परिवार को बन्दीगृह में डाल दें।

शिष्य—जो आज्ञा। (जाता है।)

चाणक्य—(सोचता हुआ) इस दुरात्मा राक्षस को इस तरह पकड़ना चाहिए। (सिद्धार्थक को अंगूठी की मुहर और पत्र देकर) भद्र, अब तू भी जाकर अपना कार्य सिद्ध कर।

सिद्धार्थक—जो आज्ञा। (जाता है।)

(शिष्य आता है।)

शिष्य—आर्य, कालपाशिक और दण्डपाशिक दोनों ने निवेदन किया है कि महाराज की आज्ञा का वे अभी पालन कर रहे हैं।

चाणक्य—ठीक है। बेटा, मैं जौहरी चन्दनदास को देखना चाहता हूँ।

शिष्य—जैसी आज्ञा। (जाता है।)

तीसरा दृश्य

(शिष्य चन्दनदास को लेकर आता है।)

शिष्य—इधर से श्रेष्ठी। आर्य, ये श्रेष्ठी चन्दनदास हैं।

चन्दनदास—(पास आकर) आर्य की जय हो।

चाणक्य—(व्यंग्य से) आइये। यह आसान है, बठिए

चन्दनदास—(प्रणाम करके) आर्य, अनुचित सत्कार भी तिरस्कार ही है। मैं यहीं बैठता हूँ।

चाणक्य—नहीं श्रेष्ठी, आसन पर ही बैठिए।

चन्दनदास—(स्वगत) न जाने इसके मन में क्या है (प्रकट) जैसी आर्य की आज्ञा। (बैठता है।)

चाणक्य—श्रेष्ठी चन्दनदास, तुम्हारा काम-धन्धा तो ठीक चल रहा है ?

चन्दनदास—आर्य, आपकी दया है।

चाणक्य—चन्द्रगुप्त के दोषों को देखकर लोग पुराने राजाओं को तो याद करते ही होंगे।

चन्दनदास—(कानों पर हाथ धरके) शान्तं पापम्। शरच्चन्द्र के समान चन्द्रगुप्त की वृद्धि से सब प्रसन्न हैं।

चाणक्य—तो राजा भी सन्तुष्ट प्रजा से कुछ आशा रखता है।

चन्दनदास—आर्य आज्ञा करें। आर्य कितना धन इस सेवक से चाहते हैं।

चाणक्य—श्रेष्ठी, यह चन्द्रगुप्त का राज्य है, नन्द का नहीं। राजा के विरुद्ध व्यवहार नहीं होना चाहिए।

चन्दनदास—आर्य, कौन भाग्यहीन आर्य का विरोधी है ?

चाणक्य—एक तो आप ही हैं।

चन्दनदास—(कानों पर हाथ रखकर) तिनकों और आग में भला कैसा विरोध ?

चाणक्य—विरोध ऐसा, कि अब भी तुमने राजविरोधी अमात्य राक्षस का परिवार अपने घर रख छोड़ा है।

चन्दनदास—आर्य, यह झूठ है।

चाणक्य—घबराओ मत। पूर्ववर्ती राजाओं के अनुचर उनके बिना चाहे भी अपने परिवार को धरोहर के रूप में छोड़ जाते थे। पर इस बात को छिपाना ही दोष है।

चन्दनदास—आर्य, पहले मेरे घर में राक्षस का परिवार था।

चाणक्य—पहले कहा—झूठ। और अब कहते हो—था।

चन्दनदास—मुझसे कहने में यही भूल हो गई।

चाणक्य—श्रेष्ठी, चन्द्रगुप्त के राज्य में कपट को स्थान नहीं। तुम राक्षस के परिवार को हमें सौंप दो और निर्दोष हो जाओ।

चन्दनदास—आर्य, इस समय मेरे घर में अमात्य राक्षस का परिवार नहीं है।

चाणक्य—तो कहाँ गया ?

चन्दनदास—यह तो पता नहीं।

(नेपथ्य में कोलाहल)

चाणक्य—बेटा, शार्ङ्गरव, देखो तो यह कैसा कोलाहल है ?

शिष्य—(बाहर जाकर लौटकर) आर्य, महाराज चन्द्रगुप्त की आज्ञा से राज-विरोधी जीवसिद्धि क्षपणक अपमान सहित नगर से निकाला जा रहा है।

चाणक्य—ह, ह, ह, ह, क्षपणक राजविद्रोह का फल भोगे। श्रेष्ठी चन्दनदास, राज-विरोधियों के प्रति बहुत कठोर है मेरी बात मानो, तो राक्षस का परिवार हमें सौंप दो।

चन्दनदास—राक्षस का परिवार मेरे घर में नहीं है।

(नेपथ्य में फिर कोलाहल)

चाणक्य—बेटा शार्ङ्गरव, अब यह कैसा कोलाहल है ?

शिष्य—आर्य, शकटदास कायस्थ को सूली पर चढ़ाने ले जाया जा रहा है।

चाणक्य—भोगे अपने कर्म का फल। श्रेष्ठी चन्दनदास, दूसरे की स्त्री-पुत्र देकर अपनों की रक्षा कर लो।

चन्दनदास—आर्य, राक्षस का परिवार मेरे घर में होता, तो भी मैं नहीं देता। है ही नहीं, तो कहाँ से दूँ ?

चाणक्य—चन्दनदास, यही तुम्हारा निश्चय है ?

चन्दनदास—आर्य, दृढ़ निश्चय।

चाणक्य—(स्वगत) साधु, चन्दनदास ! (प्रकट) तो दुरात्मा वणिक्, राजा के कोप को भोग।

चन्दनदास—(हाथ फैलाकर) तैयार हूँ। आर्य, जैसा चाहें, करें।

चाणक्य—(क्रोध से) शार्ङ्गरव, मेरी आज्ञा कालपाशिक और दण्डपाशिक से कह दो कि इस दुरात्मा श्रेष्ठी को पकड़ लें और दुर्गपाल विजयपाल से कहो कि इसके धन पर अधिकार कर ले; और इसके स्त्री-पुत्रों को बन्दीगृह में रखे। राजा ही इसे प्राण-दण्ड देगा।

शिष्य—जैसी उपाध्याय की आज्ञा। आइये श्रेष्ठी !

चन्दनदास—(उठकर) आता हूँ (स्वगत) मुझे संतोष इतना ही है कि मित्र के लिए मेरा विनाश हो रहा है, किसी दोष के कारण नहीं।

(शिष्य के साथ जाता है।)

चाणक्य—(हर्ष से) बस, अब राक्षस पकड़ा गया ही समझो। जैसे यह उसके लिए अपने जीवन का मोह नहीं करता वैसे ही इसकी विपत्ति में राक्षस अपने प्राणों की ममता नहीं करेगा।

(नेपथ्य में कोलाहल)

चाणक्य—शार्ङ्गरव ! यह कैसा कोलाहल है ?

शिष्य—उपाध्याय, वध्य-स्थान से बँधे हुए शकटदास को सिद्धार्थक लेकर भाग गया।

चाणक्य—(स्वगत) ठीक हुआ। (प्रकट) अरे, क्या जबर्दस्ती ले भागा ? (क्रोध से) बेटा, भागुरायण से कह, वह उसे पकड़े।

शिष्य—(बाहर जाकर और लौट कर) उपाध्याय, भागुरायण भी भाग गया।

चाणक्य—(स्वगत) मेरी ही कार्यसिद्धि के लिए। (प्रगट क्रोध से) बेटा, मेरी आज्ञा भद्रभट, पुरुषदत्त, हिंगुरात, बलगुप्त, राजसेन, रोहिताक्ष, विजयवर्मा आदि को सुना दो कि वे दुरात्मा भागुरायण को पकड़ें।

शिष्य—(बाहर जाकर लौट कर) उपाध्याय, भद्रभट आदि भी भाग गये।

चाणक्य—(स्वगत) कार्यसिद्धि के लिए (प्रकट) जाने दे, मेरी बुद्धि ठिकाने रहनी चाहिए। (उठकर) इन दुष्टों को पकड़ता हूँ। (स्वगत) दुरात्मा राक्षस, अब कहां बचेगा ? देखूं, तेरी विशाल सेना तेरा क्या भला करती है। अपने बुद्धि-बल से मैं तुझे उसी भाँति बाँध लूँगा, जैसे मदमत्त हाथी को बाँध लिया जाता है।

(प्रस्थान)

चौथा दृश्य

(सपेरा आता है।)

सपेरा—साँप लाये, नाग लाये, मेरा नाम जीर्णविष है। जो विष की औषधि का प्रयोग, मण्डल बनाना और मन्त्रों का ज्ञाता है, वही साँपों और राजाओं की सेवा कर सकता है। (देखकर) यह अमात्य राक्षस का घर है, अहाँ, मौर्यकुल की लक्ष्मी चाणक्य की बुद्धि से बँधी है और राक्षस की नीति के हाथ उसे खींच रहे हैं। अमात्य राक्षस के दर्शन करूँ।

(भीतर आता है। अमात्य राक्षस चिन्तित आसन पर बैठे हैं।)

राक्षस—(आँखों में आँसू भरकर) हाय, कष्ट, समृद्ध नन्दवंश का नाश हो गया। (सोचकर) नगर से भागते हुए मैंने अपना परिवार श्रेष्ठी चन्दनदास के घर छोड़ दिया है। चन्द्रगुप्त को मारने को मैंने अनेक विपाक्त पदार्थ शकटदास को देकर भेजा है। जीवसिद्धि क्षपणक आदि प्रतिक्षण की सूचना देने के काम पर नियुक्त हैं।

(कंचुकी आता है।)

कंचुकी—अमात्य, आपका मंगल हो।

राक्षस—आर्य जाजलि, अभिवादन करता हूँ। यह आसन है, बैठिए।

कंचुकी—(बैठ कर) अमात्य, कुमार मलयकेतु ने ये आभूषण अपने शरीर से उतार कर भेजे हैं। इन्हें आप पहिनें। यह कुमार की इच्छा है।

राक्षस—आर्य जाजलि, जब तक कुमार का स्वर्णसिंहासन मैं सुगांग प्रासाद तक नहीं पहुँचा देता, तब तक मैं शृंगार नहीं करूँगा।

कंचुकी—परन्तु यह उनकी पहली प्रेम भेंट है। अवश्य स्वीकार कर लीजिए (पहनाता है), आपका मंगल हो, मैं चला। (जाता है।)

प्रियंवदक—(आकर) आर्य जीर्ण विष नामक सपेरा आपके दर्शनार्थ द्वार पर उपस्थित है। उसने यह पत्र भी दिया है।

(पत्र देता है।)

राक्षस—(पत्र देखकर स्वगत) ठीक है यह हमारा गुप्तचर विराध-गुप्त है (प्रकट) आने दो।

(सेवक के साथ सपेरा आता है।)

सपेरा—अमात्य की जय हो।

राक्षस—प्रियंवदक, मैं इसके साँपों से मन बहलाता हूँ। तुम घर के सब लोगों को अपने स्थान पर ले जाओ।

सेवक—जो आज्ञा। (जाता है।)

राक्षस—विराधगुप्त, बैठो, हाय, देवपादवन्धुओं की सेवा करने वालों की यह दशा ! कहो, कुसुमपुर का क्या हाल है ?

विराधगुप्त—अमात्य, कुसुमपुर को चाणक्य के पक्षपातियों तथा शक, यवन, किरात, काम्बोज, पारसीक और वाल्मीक लोगों ने घेर लिया है।

राक्षस—(शस्त्र खींचकर) मेरे रहते ?

विराधगुप्त—कुसुमपुर के घिर जाने से सुरंग की राह महाराज सर्वार्थसिद्धि को तपोवन भेज दिया गया, और चन्द्रगुप्त को मारने की इच्छा से जो विषकन्या भेजी गई, उससे पर्वतेश्वर मारे गये।

राक्षस—देव का स्वेच्छाचार !

विराधगुप्त—दुरात्मा चाणक्य ने कुसुमपुर के प्रबन्धकों को बुलाकर कहा—ज्योतिषियों के अनुसार आज ही आधी रात को चन्द्रगुप्त नन्द-भवन में प्रवेश करेंगे। इस पर दारुवर्मा ने भवन द्वार को सजाने के बहाने द्वार को गिराने का यन्त्र लगा दिया। पर दुष्ट चाणक्य ने पर्वतेश्वर के भाई वैरोचक को चन्द्रगुप्त के साथ सिंहासन पर बैठा कर आधे राज्य का अधिकारी बना दिया। और उसे ही रत्नजटित मुकुट पहना कर चन्द्रलेखा नाम हथिनी पर बैठा चन्द्रगुप्त के सेवकों के साथ देवनन्द के भवन में प्रवेश करने भेज दिया। दारुवर्मा ने उसे ही चन्द्रगुप्त समझ द्वार गिरा दिया। जिससे वैरोचक मर गया। आपका नियुक्त किया गया महावत बर्वरक भी मारा गया। कुछ वैरोचकों के अनुयायियों ने दारुवर्मा को पत्थर मार मार कर मार डाला।

राक्षस—दैव ने हमें ही मारा। वैद्य अभयदत ने क्या किया ?

विराधगुप्त—उसने चन्द्रगुप्त के लिए एक विष-चूर्ण बनाया। धूर्त चाणक्य ने उसे अभयदत्त को ही खिला दिया, जिससे वह मर गया। आपके नियुक्त चन्द्रगुप्त के शयन-कक्ष के अधिकारी प्रमोदक को सन्देह करके चाणक्य ने यातनाएं देकर मरवा डाला।

राक्षस—दुर्भाग्य से यहां भी हम मारे गये। अच्छा, महल के नीचे सुरंग में सोते हुए चन्द्रगुप्त को मारने के लिए जो बीभत्सक आदि नियुक्त थे, उनका क्या हुआ ?

विराधगुप्त—चाणक्य ने संदेह करके उस कक्ष में ही आग लगवा दी इससे वे सब वहीं जल मरे।

राक्षस—(आँसू भरकर) दुरात्मा चन्द्रगुप्त का भाग्य ऐसा प्रबल है !. फिर क्या हुआ ?

विराधगुप्त—आपके नियुक्त जीवसिद्धि को नगर-निकाला और शकटदास को सूली दे दी गई। श्रेष्ठी चन्दनदास ने जब माँगने पर

भी आपका परिवार न दिया, तो क्रुद्ध चाणक्य ने उसकी सब सम्पत्ति छीन उसे सपरिवार बन्दीघर में डाल दिया।

राक्षस—अजी, यों कहो, राक्षस को बांध लिया।

(एक पुरुष आता है।)

पुरुष—आर्य की जय हो। शकटदास द्वार पर उपस्थित है।

राक्षस—अरे! क्या सच? विराधगुप्त, यह क्या?

विराधगुप्त—दैवेच्छा।

राक्षस—उन्हें अभी ले आ।

(सेवक जाकर शकटदास को ले आता है, सिद्धार्थक भी साथ आता है।)

शकटदास—अमात्य की जय।

राक्षस—(हर्ष से) मित्र शकटदास, चाणक्य के हाथों से कैसे बचे?

शकटदास—इस प्रिय मित्र सिद्धार्थक की कृपा से।

राक्षस—भद्र सिद्धार्थक, जो तुमने किया, उसके सामने यह तुच्छ है। फिर भी स्वीकार करो। (शरीर के आभूषण उतार कर देता है।)

सिद्धार्थक—(पैर छूकर स्वगत) अब मतलब सिद्ध हो गया। (प्रकट) आर्य, यहाँ मैं नया हूँ। किसी को जानता नहीं। इससे आप इन्हें इस अंगूठी से मुद्रा लगाकर अपने ही भंडार में रख लीजिए। जब आवश्यकता होगी ले लूँगा। (मुद्रा अंगूठी देता है।)

राक्षस—ऐसा ही करो शकटदास!

शकटदास—(अँगूठी देखकर) इस पर तो आपका नाम खुदा है।

राक्षस—भद्र सिद्धार्थक, यह अंगूठी कहाँ मिली?

सिद्धार्थक—आर्य, कुसुमपुर में कोई मणिकार है, उसके द्वार पर पड़ी मिली।

राक्षस—(सोचकर स्वगत) मेरी पत्नी की असावधानी से गिरी होगी।

शकटदास—मित्र सिद्धार्थक, यह मुद्रा अमात्य के नाम की है। इस लिए यह इन्हें दे दो। अमात्य तुम्हें यथेष्ट धन देंगे।

सिद्धार्थक—तो आर्य अमात्य इसे ले लें।

राक्षस—शकटदास, अब इसी मुद्रा से सब काम चलाया करो।

शकटदास—जैसी अमात्य की आज्ञा।

सिद्धार्थक—आर्य, अब पाटलिपुत्र में जाना तो संभव नहीं रहा। कुछ दिन यहीं सेवा में रहने की अनुमति चाहता हूँ।

राक्षस—भद्र, यहीं रहो। शकटदास, सिद्धार्थक के आराम का प्रबन्ध करो।

सिद्धार्थक—अनुगृहीत हुआ।

(दोनों जाते हैं।)

विराधगुप्त—आर्य, मलयकेतु के निकल जाने से चन्द्रगुप्त चाणक्य से चिढ़ गया है। चाणक्य भी उसकी आज्ञाओं का उल्लंघन करता रहता है। कुसुमपुर की प्रजा अब भी हमारे संघर्ष को चाहती है।

राक्षस—तो विराधगुप्त! तुम सपेरे के वेश में कुसुमपुर लौट जाओ। वहाँ मेरा मित्र कवि स्तनवलश है। उससे कहना कि वह चन्द्रगुप्त को गीतों द्वारा चाणक्य के विरुद्ध भड़काता रहे। फिर तुम करभक के द्वारा संदेश भेजना।

विराधगुप्त—जैसी आज्ञा। (जाता है।)

(सेवक आता है।)

सेवक—आर्य, शकटदास निवेदन करता है कि तीन आभूषण विकने आये हैं। आप उन्हें देख लें।

राक्षस—(देखकर) बड़े कीमती हैं। शकटदास से कह कि पूरे दाम देकर खरीद ले।

(सेवक जाता है।)

राक्षस—(स्वगत) तो अब करभक को कुसुमपुर भेज दूँ। दुरात्मा

चाणक्य और चन्द्रगुप्त में फूट पड़ने से ही काम बनेगा।

(सोचता हुआ जाता है।)

पाँचवाँ दृश्य

(सुगांग प्रासाद। चन्द्रगुप्त आसन पर बैठा है।)

चन्द्रगुप्त—(स्वगत) अवसर पाकर बदलने वाली वेश्या की भाँति इस राज्यश्री का सेवन भी कठिन है। आर्य चाणक्य की आज्ञा है कि उनसे कपट-कलह की जाय। सो मैंने कौमुदीमहोत्सव की आज्ञा दी। आर्य ने उसे रोक दिया। इसी बात पर झगड़ा करने को मैंने आर्य को बुलाया है।

(चाणक्य आता है।)

चाणक्य—(प्रसन्नता से स्वगत) जिनका वैभव कुवेर को मात करता था, उनके सिंहासन पर वृषल बैठा है। (पास जाकर) वृषल की जय।

चन्द्रगुप्त—(आसन से उठकर) आर्य, प्रणाम। बैठें आर्य।

चाणक्य—(बैठकर) वृषल, हमें क्यों बुलाया है?

चन्द्रगुप्त—आर्य, आपने कौमुदीमहोत्सव क्यों रोक दिया?

चाणक्य—होगा कोई प्रयोजन।

चन्द्रगुप्त—आर्य, वह प्रयोजन मुझे भी बतायें।

चाणक्य—वह हमीं जानते हैं।

(राजा क्रोध से मुँह फेर लेता है।)

चाणक्य—तुम्हें सहन नहीं है, तो स्वयं अपना राज्य सम्हालो।

चन्द्रगुप्त—ऐसा ही सही। तो बताइये, कौमुदीमहोत्सव क्यों रोका गया?

चाणक्य—था कुछ कारण।

चन्द्रगुप्त—क्या मैं सुन सकता हूँ?

चाणक्य—सुनो। प्रजा को साधने की दो रीतियाँ हैं—अनुग्रह या

निग्रह। परिस्थितिवश मुझे दोनों रीतियाँ त्यागनी पड़ीं। अब इस समय पिता की मृत्यु से क्रुद्ध और राक्षस की नीति से प्रेरित मलयकेतु विशाल म्लेच्छ-सेना लेकर हम पर आक्रमण करने आने वाला है। यह समय पुरुषार्थ का है, कौमुदीमहोत्सव का नहीं।

चन्द्रगुप्त—तो मलयकेतु को भागते समय ही क्यों नहीं पकड़ा गया?

चाणक्य—पकड़ने पर दो ही बातें थीं—दया या दण्ड। दया करते, तो आधा राज्य देना पड़ता। दण्ड देते, तो उसके पिता के मरवाने का कलंक भी हम पर होता।

चन्द्रगुप्त—खैर, किन्तु राक्षस को क्यों नहीं पकड़ा गया?

चाणक्य—नन्द की शीलपरायण प्रजा उस अमात्य पर विश्वास करती थी। बुद्धि, उत्साह, कोष-बल और सहायकों सहित उसको यहाँ रहने से आन्तरिक विद्रोह का भय था। इसी से भाग जाने दिया।

चन्द्रगुप्त—उसे उपायों से वश में क्यों न किया गया?

चाणक्य—उपायों ही से उस छाती में गड़े शूल को हमने उखाड़ फेंका।

चन्द्रगुप्त—अमात्य राक्षस प्रशंसा के योग्य है।

चाणक्य—तो हम नहीं, यह भी कहो।

चन्द्रगुप्त—तो आपने किया ही क्या है? सब कुछ भाग्य करता है।

चाणक्य—भाग्य को अज्ञानी ही मानते हैं।

चन्द्रगुप्त—विद्वान् कभी अपनी प्रशंसा नहीं करते।

चाणक्य—अरे, वृषल, क्या तू हम पर सेवक की भाँति शासन करना चाहता है। तो यह शस्त्र राक्षस को दे। (शस्त्र छोड़कर उठ खड़ा होता है और जाता है।)

चन्द्रगुप्त—आर्य वैहीनरे, आज से हम स्वयं सब राजकाज देखेंगे। यह सर्वत्र सूचित करा दो।

कंचुकी—जो आज्ञा।

(सब जाते हैं।)

छठा दृश्य

(अमात्य राक्षस का घर। करभक आता है।)

करभक—अजी, यहाँ कौन दौवारिक है ? अमात्य राक्षस से निवेदन करो कि करभक कार्य सिद्ध करके पाटलिपुत्र से आया है।

दौवारिक—धीरे बोलो। स्वामी अमात्य अस्वस्थ हैं। तनिक ठहरो, मैं निवेदन करता हूँ। (भीतर जाकर) आर्य, करभक पाटलिपुत्र से आया है।

राक्षस—आने दो।

(दौवारिक जाता है।)

—(शकटदास से) यह कुटिल चाणक्य तो मेरी हर चाल को काट देता है। सिद्धि कैसे मिलेगी ?

(करभक आता है।)

करभक—अमात्य की जय।

राक्षस—करभक, बैठो।

(बैठता है।)

(मलयकेतु के साथ भागुरायण आता है।)

मलयकेतु—मैंने सब राजाओं और सेवकों को रोक दिया। और अकेला ही अमात्य राक्षस का हाल जानने आया हूँ। अमात्य अस्वस्थ हैं। (देखकर) यही अमात्य का घर है। (प्रवेश करके) भीतर कोई है। यहीं से सुनना चाहिए। (सुनते हैं।)

राक्षस—भद्र, कुसुमपुर के कैसे समाचार हैं ? क्या कार्य सिद्ध हुआ ?

करभक—हुआ। आर्य चाणक्य और चन्द्रगुप्त में खटपट हो गई।

मलयकेतु—अच्छी खबर है।

भागुरायण—अभी सुनिए।

करभक—चन्द्रगुप्त ने आपके गुणों की प्रशंसा करके दुरात्मा चाणक्य

को उसके पद से हटा दिया।

राक्षस—भद्र, अधिकार छिनने पर चाणक्य कहाँ गया ?

करभक—वहीं पाटलिपुत्र में ही रहता है।

राक्षस—(घबराकर) शकटदास, यह बात तो कुछ समझ में नहीं आती। जिस कुटिल ने भोजन के आसन से उठाये जाने पर पृथ्वी के स्वामी नन्द को समूल नष्ट कर दिया, वह चन्द्रगुप्त से किये गये अपमान को कैसे सह गया ?

मलयकेतु—मित्र भागुरायण, इस बात से अमात्य का क्या अभिप्राय है ?

भागुरायण—यह तो स्पष्ट है। दुरात्मा चाणक्य चन्द्रगुप्त से दूर होगा, तो इनका स्वार्थ सधेगा।

शकटदास—अमात्य, उसका सोच मत कीजिए। क्रोधी चाणक्य ने दैववश ही सफलता पाई थी। आगे क्या परिणाम हो, इसीसे उसने दुबारा प्रतिज्ञा करने का साहस नहीं किया।

राक्षस—ठीक है। जाओ, करभक को विश्राम दो।

(दोनों जाते हैं।)

मलयकेतु—मैं आपसे मिलने आया हूँ।

राक्षस—(आसन से उठकर) कुमार, आप हैं। इस आसन पर विराजिए। (सब बैठते हैं।)

मलयकेतु—अब सिरदर्द का क्या हाल है ?

राक्षस—जब तक आपके नाम के आगे अधिराज शब्द न जुड़ जाय, तब तक सिरदर्द कम कैसे होगा ?

मलयकेतु—तो मेरी सेना भी तैयार है।

राक्षस—यही समय है। अब विलम्ब क्यों किया जाय। इस समय चन्द्रगुप्त और चाणक्य का विरोध हो गया है। इस समय रणयात्रा की आज्ञा देने में देर न होनी चाहिए।

मलयकेतु—तो अमात्य, आप आक्रमण का समय समझते हैं, तो विजय प्रस्थान कीजिए।

(दोनों जाते हैं।)

सातवाँ दृश्य

मलयकेतु का शिविर। लेख और आभूषणों की पिटारी लेकर सिद्धार्थक आता है।)

सिद्धार्थक—आर्य चाणक्य ने जैसा कहा था, वैसा ही शकटदास से लेख लिखवाकर अमात्य राक्षस की मुद्रा लगा ली है। वही मुद्रा इस पिटारी पर भी है। अब पाटलिपुत्र चलना है।

(क्षपणक आता है, उसे देखकर)

—भदन्त, प्रणाम।

क्षपणक—उपासक, धर्म लाभ हो। क्या यात्रा की तैयारी है ?

सिद्धार्थक—तुमने ठीक समझा। बताओ, मुहूर्त तो ठीक है ?

क्षपणक—अजी, इस समय मलयकेतु के शिविर में मुहूर्त देखने से क्या लाभ है? तुम्हारे पास प्रमाण-पत्र हो, तभी जा सकते हो।

सिद्धार्थक—यह कब से ?

क्षपणक—कुसुमपुर निकट आ गया। इसी से अब बिना मुद्रांकित प्रमाण-पत्र लिये कोई आ-जा नहीं सकता। चलो, मैं भी भागुरायण से प्रमाण-पत्र लेने जा रहा हूँ।

(दोनों जाते हैं।)

आठवाँ दृश्य

(भागुरायण और भासुरक आते हैं।)

भागुरायण—(स्वगत) आर्य चाणक्य की नीति बड़ी विचित्र है। कुछ समझ में ही नहीं आता। दुःख है कि मलयकेतु इतना प्रेम करते हैं परन्तु मैं तो स्वामी की आज्ञा के अधीन हूँ। (प्रकट) भद्र भासुरक, कुमार मलयकेतु मुझे दूर रखना नहीं चाहते। यहाँ आसन बिछा।

यदि कोई मुद्रांकित प्रमाणपत्र लेने आये तो उसे यहीं ले आना ।

भासुरक—जो आज्ञा । (जाता है ।)

(प्रतिहारी के साथ मलयकेतु आता है ।)

मलयकेतु—(स्वगत) कुछ समझ ही में नहीं आता कि राक्षस के मन में क्या है । क्या वह चन्द्रगुप्त का मित्र बन जायगा ? (प्रकट) विजये, भागुरायण कहां है ?

प्रतिहारी—कुमार, वह सामने बैठे शिविर से बाहर जाने वालों को मुद्रित पत्र दे रहे हैं ।

मलयकेतु—तो मैं भी वहीं जाता हूँ । (आगे बढ़कर) अरे, यह क्षपणक भागुरायण के पास मुद्रांकित पत्र लेने जा रहा है । छिप कर देखूं । (वैसा करता है ।)

(क्षपणक के साथ प्रतीहारी का प्रवेश)

प्रतिहारी—आर्य, यह क्षपणक मुद्रा चाहता है ।

क्षपणक—उपासकों की धर्म में वृद्धि हो ।

भागुरायण—(देखकर स्वगत) अच्छा, यह राक्षस का मित्र जीवसिद्धि है । (प्रगट) भदन्त, क्या राक्षस के किसी काम से जा रहे हो ।

क्षपणक—उपासक, सुनने योग्य बात नहीं है ।

भागुरायण—तो गुप्त बात है ?

क्षपणक—अजी, कैसे कहूँ । झूठ बात है ।

भागुरायण—तो मैं तुम्हें मुद्रा नहीं दूँगा ।

क्षपणक—क्या करूँ, कह दूँ ? (प्रकट) अजी, मैं पहले पाटलिपुत्र में रहता था । तब मुझ अभागे की राक्षस से मित्रता हो गई थी । तभी राक्षस ने विषकन्या का प्रयोग करके पर्वतेश्वर को मरवा डाला ।

मलयकेतु—अरे राक्षस ने मरवाया, चाणक्य ने नहीं ।

भागुरायण—फिर ?

क्षपणक—तब मुझे राक्षस का मित्र समझ कर दुरात्मा चाणक्य ने

अपमानित करके नगर से निकलवा दिया। अब कुकृत्य करने में कुशल राक्षस मेरे प्राणों का गाहक बन रहा है।

भागुरायण—भदन्त, हमने तो सुना है कि आधा राज्य न देना पड़े, इसलिए चाणक्य ने ही उन्हें मरवाया था।

क्षपणक—(दोनों कान बन्द करके) शांतं पापम्! शांतं पापम्! चाणक्य तो इस सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता।

भागुरायण—तो भदन्त, चलो, कुमार के पास चलें।

(मलयकेतु आगे जाता है।)

मलयकेतु—मित्र, वह हृदयविदारक बात मैंने सुन ली।

क्षपणक—(स्वगत) मैं कृतार्थ हो गया।

मलयकेतु—अरे राक्षस, तू सचमुच राक्षस है।

भागुरायण—(स्वगत) आर्य चाणक्य का आदेश है कि राक्षस के प्राणों की रक्षा की जाय। (प्रकट) कुमार, आवेश में मत आइये। वह आसन है, बैठिए।

(दोनों बैठते हैं।)

भागुरायण—कुमार, नीति में मित्र शत्रु और शत्रु मित्र बन जाते हैं। सो जब तक आपको नन्द का राज्य नहीं मिलता, तब तक उस पर वैसा ही भाव रखिए। बाद में आप स्वतन्त्र हैं।

मलयकेतु—मित्र, तुम ठीक कहते हो। अभी अमात्य राक्षस के वध से प्रजा में क्षोभ फैल जायगा।

(भासुरक आता है।)

भासुरक—कुमार की जय हो। आपके शिविर द्वार का अधिकारी दीर्घचक्षु निवेदन करता है कि एक पुरुष बिना मुद्रांकित पत्र लिये शिविर से भागते हुए पकड़ा गया है। उसके पास एक लेख है।

भागुरायण—भद्र, उसे ले आ।

(भासुरक जाकर और बँधे हुए सिद्धार्थक को लेकर आता है।)

भासुरक—आर्य, यही वह पुरुष है।

भागुरायण—यह कोई आगन्तुक है या शिविर का आदमी है ?

सिद्धार्थक—आर्य, मैं अमात्य राक्षस का सेवक हूँ।

भागुरायण—तो भद्र, तुम बिना मुद्रांकित प्रमाणपत्र के सेना से क्यों निकल रहे थे ?

सिद्धार्थक—आर्य, काम की जल्दी से।

भागुरायण—कैसा काम ?

मलयकेतु—भागुरायण, वह लेख इस ` ले लो

(सिद्धार्थक लेख देता है)

भागुरायण—(लेख पर मुद्रा देखकर) कुमार, इस पर तो राक्षस के नाम की अंकित मुद्रा है।

मलयकेतु—मुद्रा तोड़ कर पत्र पढ़ो।

(भागुरायण मुद्रा तोड़ता है। पत्र मलयकेतु को देता है।)

मलयकेतु—(पढ़ता है) स्वस्ति, कोई किसी को लिखता है कि आपने जो कहा था, सो सच कर दिखाया। अब आप अपने से मिल जाने वाले मित्रों को निश्चित वस्तु देकर प्रेम उत्पन्न करें। कुछ खज़ाना और हाथी चाहते हैं, कुछ राज्य। आपके भेजे तीनों अलंकार मिले। हमारा मौखिक समाचार अत्यन्त विश्वस्त सिद्धार्थक से सुनें। (पढ़कर) मित्र भागुरायण, इस लेख का क्या अभिप्राय है ?

भागुरायण—भद्र सिद्धार्थक, यह किसका लेख है ?

सिद्धार्थक—आर्य, मैं नहीं जानता।

भागुरायण—अरे धूर्त, स्वयं ले जा रहा है और कहता है नहीं जानता। अच्छा, मौखिक संदेश किसे सुनाना है ?

सिद्धार्थक—(भयभीत होकर) आपको।

भागुरायण—हमको ही ?

सिद्धार्थक—नहीं समझता, क्या कहूँ ?

भागुरायरण—(क्रोध से) अब समझ जायेगा। भद्र भासुरक, इसे बाहर ले जाकर पीटो।

(बाहर ले जाकर पीटता है। पिटते हुए उसकी बगल से आभूषणों की पिटारी गिर पड़ती है, भासुरक उसे भागुरायण को लाकर देता है)

भागुरायरण—(देखकर) इसपर राक्षस की मुहर है।

मलयकेतु—इसकी मुहर बचाकर खोलो।

(भागुरायण खोलता है)

मलयकेतु—(देखकर) अरे, ये तो वही आभूषण हैं जो मैंने राक्षस को पहनने को दिये थे। तब तो यह पत्र चन्द्रगुप्त के लिए होगा।

भागुरायरण—उसे अभी और पीटो।

(बाहर जाकर आता है।)

भासुरक—आर्य, वह कहता है, मैं कुमार को सब बात बता दूँगा।

मलयकेतु—उसे ले आओ।

(भासुरक उसे लाता है।)

सिद्धार्थक—(पाँवों पर गिरकर) कुमार, मुझे अभय दें। दया करें।

मलयकेतु—भद्र, पराधीन को अभय। तू सच बात कह।

सिद्धार्थक—कुमार, मैं अमात्य राक्षस का लेख चन्द्रगुप्त के पास ले जा रहा था।

मलयकेतु—तो मौखिक सन्देश बता।

सिद्धार्थक—अमात्य राक्षस ने कहा है कि कौलूत मलयाधिप और काश्मीरनरेश मलयकेतु के राज्य को बाँट लेना चाहते हैं। सिन्धुसेन मेघाक्ष हाथी और कोष चाहते हैं। जैसे आपने चाणक्य को हटाकर मुझ से प्रीति की है, वैसे ही इन राजाओं को भी, जिनसे आप प्रथम ही

सन्धि कर चुके हैं, सन्तुष्ट कीजिए।

मलयकेतु—(स्वगत) अच्छा, यह बात है। (प्रकट) विजये, मैं अमात्य राक्षस से मिलना चाहता हूँ।

प्रतिहारी—जो आज्ञा। (जाती है।)

नौवाँ दृश्य

(आसन पर अमात्य राक्षस बैठे हैं। सामने राजपुरुष खड़ा है।)

राक्षस—(स्वगत) हमारी सेना चन्द्रगुप्त से प्रबल है। चन्द्रगुप्त से विरक्त होकर आये हुए भद्रभट भी हमारे साथ हैं। फिर भी मेरे मन की शंका दूर नहीं होती। (प्रकट) देखो, कौन आ रहा है?

प्रियंवदक—जो आज्ञा।

(प्रतिहारी आती है।)

प्रतिहारी—अमात्य की जय। कुमार आपसे मिलना चाहते हैं।

राक्षस—भद्र, तनिक ठहर। अरे, कौन उपस्थित है?

प्रियंवदक—अमात्य आज्ञा दें।

राक्षस—भद्र, शकटदास से कहो कि कुमार ने हमें जो आभूषण पहनाये थे, वे नहीं रहे। अब उनके दर्शन बिना आभूषणों के कैसे करें? सो वे जो तीन आभूषण खरीदे थे, उनमें से एक दे दें।

(प्रियंवदक आभूषण लाकर देता है। राक्षस पहनाता है।)

राक्षस—भद्र, राजा के पास ले चलो। मार्ग दिखाओ।

प्रतिहारी—आर्य, इधर से।

(दोनों चलते हैं।)

राक्षस—(स्वगत) निर्दोष व्यक्ति के लिए भी अधिकार भय का कारण बन जाता है। (देखकर) कुमार वह बैठे हैं। ऐसा प्रतीत होता है, गहरी चिन्ता में मग्न हैं। (पास पहुँचकर) कुमार की जय हो।

मलयकेतु—आर्य, प्रणाम करता हूँ। यह आसन है, बैठिए।

(बैठता है।)

—अमात्य, देर से आपको न देखने से चिन्ता हुई थी। कहिए यात्रा की तैयारी कैसी है ?

राक्षस—कुमार, मैंने ऐसी व्यवस्था की है कि आक्रमण में मैं आगे रहूँगा। मेरे पीछे खस और मगध के ससैन्य राजा। यवनपतियों के साथ गान्धार-सेनाएँ रहेंगी। चेदि और हूणों के साथ शक-राजा पीछे रहेंगे। और कौलूत, काश्मीर, पारसीक, सिन्धु कल्याधिप आपके चारों ओर रहेंगे।

मलयकेतु—(स्वगत) जो चन्द्रगुप्त के गुप्त सेवक हैं, वे ही मेरे चारों ओर रहेंगे। (प्रकट) आर्य, क्या इधर कोई कुसुमपुर जाने वाला व्यक्ति भी है ?

राक्षस—कुमार, अब जाना-आना बन्द हो गया। पाँच-छः दिनों में तो हम वहाँ पहुँच ही रहे हैं।

मलयकेतु—तो फिर इस आदमी को लेख देकर कुसुमपुर क्यों भेजा है ?

राक्षस—(देखकर) सिद्धार्थक है ? क्या बात है भद्र ?

सिद्धार्थक—(रोता हुआ) अमात्य प्रसन्न हों। पिटने के कारण मैं रहस्य न छिपा सका।

राक्षस—भद्र, कैसा रहस्य ?

सिद्धार्थक—यही तो मैं भी कहता हूँ। पर मार के भय से··· ।

मलयकेतु—भागुरायण, स्वामी के सामने लज्जा और भय से यह नहीं कहेगा। अतः तुम्हीं कहो।

भागुरायण—अमात्य, यह कहता है कि अमात्य ने मुझे लेख और मौखिक संदेश देकर चन्द्रगुप्त के पास भेजा है।

राक्षस—भद्र सिद्धार्थक, यह सत्य है ?

सिद्धार्थक—(लज्जित-सा होकर) आर्य, पिटने पर मैंने कह दिया।

राक्षस—कुमार, यह सब झूठ है।

मलयकेतु—भागुरायण, वह लेख दिखाओ। मौखिक सन्देश यह स्वयं कहेगा।

(भागुरायण लेख पढ़ता है।)

राक्षस—कुमार, यह शत्रु की चाल है।

मलयकेतु—और ये आभूषण कैसे हैं? (दिखाता है।)

राक्षस—(देखकर) ये तो मैंने इसे पुरस्कार में दिये थे।

भागुरायण—अमात्य, कुमार ने अपने शरीर से उतार कर दिये, वे आपने ऐसे ही दे डाले।

मलयकेतु—आपने मौखिक संदेश की बात तो लिखी है।

राक्षस—कैसा संदेश? कैसा लेख? सब जाल है।

मलयकेतु—तब यह मुद्रा किसकी है?

राक्षस—धूर्त लोग बना लेते हैं।

भागुरायण—सिद्धार्थक, यह लेख किसने लिखा है?

सिद्धार्थक—आर्य, शकटदास ने।

राक्षस—शकटदास ने लिखा है, तब तो मैंने ही लिखा है।

मलयकेतु—विजये, शकटदास से मिलना चाहता हूँ।

(प्रतिहारी शकटदास को लेने जाती है।)

भागुरायण—(स्वगत) यह तो ठीक नहीं हुआ। यदि शकटदास कह दे कि यह लेख मैंने पहले लिखा था तो भेद खुल जायगा। (प्रकट) कुमार, शकटदास अमात्य के सामने कभी स्वीकार नहीं करेगा। उसका कोई और लेख मँगाइए।

मलयकेतु—विजये, यही कर।

भागुरायण—कुमार, मुद्रा भी मँगाइए।

मलयकेतु—दोनों ले आ।

प्रतिहारी—(जाकर दोनों वस्तु ले आती है।)

मलयकेतु—(हाथ में लेकर) आर्य, अक्षर तो मिलते हैं।

राक्षस—(स्वगत) मिलते तो हैं। पर क्या मेरा विश्वस्त मित्र शकटदास लालच में आकर शत्रु से मिल गया ? मुद्रा भी उसी के हाथ में रहती थी, और सिद्धार्थक भी उसी के पास रहता था। क्या शकटदास स्वामि-भक्त नहीं रहा ?

मलयकेतु—आर्य, आपने लिखा है, जो तीन आभूषण भेजे गये, वे मिल गये, क्या उन्हीं में से एक आप पहने हुए हैं। (देखकर स्वगत) अरे, ये तो मेरे पिता के आभूषण हैं। (प्रकट) आर्य, ये आभूषण आपने कहाँ से लिये ?

राक्षस—मोल लिये।

मलयकेतु—विजये, इस अलंकार को तुम पहचानती हो ?

प्रतिहारी—जी, ये तो स्वनाम-धन्य देव पर्वतेश्वर के हैं।

राक्षस—(स्वगत) क्या कहा—पर्वतेश्वर के ? (प्रकट) तो ये भी चाणक्य के भेजे व्यापारियों ने हमें बेचे हैं।

मलयकेतु—आर्य, व्यापारी तो चन्द्रगुप्त है, और आप जैसे लोभी और क्रूर हमारे शरीरों को इनका मूल्य बना कर चुका रहे हैं।

राक्षस—(स्वगत) अब शत्रु की कूटनीति चल गई।

मलयकेतु—आर्य, मैं पूछता हूँ........

राक्षस—(आँखों में आँसू भरकर) कुमार, जो आर्य हो, उससे पूछिए। हम तो अनार्य हो गये।

मलयकेतु—तो किसने आपको अनार्य बनाया ? अच्छा, यह क्या है ?

(आभूषणों की पिटारी दिखाता है।)

राक्षस—दुर्भाग्य !

मलयकेतु—अब भी आप अपराध छिपाते हैं ! अनार्य। कृतघ्न ! हत्यारे ! वंचक ! (क्रोध से) भासुरक, सेनापति शिखरसेन को मेरी आज्ञा सुना दो। जो इस राक्षस से मित्रता करके हमसे द्रोह और

चन्द्रगुप्त की सेवा करना चाहते हों, उनमें कौलूत, चित्रवर्मा, मलयाधिप सिंहनाद और काश्मीरनरेश पुष्करात मेरा राज्य चाहते हैं, भूमि चाहते हैं, उन्हें जीवित भूमि में गाड़ दो। सिन्धुराज सुषेण और पारसीक मेघाक्ष हाथी चाहते हैं। उन्हें हाथी से कुचलवा दो।

भासुरक—जो आज्ञा। (जाता है।)

मलयकेतु—राक्षस, मैं मलयकेतु हूँ, राक्षस नहीं। चले जाओ, और चन्द्रगुप्त की सेवा करो।

भागुरायण—कुमार, अब समय नष्ट न करना चाहिए। शीघ्र कुसुमपुर धावा बोल दीजिए।

(राक्षस के सिवा सब जाते हैं।)

राक्षस—(उद्वेग से) धिक्कार है। बेचारे सब निर्दोष ही मारे गये। अब मैं अभागा क्या करूँ ? क्या आत्मघात करूँ। नहीं। चन्दन-दास बन्धन में है। उसे छुड़ाना होगा।

(जाता है।)

दसवां दृश्य

(अलंकार पहिने सुसिद्धार्थक के साथ सिद्धार्थक आता है)

सिद्धार्थक—आर्य, चाणक्य की नीति से दुरात्मा मलयकेतु ने राक्षस को पद से हटा कर, चित्रवर्मा आदि प्रमुख राजाओं को मरवा डाला। तब अन्य सब राजा उस दुरात्मा अविवेकी को छोड़ अपनी-अपनी सेना ले अपने राज्यों को लौट गये। इसके बाद भद्रभट, पुरुपदत्त, हिंगुरात, बलगुप्त, राजसेन, भागुरायण, रोहिताक्ष और विजयवर्मा आदि प्रधान पुरुषों ने मलयकेतु को पकड़ लिया। तदनन्तर आर्य चाणक्य की विशाल सेना ने सम्पूर्ण शत्रु-सेना पर अधिकार कर लिया।

सुसिद्धार्थक—मित्र, भद्रभट आदि तो चन्द्रगुप्त के विरुद्ध होकर मलयकेतु के आश्रय में चले गये थे। और आर्य चाणक्य प्रथम ही मन्त्री-पद त्याग चुके थे।

सिद्धार्थक—मित्र, आर्य चाणक्य की नीति समझनी दुर्भर है।

सुसिद्धार्थक—अब अमात्य राक्षस कहाँ है ?

सिद्धार्थक—चन्दनदास के कारण यहीं कुसुमपुर में आया है, उदुम्बर उसके पीछे लगा है।

सुसिद्धार्थक—क्या चन्दनदास छूट जायगा।

सिद्धार्थक—आर्य चाणक्य की आज्ञा है कि हम दोनों ही उसे वधस्थल पर ले जाकर वध करें।

सुसिद्धार्थक—(क्रोध से) तो आर्य चाणक्य ने हमें घातक के नीच कार्य में लगाया है।

सिद्धार्थक—मित्र, आर्य चाणक्य की इच्छा के विरुद्ध होकर जीवित रहने की आशा नहीं। चलो, चाण्डाल का वेश धारण करके चन्दनदास को वध-भूमि में ले चलें।

(जाते हैं।)

ग्यारहवाँ दृश्य

(हाथ में रस्सी लिये पुरुष आता है।)

पुरुष—यही जीर्णोद्यान है। उदुम्बर ने यही जगह बताई थी। (देखकर) ठीक है, मुँह पर कपड़ा लपेटे वह अमात्य राक्षस ही आ रहे हैं। अब मैं भी आर्य चाणक्य की आज्ञा का पालन करूँ (गले में फाँसी लगाने लगता है।)

राक्षस—हाय रे दुर्भाग्य, कुलटा की भाँति राज्यलक्ष्मी पर-पुरुष के पास चली गई। जो मैं राजाओं से घिरा हुआ इस नगर में निकलता था, वह आज चोर की भाँति डरता-डरता चल रहा हूँ। (देखकर) अरे रे, यह कौन फाँसी लगा रहा है। (पास जाकर) भद्र, यह क्या कर रहे हो ?

पुरुष—(रोता हुआ) आर्य, मैं मित्र का विनाश नहीं देख सकता।

राक्षस—भद्र, बात क्या है ?

पुरुष—आर्य, इस नगर में मेरा मित्र जिष्णुदास मणिकार रहता था। वह श्रेष्ठी चन्दनदास का परम मित्र था। श्रेष्ठी चन्दनदास को आज अमात्य राक्षस के परिवार को आश्रय देने के अपराध में वध किया जा रहा है, यह सुनकर जिष्णुदास अग्निप्रवेश कर रहे हैं। अब उनके विना मैं भी जीवित नहीं रह सकता।

राक्षस—भद्र, तो चन्दनदास अभी मारा नहीं गया ?

पुरुष—अभी तो नहीं। उससे वारम्वार अमात्य का कुटुम्ब माँगा जा रहा है। पर वह मित्र-प्रेम के कारण साफ मना कर रहा है।

राक्षस—भद्र, तुम शीघ्र जाकर जिष्णुदास को जलने से रोको, मैं चन्दनदास को बचाता हूँ। (खड्ग खींचता है।)

पुरुष—(पैरों पर गिरकर) आर्य, क्या आप ही अमात्य राक्षस हैं।

राक्षस—भद्र, मैं ही अनार्य राक्षस हूँ।

पुरुष— (फिर पैरों पर गिरकर) आर्य प्रसन्न हों। पहले दुरात्मा चन्द्रगुप्त ने शकटदास को वध की आज्ञा दी थी। उसे कोई छुड़ा ले गया था। तब से वधिक किसी शस्त्रधारी को पीछा करते देखते हैं, तो वध्य पुरुष को वध-स्थल पर पहुँचने के प्रथम ही मार डालते हैं। इससे आर्य, आप शस्त्र लेकर न जायँ।

राक्षस—तो यही सही। (शस्त्र त्याग कर जाता है।)

बारहवाँ दृश्य

(चाण्डाल आते हैं। उनके आगे स्त्री-पुत्रों-सहित वध्य-
वेश में सूली कन्धे पर लिये चन्दनदास है।)

चाण्डाल—हटो, आर्यो, हट जाओ। यह राजद्रोही चन्दनदास वध-स्थान पर बाल-बच्चों सहित ले जाया जा रहा है।

चन्दनदास—हा, चरित्र-भंग के दोष से सदा डरने वाले मुझको भी चोरों की भाँति वध किया जा रहा है।

चाण्डाल—अजी, चन्दनदास, अब तुम वधस्थल में आ चुके, सब

सम्बन्धियों को लौटा दो। (दूसरे चाण्डाल से) अरे वेणुवेत्रक, चन्दनदास को पकड़।

चन्दनदास—भद्रमुख, क्षण भर ठहरो। (पुत्र का आलिंगन करता है।)

(दोनों चाण्डाल चन्दनदास को पकड़ कर सूली की ओर खींचते हैं।)

स्त्री—(छाती पीटकर) अजी, बचाओ, बचाओ।

राक्षस—(आकर) मत डरो। अरे चाण्डालो! चन्दनदास को छोड़ दो। जिसके लिए इन्हें मारा जा रहा है, वही मैं अनार्य राक्षस हूँ। मुझे पकड़ो और दुरात्मा चाणक्य से यह समाचार कह दो।

चन्दनदास—अमात्य, यह आपने क्या किया?

राक्षस—मित्र, केवल तुम्हारे पवित्र चरित्र का अनुकरण।

चन्दनदास—हाय, मेरे सारे उद्योग व्यर्थ हो गये।

एक चाण्डाल—अरे वेणुवेत्रक, तू तब तक इस चन्दनदास को पकड़कर पेड़ की छाया में बैठ। मैं आर्य चाणक्य की सेवा में निवेदन करता हूँ कि अमात्य राक्षस पकड़े गये। (जाता है।)

(चाणक्य आते हैं।)

राक्षस—(स्वगत) यह दुरात्मा चाणक्य है। इसके गुणों से हम ईर्ष्या करते हैं।

चाणक्य—(पास आकर) अमात्य राक्षस, आपको विष्णुगुप्त नमस्कार करता है।

राक्षस—विष्णुगुप्त, मुझे छूना मत। मैं चाण्डाल के स्पर्श से दूषित हूँ।

चाणक्य—अमात्य, यह चाण्डाल नहीं है। राज्य कर्मचारी है। इनसे मित्रता करवा कर रहस्य से सर्वथा अपरिचित शकटदास से मैंने छल द्वारा वह पत्र लिखाया था।

राक्षस—तो शकटदास के प्रति मेरा सन्देह निर्मूल हुआ।

चाणक्य—अब यह सब कौतुक मैंने आपका चन्द्रगुप्त से मेल कराने ही के लिए किया था। वह देखो, वृषल आ रहा है।

(राजा अनुचरों सहित आता है।)

चन्द्रगुप्त—यही आर्य चाणक्य हैं, जिनके कारण मैंने धनुष के बिना ही सारी पृथ्वी के शत्रुओं को जीत लिया। (पास जाकर) आर्य, चन्द्रगुप्त प्रणाम करता है।

चाणक्य—वृषल, इन आदरणीय अमात्य राक्षस को प्रणाम करो।

चन्द्रगुप्त—आर्य, मैं चन्द्रगुप्त अभिवादन करता हूँ।

राक्षस—राजन्, आपकी जय हो।

चाणक्य—अमात्य राक्षस, क्या चन्दनदास के प्राणों की रक्षा चाहते हो ?

राक्षस—विष्णुगुप्त, इसमें क्या संदेह है ?

चाणक्य—तो यह शस्त्र ग्रहण करके चन्द्रगुप्त पर अनुग्रह करो।

राक्षस—नहीं विष्णुगुप्त, मैं इस योग्य नहीं। फिर यह आपका उठाया हुआ शस्त्र है।

चाणक्य—अमात्य राक्षस, ऐसा क्यों कहते हो। यदि शस्त्र नहीं थामोगे, तो चन्दनदास नहीं बचेगा।

राक्षस—(आँखों में आँसू भरकर स्वगत) हा, देव नन्द ! (प्रकट) विष्णुगुप्त, खड्ग लाओ। मैं करूँ भी क्या।

चाणक्य—(प्रसन्नता से अपने हाथ का खड्ग देकर) वृषल, अमात्य राक्षस ने शस्त्र धारण करके तुम्हें अनुगृहीत कर दिया।

चन्द्रगुप्त—आर्य की कृपा।

(पुरुष आता है।)

पुरुष—आर्य की जय। भद्रभट, भागुरायण आदि राजपुरुष हाथ पाँव बाँधकर मलयकेतु को ले आये हैं।

चाणक्य—सुन लिया। अमात्य राक्षस से निवेदन करो। अब वे ही सब राज-काज देखेंगे।

राक्षस—महाराज, चन्द्रगुप्त। मैंने कुछ दिन मलयकेतु के यहाँ निवास किया है। अतः उसकी प्राण-रक्षा होनी चाहिए।

(राजा चाणक्य के मुँह की ओर देखता है।)

चाणक्य—वृषल, यह अमात्य राक्षस का पहला प्रेम है। स्वीकार करो। (पुरुष से) भद्र, मेरी ओर से भद्रभट आदि से कहो कि अमात्य राक्षस की प्रार्थना पर चन्द्रगुप्त फिर से मलयकेतु को उसके पिता का राज्य लौटा रहे हैं। इससे आप लोग साथ जाकर उनका अभिषेक कर आइए।

(पुरुष जाता है।)

चाणक्य—ठहर भद्र, विजयपाल और दुर्गपाल से कह दो कि अमात्य राक्षस ने अमात्यपद—शस्त्र-ग्रहण किया है। इसलिए देव चन्द-गुप्त उनके प्रेम के कारण आज्ञा देते हैं कि श्रेष्ठी चन्दनदास सारे नगरों के श्रेष्ठीपद पर माने जायँ।

पुरुष—जो आज्ञा। (जाता है।)

चाणक्य—वृषल, अब तुम्हारा और क्या प्रिय करूँ?

चन्द्रगुप्त—अब और क्या करना शेष रहा। राज्य पर मुझे स्थिर किया, अमात्य राक्षस जैसा मित्र दिया। नन्दों का नाश किया।

चाणक्य—विजये, विजयपाल, दुर्गपाल से कहो कि अमात्य राक्षस से प्रेम होने के कारण देव चन्द्रगुप्त आज्ञा देते हैं कि हाथी, घोड़ों को छोड़ सबको बन्धन-मुक्त कर दो। अब केवल मैं अपनी शिखा बांधता हूँ।

राजशेखर

(दसवीं शताब्दी)

कर्पूरमञ्जरी

(सट्टक)

जीवन-परिचय

राजशेखर अलंकार-शास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ काव्यमीमांसा के रचयिता हैं। ये दायावर कुल के महाराष्ट्र थे। इनकी माता का नाम शीलवती था। ये कान्यकुब्ज या महोदय के राजा निर्भय महेन्द्रपाल के गुरु थे। चौहान कुल की अवन्तिसुन्दरी नाम की विदुषी स्त्री इनकी पत्नी थी। उसका मत इन्होंने अपनी काव्य-मीमांसा में स्थान-स्थान पर दिया है। इन्होंने अपनी बालरामायण, विद्धशालभंजिका, प्रचण्ड-पाण्डव या बालभारत, हरविलास महाकाव्य और भुवनकोष नामक और भी ग्रन्थ रचे हैं। विद्धशालभंजिका चार अंकों की नाटिका और बालरामायण दस अंकों का महानाटक है। बालभारत भी नाटक ही है। पर उसके केवल दो ही अंक मिले हैं। इनका काल ईसा की दसवीं शताब्दी का प्रथम चरण निश्चित है।

कर्पूरमंजरी एक सट्टक है। इसे उन्होंने अपनी पत्नी के कहने से प्राकृत में लिखा था। इसमें उन्होंने अपने आश्रयदाता चण्डपाल या महीपाल और उसकी स्त्री कुन्तल महिषी का वर्णन किया है। इसमें अद्भुत रस का उपपादन है। तथा इसकी प्राकृत भाषा बहुत कोमल है। इस पर पाँच टीकाएँ हो चुकी हैं।

'सट्टक' नाटिका का ही भेद माना जाता है। सट्टक उसे कहते हैं

जो सब प्राकृत में हो और जिसमें प्रवेशक और विष्कम्भक न हों। कर्पूरमञ्जरी शृंगार-प्रधान नाटिका है। इसमें रीतिकालीन सामन्ती शृंगार का चित्रण है।

कथासार

इस नाटिका में कुन्तल देश की राजकुमारी कर्पूरमञ्जरी और अवन्ति देश के राजा चन्द्रपाल भैरवानन्द की सहायता से एक दूसरे से मिलते हैं। रानी कर्पूरमञ्जरी को वन्दी बना देती है। पर भैरवानन्द की सहायता से उनका विवाह हो जाता है। राजा और कर्पूरमञ्जरी के प्रेम में रानी बाधा डालती है, परन्तु अन्त में रानी को धोखा देकर उनका विवाह करा दिया जाता है। कथा में न कहीं जटिलता है, न घटनाओं की तीव्रता। इसमें न तो विरह का वह उन्मत्त रूप ही है, जो रीतिकालीन कविताओं की विशेषता है। न सूफी काव्यों जैसा प्रेम-विरह वर्णित है। सारी कथा अति साधारण है।

पात्र-सूची

पुरुष-पात्र—

राजा	अवन्तिदेश के राजा चन्द्रपाल
विदूषक	राजा का मित्र कपिंजल
भैरवानन्द	एक मन्त्र-तन्त्र-ज्ञाता ब्राह्मण

स्त्री-पात्र—

रानी	विभ्रमलेखा
विचक्षणा	रानी की दासी
युवती (कर्पूरमंजरी)	कुन्तल देश के राजा वल्लभराज की पुत्री
कुरंगिका	कर्पूरमंजरी की सखी
सारंगिका	राजा चन्द्रपाल की भृत्या

कर्पूरमञ्जरी

पहला दृश्य

(राजभवन। महाराज चन्द्रपाल रानी विभ्रमलेखा तथा विदूषक और दासी के साथ राजोद्यान में आते हैं।)

राजा—प्रिये, अब तो वसन्त आ गया। पान बहुत नहीं खाया जाता। न सिर में तेल देकर चोटी गूँथी जाती है।

रानी—हां, महाराज, लोग अब चन्दन लगाने और फूलों की मलाएं पहनने लगे हैं।

(नेपथ्य में वैतालिक स्तुति गान करता है।)

—चम्पक नगर के महाराज की जय हो। जिन्होंने राड़ देश और कामरूप को विजय किया। जो वंग की रणस्थली में क्रीड़ा करते हैं, उनकी जय हो। नव वसन्त सब को सुखकर हो।

राजा—अहा, वैतालिक वसन्त के मधुर प्रभाव का वर्णन कर रहे हैं। जो वसन्त मलय वायु के झोंकों से लताओं को नचाता है, कलकण्ठी कोयलों का पंचम स्वर और भी मधुर करता है, वही आज वसुन्धरा को मनोहर बना रहा है।

रानी—सचमुच, देखिए, महर्षि अगस्त के आश्रम के चन्दन के वृक्षों और कपूर की लताओं को झोंके दे-देकर और ताम्रपर्णी के शीतल जल का चुम्बन करके चैत्र का मधुर पवन बह रहा है।

विदूषक—अजी, मुझसे भी तो पूछिए। मैं भी ऐसा-वैसा पण्डित नहीं हूं। मेरे ससुर के ससुर बड़े बड़े पण्डितों के यहां पोथियां ढोते थे।

विचक्षणा—(हँस कर) तब तो तुम्हारा पाण्डित्य कुलपरंपरागत है।

विदूषक—अरी अलक्षणे, मेरा उपहास करती है।

विचक्षणा—अजी नहीं। तुम तो बड़े कवि हो। भला वसन्त की कोई अच्छी सी कविता तो सुनाओ।

विदूषक—(लाठी पर तमूरा की भांति बजाकर) सुनो,

वन में महुआ टेसू फूले, घर में नाचे मोर।
घर में फूले हम कुलपालक, गेंदा फूले बौर॥
आया वसन्त। आया वसन्त।

(सब हँसते हैं।)

राजा—वाह मित्र, खूब गाया।

विदूषक—तो यह चपटी नाक वाली दासी आज से मेरी सेवा में नियुक्त की जाय।

विचक्षणा—जा जा, उस खूँटी पर लटक, जिस पर मेरा लँहगा लटका है।

विदूषक—तो तू भी वहीं जा, जहां मेरी बुढ़िया मां के दाँत गये।

राजा—अरे मित्र, इस दासी के मुँह मत लगो।

विदूषक—तो महाराज, यह हम कुलीन ब्राह्मणों के मुँह लगती है। इस दरबार में तो चरणामृत और मद्य एक ही पात्र में भरे जाते हैं।) इससे तो हम अपनी ब्राह्मणी ही की चरण-सेवा करें तो अच्छा। (क्रोध में बड़बड़ाता जाता है।)

रानी—अजी, कपिंजल ब्राह्मण के बिना तो यह सभा ऐसी हो गई, जैसे बिना काजल का शृंगार।

विदूषक—(जाते-जाते) नहीं, नहीं, हम नहीं आयेंगे।

(जाता है और फिर घबराया-सा लौटता है।)

—अजी, आसन, आसन।

राजा—क्यों ?

विदूषक—भैरवानन्द आये हैं ।

राजा—वही, जो बड़े प्रसिद्ध सिद्ध हैं ।

विदूषक—हां हां, वही ।

(भैरवानन्द आते हैं ।)

भैरवानन्द—न जन्त्र न मन्त्र, न ज्ञान न ध्यान, न योग न भोग । बस गुरु की कृपा । पीने को मद्य, खाने को मांस, मसान का वास, भिक्षा का भोजन, चमड़े का बिछौना । लंका पलंका सातों दीप नवों खण्ड गौना, ब्रह्मा-विष्णु-महेश पीर पैगम्बर जोगी, जती सती वीर महावीर आकाश पाताल बांधूं । मेरी भक्ति गुरु की शक्ति फुरै । दुआई गोरक्षनाथ ।

राजा—(उठकर) महाराज यह आसन है, बैठिए ।

भैरवानन्द—अरे राजा, हमको बैठने से क्या काम ? बोल क्या चाहता है ?

राजा—कुछ चमत्कार दिखाइये ।

भैरवानन्द—सूरज बांधू, चन्दर बाँधूं, बाँधूं अग्नि पाताल ।
सात समुन्दर इन्दर बाँधूं, और बाँधूं जमकाल ।
बोल रे जोगड़ा बोल ।

विदूषक—तो बुलाओ विदर्भ की सुन्दरी को ।

भैरवानन्द—(ध्यान करता और बड़बड़ाता है ।) एक सुन्दरी युवती भीतर से खिंची चली आती है ।

राजा—(आश्चर्य से) अहा, अद्भुत स्वरूप है । ऐसा प्रतीत होता है कि नहाकर बाल सुखा रही थी, उसी समय पकड़ कर ले आई गई है । इसके कर्णावलम्बी नेत्र तो बरबस मेरे मन को अपनी ओर खींच रहे हैं ।

युवती—(घबराई हुई सी) अरे, यह मैं कहाँ आ गई ?

राजा—(विदूषक से) मित्र, इससे यह तो पूछो कि यह कौन है ?

विदूषक—(अपना उत्तरीय बिछाकर) इस पर बैठो, और कहो कि तुम कौन हो ?

युवती—(बैठकर) कुन्तल देश के विदर्भ नगर के राजा वल्लभराज की मैं बेटी हूँ।

रानी—(स्वगत) अरे, उनकी रानी शशिप्रभा तो मेरी सगी मौसी है। (प्रकट) कहीं तुम कर्पूरमञ्जरी तो नहीं हो ?

युवती—यही मेरा नाम है।

रानी—(गले लगाती हुई) तब तो तुम मेरी मौसेरी बहिन हो। (पास बैठाती है) (भैरवानन्द से) अजी जोगी जी, अभी एक पखवाड़े यह मेरे पास रहेगी। (दासी से) अरी विचक्षणा, योगी जी के निवास की अच्छी व्यवस्था कर दे।

विचक्षणा—जैसी आज्ञा।

(भैरवानन्द को लेकर जाती है।)

रानी—तो अब हम भी अन्तःपुर में आकर मञ्जरी का शृंगार करें।

(दोनों जाती हैं।)

विदूषक—(राजा से) मित्र, अब यह हम और आप दो ही बेगाने रह गये। चलिए, हम भी चलें।

(जाते हैं।)

दूसरा दृश्य

(राजा और विदूषक आते हैं।)

राजा—अहा, उसकी मधुर छवि के आगे नया चन्द्रमा, चम्पे की कली और केसर के फूल भी कुछ नहीं हैं। उसके कर्णावलम्बी नेत्र मेरे जी में खटक रहे हैं।

विदूषक—मित्र, तुम तो स्त्री-पुरुषों की भाँति प्रलाप करने लगे।

राजा—मित्र, मैंने स्वप्न में देखा कि वह कमलवदनी हँसती हुई आई और उसने नीलकमल घुमाकर मुझे मारना चाहा, और जब मैंने

आँचल पकड़ा, तो चंचल नेत्र नचा कर भाग गई। बस, मेरी नींद खुल गई।

विदूषक—अजी, राज्यभ्रष्ट राजा, कुटुम्ब की बालविधवा, भूखा ब्राह्मण, और विरही आदमी, ये मन के लड्डू से ही पेट भरते हैं। अच्छा बताइए, आपकी यह दशा किस कारण हुई है?

राजा—प्रेम के कारण।

विदूषक—मैं तो जानता था, दिन-दिन देवी के प्रति आपका प्रेम बढ़ता जाता है। क्या देवी रूप और गुण में कम हैं?

राजा—अरे मित्र! रूप-गुण से क्या? प्रेम तो यों ही उत्पन्न हो जाता है।

(नेपथ्य में)

—सखी कुरंगिणी, तुम्हारे इन शीतल उपचारों से भी मुझे कष्ट हो रहा है। मृणाल गरल के समान मेरा शरीर जला रहा है। धारायन्त्र का जल मुझे और भी उत्तप्त करता है। चन्दन भी ताप को बढ़ाता है।

विदूषक—अब तो सुन लिया। विरह के ताप से कर्पूरमंजरी उत्तप्त हो रही है। चलिए, शीघ्र चल कर उसे प्राण-दान दीजिये।

(दोनों कुंज में आते हैं)

कर्पूरमंजरी—(देखकर धीरे से) यह तो वही छलिया आ रहा है जिसने चित्त चुराकर धोखा दिया। (लाज से सिर झुका कर बैठी रहती है)

सखी—अरी सखी, उठ कर महाराज की अभ्यर्थना कर।

(कर्पूरमंजरी उठना चाहती है)

राजा—बस, बस! उठो मत। उठने में तुम्हें कष्ट होगा।

विदूषक—अजी, यहाँ तो बड़ी गर्मी है (दुपट्टे से पंखा झलता हुआ दीपक बुझा देता है)

राजा—तो सब लोग छत पर चलें।

(चलते हैं)

(नेपथ्य में कोलाहल)

राजा—यह कैसा कोलाहल है ?

विदूषक—(बाहर जाकर) महाराज, अनर्थ हो गया। देवी को किसी तरह पता लग गया कि महाराज यहाँ पधार रहे हैं। इससे देवी इधर ही आ रही हैं। उन्हीं के साथ अन्तःपुर के वामन, किरात, वर्षवर, कंचुकी कोलाहल मचा रहे हैं।

कर्पूरमंजरी—(घबरा कर) कुरंगिके, अब मैं क्या करूँ ?

कुरंगिका—सखी, चलो, हम इस सुरंग की राह रक्षा-गृह में छिप जायँ। (ऐसा ही करती है)

राजा—मित्र कपिंजल, चलो, हम भी देवी की अभ्यर्थना करके उन्हें ले आयँ।

विदूषक—यही अच्छा है महाराज।

(जाते हैं)

तीसरा दृश्य

(राजा और विदूषक)

राजा—इस ग्रीष्म ऋतु में दो वस्तु भयानक होती हैं, एक तो दिन की प्रचण्ड धूप, दूसरा प्रिय-वियोग।

विदूषक—अजी ! हम ही अच्छे। न सुखी, न दुःखी, न संयोगी, न वियोगी।

राजा—संयोगियों को तो ग्रीष्म सुखद ही है। दोपहर तक ठण्डे चन्दन का लेप, तीसरे पहर महीन गीले कपड़े, फुहारे-खसखाना, और साँझ को जल-विहार और ठण्डी मदिरा। तथा पिछली रात को ठण्डी बयार में विहार।

विदूषक—अजी ! ऐसा नहीं। मुँह भरकर पान, पानी में फूली हुई सुपारी और मिष्टान्न भोजन।

राजा—मित्र ! तू भोजनभट्ट है। अरे, इस ग्रीष्म में तो शिरीष के फूलों के गहने, वेले की चोटी, मोतियों का हार, चम्पे की चम्पाकली और कमलनाल के कंकण ही शृंगार-योग्य हैं। कह, तुझे कर्पूरमंजरी का कुछ हाल-चाल मिला।

विदूषक—मिला क्यों नहीं। देवी ने एक पत्थर रखवा कर सुरंग का मुँह बन्द करवा दिया है। अब रक्षागृह में कर्पूरमंजरी बन्दी है। पाँच वेत्रवती दासियाँ करवालधारी प्रहरियों को लेकर पूर्व की ओर रक्षा कर रही हैं; पाँच सारन्धी दासियाँ धनुषधारिणी प्रहरियों के साथ दक्षिण की ओर रक्षा के लिए नियुक्त हैं। पाँच ताम्बूल-करंक-वाहिनी दासियाँ कुन्तधारी प्रहरियों के साथ पच्छिम की ओर पहरा दे रही हैं और पाँच स्वर्णवर्म-धारिणी कुमारियाँ उत्तर की ओर।

राजा—(दीर्घ निःश्वास लेकर) अन्तःपुर में देवी का जो इतना प्रभाव और परिजनों का इतना बल है वह उपयुक्त ही है।

(सारंगिका आती है)

सारंगिका—महाराज की जय। महाराज, देवी ने निवेदन किया है कि आज वटसावित्री का उत्सव है, सो महाराज छत पर से देखें।

राजा—अच्छा।

(राजा विदूषक के साथ केलि-विमान प्रासाद की छत पर जाता है)

विदूषक—देखिए महाराज, यह चर्चरी-वाद्य बजाकर नर्तकियाँ उसकी ताल पर नाच रही हैं।

राजा—लो, अब नृत्य बन्द हो गया।

विदूषक—वे अब मणिमय पात्रों में धारा-यन्त्रों का रंगीन जल एक दूसरे पर छिड़क रही हैं। उस ओर बत्तीस नर्तकियाँ विचित्र बन्धन में बँधकर झूम-झूम कर ताल देती हुई नाच रही हैं। उधर कुछ नर्तकियाँ, विचित्र वेश बनाकर विकट भावभंगी से नाच रही हैं। कोई गाती है,

कोई हँसती है और कोई नकल कर रही है।

(सारंगिका आती है)

सारंगिका—(देखकर) अहा, महाराज यहाँ छत पर पन्ने के बंगले में बैठे हैं। (प्रकट) महाराज की जय हो। देवी कहती हैं, हम साँझ को महाराज का विवाह करेंगे।

राजा—कैसा विवाह ?

सारंगिका—महाराज गत चतुर्दशी के दिन देवी ने पद्मराग मणि की गौरी प्रतिमा बनवा कर भैरवानन्द योगी से उसकी प्राण-प्रतिष्ठा कराई थी। जब देवी ने उन्हें दक्षिणा देना चाहा तो योगी भैरवानन्द ने कहा—लाट देश के राजा चन्द्रसेन की कन्या घनसारमंजरी से आज ही राजा का विवाह कर दो, तो महाराज चक्रवर्ती हो जायेंगे। यही हमारी दक्षिणा है। सो प्रमोद-उद्यान के चामुण्डा के मन्दिर में विवाह होगा। महाराज वहीं पधारें। (जाती है)

राजा—मित्र! मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि इसमें कुछ रहस्य है।

विदूषक—अच्छा, चामुण्डा देवी के मन्दिर में चलकर देखें क्या होता है ?

(दोनों जाते हैं)

चौथा दृश्य

(चामुण्डा का मन्दिर, भैरवानन्द आते हैं)

भैरवानन्द—इस वट के मूल में सुरंग के द्वार पर चामुण्डा की मूर्ति है। आप यहीं ठहरें (प्रकट) कल्पान्त महाश्मशानरूपी क्रीड़ा-मन्दिर में ब्रह्मा के कपालरूपी चषक में राक्षसों का रक्तरूपी मद्यपान करने वाली देवी चामुण्डा की जय हो।

(सुरंग का द्वार खुलता है, कर्पूरमंजरी आती है)

कर्पूरमंजरी—महाराज, प्रणाम।

भैरवानन्द—योग्य वर पाओ। बैठो।

(बैठती है)

(रानी आती है)

रानी—(देखकर) अरे, यह क्या बात, कर्पूरमंजरी तो यहाँ बैठी है। (प्रकट) योगिराज, आज्ञा हो तो विवाह की सामग्री ले आऊँ ?

भैरवानन्द—ले आओ ।

(रानी जाती है)

—(हँसकर कर्पूरमंजरी से) रानी तुम्हें देखने गई है कि तुम पहरे में से यहाँ कैसे चली आईं। तुम सुरंग की राह रक्षागृह में लौट जाओ । जब रानी तुम्हें देखकर लौट जायँ, तो यहाँ आ जाना।

(कर्पूरमंजरी जाती है)

रानी—(रक्षागृह में कर्पूरमंजरी को देखकर) अरे, कर्पूरमंजरी तो यहीं सो रही है। तो वहाँ वह कौन थी ? (प्रकट) कर्पूरमंजरी, तू कैसी है ?

कर्पूरमंजरी—सिर में दर्द है ।

(रानी आगे अन्तःपुर में जाती है और कर्पूरमंजरी उठ कर फिर चामुण्डा के मन्दिर में सुरंग से आ जाती है)

रानी—(देखकर) अरे, यहाँ भी कर्पूरमंजरी !

भैरवानन्द—रानी जी, विवाह की सामग्री ले आईं ?

रानी—अजी, सामग्री तो ले आई, पर आभूषण भूल आई।

भैरवानन्द—तो जाकर ले आओ।

(रानी जाती है। कर्पूरमंजरी भी सुरंग की राह जाकर रक्षागृह में लेट जाती है। रानी देखकर फिर मंदिर में लौट आती है । वहाँ कर्पूरमंजरी भी आ जाती है)

रानी—अरे, यह तो बड़ा अद्भुत चमत्कार है।

भैरवानन्द—महाराज अभी नहीं आये।

(राजा और विदूषक आते हैं)

(सब बैठते हैं)

राजा—अहा, यह तो कर्पूरमंजरी लाज से सिकुड़ी हुई-सी ऐसे बैठी है, जैसे सिमटी हुई चन्द्रमा की चाँदनी।

रानी—कुरंगिका, तुम महाराज को आभूषण पहनाओ और सुरंगिका घनसारमंजरी को पहनाये।

(दोनों सखियाँ शृंगार करती हैं)

भैरवानन्द—अजी, उपाध्याय कहाँ हैं ?

रानी—आर्य कपिंजल है तो, यही उपाध्याय का काम भी करें।

विदूषक—हाँ-हाँ, हम तैयार हैं। मित्र, हम गठबन्धन करते हैं।

(दोनों के उत्तरीय में गाँठ बाँधता है और वैदिकों की भाँति मन्त्र पढ़ने का अभिनय करके) महाराज, आप कर्पूरमंजरी का हाथ पकड़िए और कर्पूरमंजरी, तुम महाराज का हाथ पकड़ो।

भैरवानन्द—अरे उपाध्याय, इसका नाम घनसारमंजरी है।

विदूषक—अजी, हम सब जानते हैं। अग्नि प्रकट करो। होम करो।

राजा—इसके कोमल कर-स्पर्श से कदंब और केवड़े की भाँति मेरा शरीर रोमांचित हो गया।

(दोनों अग्नि-प्रदक्षिणा करते हैं)

रानी—विवाह हो गया। अब मैं जाती हूँ। (जाती है)

भैरवानन्द—अजी, उपाध्याय को दक्षिणा तो दीजिए।

राजा—मित्र, कपिंजल को सौ गाँव दो।

विदूषक—स्वस्ति ! स्वस्ति ! (बिगुल बजा कर प्रसन्नता प्रकट करता है)

भैरवानन्द—महाराज, अब आपका और क्या प्रिय करूँ ?

राजा—(हाथ जोड़कर) महात्मन् ! अब क्या बाकी रहा।

(सब जाते हैं)

इसे भी पढ़िए

आचार्य चतुरसेन शास्त्री की उद्भट लेखनी से निकला हुआ

सोमनाथ महालय—उपन्यास

मूल्य ७ सात रुपया

मुग़लकालीन परम-प्रसिद्ध हिन्दुओं के परम पवित्र तीर्थ 'सोमनाथ मन्दिर' के विध्वंस का ऐतिहासिक चित्रण। इस नॉवल के विषय में आचार्य जी की अपनी लेखनी से लिखी गई नीचे की पंक्तियाँ देखिए।

"जहाँ समुद्र की गम्भीर जल-राशि चट्टानों पर आज भी सिर धुनती है; जहाँ भारत भर के हिन्दुओं का महाप्राण जागृत ज्योतिर्लिङ्ग स्थापित था; जहाँ हीरे, मोती कंकड़-पत्थरों की तरह बखेरे जाते थे; जिसके अपार वैभव की कहानियाँ देशदेशान्तरों में विख्यात थीं, जहाँ रूप और यौवन से भरी देवाङ्गनाओं जैसी सैकड़ों देवदासियाँ अपने नृत्य और गान से महालय के प्राङ्गण में दर्शकों के चित्त को आह्लादित करती थीं और जहाँ भगवान् सोमनाथ ज्योतिर्लिङ्ग की पूजा-अर्चना के लिए देश-देशान्तर के राजा-महाराजा महालय की सीढ़ियों पर महीनों पड़े रहते थे—उस अतीत काल के प्रभासपट्टन पर आज भी समस्त गुजरात गर्व करता है।

कैसे ग़ज़नी का धूमकेतु उस पर भूचाल की भाँति आ धमका, कैसे सम्पूर्ण गुजरात के प्राण वहाँ आ जूझे, कैसे वह गगनस्पर्शी सोमनाथ महालय देखते-ही-देखते भूमिसात होकर मलवे का ढेर हो गया, कैसे वहाँ की युग-युग की संचित सम्पदा ऊँटों और बर्बर सैनिकों के घोड़ों पर लद-कर उड़न्छू हो गई—यह सब वर्णन आपको यहाँ पढ़ने को मिलेगा।"

आचार्य की सामर्थ्यवती लेखनी की करामात से आप इस उपन्यास में तेरहवीं शताब्दी में ध्वस्त सोमनाथ महालय को अपने मानस नेत्रों से एक बार स्वर्ण, रत्न और नर-मुण्डों से परिपूर्ण; रूप और यौवन से मत्त देवदासियों की नूपुर-ध्वनि से गुञ्जित; सोलंकी भीमदेव की शमशेर से चमत्कृत और नवनीत कोमलाङ्गी चौला की सुषमा से सुशोभित और कौल, अघोरी, कापालिक और तांत्रिकों के जटिल भयानक प्रयोगों से व्याप्त देखेंगे।

बाल-विधवा शोभना वैधव्य की आपदाओं से व्याप्त किस प्रकार अपने प्रियतम देवस्वामी को जो दासीपुत्र होने के कारण, हिन्दू जाति में घृणा और निरादर की दृष्टि से अपमानित किया जाकर मुसलमान बन गया

और धर्मद्रोही हो जाने पर अपने हाथों से कत्ल करके देश और राजभक्ति का अत्युच्च आदर्श उपस्थित करती है और अन्त में किस प्रकार सार्वभौम कोमलतम भावना, दर्प, सेवा, दया, कर्तव्य और औदार्य की पराकाष्ठा दिखाकर आत्मसमर्पण करती है; और किस प्रकार प्रान्तीय राजा-महाराजा पारस्परिक कलह, ईर्ष्या, द्वेष और फूट के कारण संगठित न हो सके और अन्त में अपने देश और राज्य को खो बैठे; एवं किस प्रकार महालय के परम रक्षक और विधाता गंगसर्वज्ञ के प्रताप और प्रभाव से जलभुनकर सोमनाथ की गद्दी को प्राप्त करने के लोभ से लुब्ध होकर रुद्रभद्र और सिद्धेश्वर जैसे धर्मद्रोही तांत्रिकों ने शत्रु से मिलकर गंग सर्वज्ञ का सर्वनाश तो कर ही दिया, साथ में देश के लाखों प्रजाजनों का भी महमूद के हाथों विध्वंस कराया और देश को अपने लोभ और स्वार्थ के वश विदेशी महमूद के हाथों बेच दिया और बाद में इस घोर घातक पाप के फलस्वरूप स्वयं महमूद की विश्वासपात्रता प्राप्त करने में असफल रहकर महमूद के संकेत से मौत के घाट उतारे गये और साथ में उनके अघोरी पापाचारी साथी भी—इसका रोमांचकारी वर्णन पढ़ना हो तो इस उपन्यास में देखिए।

देश स्वतन्त्र हो चुका है और इस स्वातन्त्र्य-युग में देश की भावी सन्तानों में देशभक्ति और राजभक्ति के महामन्त्र को फूंकना हमारा सर्वप्रथम और सर्वोच्च कर्तव्य है—इस दृष्टि से यह उपन्यास हमारे नवयुवकों के लिए सर्वथा उपयोगी रहेगा क्योंकि इसमें देश-द्रोह के भयानक परिणाम उपस्थित कर संगठित शक्ति का प्रत्यक्ष लाभ दर्पणवत स्पष्ट और तेजोमय दर्शाने का भरपूर यत्न किया गया है। अछूत जातियों के प्रति हमारी घृणित और अपमानजनक धर्मनीति ने किस प्रकार अपने ही घर में अपने शत्रु उत्पन्न किये इसका भयंकर परिणाम आपको इस उपन्यास में फ़तहमुहम्मद के रूप में मिलेगा।

इस उपन्यास के पढ़ने से मुझे विश्वास है कि हमारे छात्र भली प्रकार इस तथ्य को हृदयङ्गम कर सकेंगे कि जातियों के उत्थान, पतन, विकास और विनाश के मूल कारण क्या हैं। इसके सिवा चरित्र की महानता, शौर्य और निष्ठा का माहात्म्य भी वे इस उपन्यास में भली-भाँति देख सकेंगे।

प्राप्ति-स्थान—
श्री भारत भारती प्राइवेट लिमिटिड, दरियागंज, दिल्ली–६